कादम्बिनी

मासिक [illegible]

मई १९६६

१ रुपया

कादम्बिनी

मासिक प्रकाशन

आकल्पं कविनूतनाम्बुदमयी कादम्बिनी वर्षतु



वर्ष ६, अंक ७
मई, १९६६
पो. बा० ४०
नयी दिल्ली

सम्पादक
रामानन्द 'दोषी'

एक वर्ष १०.००
दो वर्ष १८.००
तीन वर्ष २६.००

निबन्ध एवं लेख

कविताएँ

चित्र-परिचय

सुषमा और सौंदर्य (मुखपृष्ठ) : छायाकार—रनबीरसिंह बक्शी

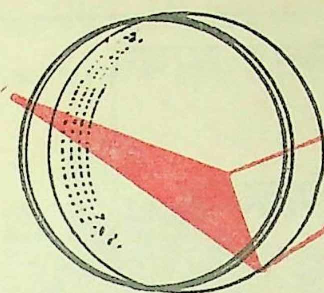
उदासमना : छायाकार – के० पी० गुप्ता

डा० नगेन्द्र : छायाकार – एस. जे. सिंह

मन-गुब्बारा : छायाकार – सूरज एन. शर्मा

हिन्दुस्तान टाइम्स प्रकाशन





आप की दृष्टि

'कादम्बिनी' का अप्रैल अंक देखा। 'आप की दृष्टि' स्तंभ में 'कादम्बिनी' के फरवरी अंक में प्रकाशित मेरे 'जहाँआरा बेगम' लेख के एक तथ्य के बारे में दो पाठकों ने संदेह प्रकट किया है। दुर्भाग्य से भारतीय इतिहास के कुछ तथ्य कल्पना के परिवेश में इतने उलट-पुलट गये हैं कि इस प्रकार की भ्रांति स्वाभाविक है।

'जहाँआरा' के युवक प्रेमी के देगची में उबाले जाने का उल्लेख तत्कालीन फ्रांसीसी यात्री 'बर्नियर' ने किया है। एक अन्य समसामयिक यूरोपीय यात्री 'मनूकी' ने भी उक्त घटना की पुष्टि की है।

औरँगजेब की कवयित्री पुत्री जेबुन्निसा के प्रेमी के देग में उबाले जाने की बात इतिहास-सम्मत नहीं है। इस का उल्लेख किसी तत्कालीन स्रोत या किसी विदेशी यात्री के वृत्तांत में नहीं मिलता। यह बात शायद उन्नीसवीं सदी के किसी कल्पनाशील मस्तिष्क की उपज है। कुछ समय पहले उर्दू में लाहौर के मुंशी अहमदुद्दीन ने 'जेबुन्निसा' की एक जीवनी लिखी थी। श्रीमती वेस्ट ब्रुक ने 'दीवान आफ जेबुन्निसा' की प्रस्तावना में उक्त जीवनी का ही संक्षिप्त विवरण दिया है। इस विषय में अधिक जानकारी के लिए डा० यदुनाथ सरकार की 'स्टडी इन औरँगजेब्स रेन' (पृष्ठ १३०-१४१) देखें। डा० सरकार ने स्पष्ट लिखा है कि उक्त प्रेमी के देग में उबाले जाने की बात जहाँआरा से संबंधित है, जेबुन्निसा से नहीं।

—डा. समरबहादुर सिंह, पटना

अप्रैल अंक का मुखपृष्ठ सुंदर है। 'नंदाजी से भेंट' तन्मय हो कर पढ़ गया। प्रश्न काफी आत्मीयता से पूछे गये हैं और नंदाजी ने भी स्पष्टता से उत्तर दिये हैं।

'अमरफल' कहानी भी अच्छी लगी। इस की कुछेक पंक्तियाँ तो जैसे जीवन-सार हैं, जैसे—"मनुष्य कर्तव्य से अमर होता है, उत्साह से जवान होता है, प्रार्थना से प्रफुल्ल रहता है और परोपकार से चिर-जीवी बनता है।"

—डॉ० एम० एस० अग्रवाल, दिल्ली

अप्रैल अंक में श्री भगवतीचरण वर्मा की 'शिकायत है' में लेखक से अधिक व्यक्ति उभरा है, जो यथार्थ के धरातल पर अनुभवी कलम की ईमानदारी व्यक्त करता है।

'कथान्तर' के अंतर्गत 'विजयी' को

मैं सशक्त महसूस नहीं कर पा रहा हूँ ।

'बिन्दु-बिन्दु विचार' सदा से ही सौष्ठव लिये आता है ।

—ब्रजेश 'चंचल' कुनाड़ी (राजस्थान)

वीर सावरकर पर लेख और अभिनंदन पर व्यंग्य बड़ी सशक्त रचनाएँ रहीं । ये सामयिक भी इस दृष्टि से हैं कि इन दिनों अभिनंदनों की धूम मची है । कुछ लोग तो स्वयं ग्रंथ छपवा रहे हैं और गौरवान्वित हो रहे हैं । सही समय पर व्यंग्यकार की कलम ऐसे लोगों पर तलवार बन कर गिर पड़ी है ।

—सु० कु० चेतन, नयी दिल्ली

'कादम्बिनी' का प्रत्येक अंक स्वयं में एक विशेषता है । स्थायी स्तंभ 'शिकायत है' के अंतर्गत आप जिन साहित्यकारों का चित्र देते हैं, उन पर अगर उन के हस्ताक्षर भी हों और चित्रों को पत्रिका की शोभा बिगाड़े बिना उस में से निकाला जा सके, इस तरह लगाया जाये तो अधिक अच्छा रहेगा ।

—भवानीशंकर जोशी, सुमेरपुर

(आप का सुझाव देर से प्राप्त हुआ । अब यह स्तंभ हम बंद कर रहे हैं । —सं०)

राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक विषयों पर बहुविध सामग्री यदि एकसाथ कोई पढ़ना चाहता है तो वह 'कादम्बिनी' का प्रेमी हो जाता है । अप्रैल अंक में नंदाजी से भेंट, वीर सावरकर पर मन्मथनाथ गुप्त का लेख तथा भगवती बाबू का आत्मकथ्य बहुत पसंद आया । गुणाकर मुले का लेख भी काफी जानकारी देता है ।

—कंचनकुमार गुप्त, जबलपुर

'जीवन एक अनबूझ पहेली' स्तंभ बहुत रोचक है, जब कि 'शाश्वत स्वर', 'वचन-वीथी' और 'बिन्दु-बिन्दु विचार' के अंतर्गत 'कादम्बिनी' चिंतन-मनन की वह सामग्री प्रदान करती है जो दूसरी पत्रिकाओं में मिलना दुर्लभ है । कुल मिला कर 'कादम्बिनी' हिन्दी की एकमात्र ऐसी पत्रिका है जिस में पाठकों की विभिन्न रुचियों की पूर्ति का पूरा-पूरा खयाल रखा जाता है ।

—डा० गोपालसिंह, चंडीगढ़

सरोजकुमार तथा कृष्णबिहारी सहल की कविताएँ बहुत अच्छी लगीं । कहानियों में 'विजयी' तथा 'खटराग' और व्यंग्य के अंतर्गत प्रकाशित पी० रामेश्वरम की रचना भी ठीक बन पड़ी है ।

—रमा उपाध्याय, ग्वालियर

'कथान्तर' कुछ रुचा नहीं । 'वह बम' तथा 'एक पृष्ठ वीरता का' खूब अच्छी रचनाएँ बन पड़ी हैं । 'मगरमच्छ का भाषण' के अंतर्गत अश्क जी की आत्मकथा भी बहुत पसंद आयी ।

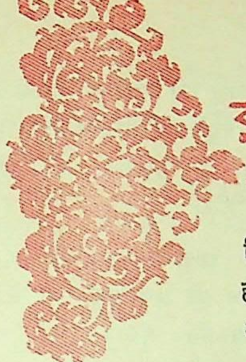
—श्रीराम श्रीवास्तव, कानपुर

'कादम्बिनी' का नियमित पाठक हूँ । यों तो मुझे वह सर्वांग ही पसंद है, किंतु विशेषकर मैं 'गोष्ठी', 'महकते जीवन फूल,' 'शाश्वत स्वर' और 'बिन्दु-बिन्दु विचार' को कई-कई बार पढ़ कर चिंतन की दिशा में बढ़ता हूँ । मेरी निश्चित राय है कि 'कादम्बिनी' में प्रकाशित रचनाएँ जीवन के संबंध में सही दिशा-निर्देश करती हैं ।

—रामगोपाल शर्मा, जयपुर

मैं सदैव 'कादम्बिनी' में ठोस सामग्री पाता हूँ । हिंदी में ऐसी पत्रिका पा कर वास्तविक प्रसन्नता होती है । कविताओं का चयन उच्च कोटि का होता है । चित्रकला संबंधी लेखों की कमी खटकती है । 'गोष्ठी' जैसे रोचक एवं ज्ञानवर्धक स्तंभ के लिए तो अधिक पृष्ठ मिलने चाहियें !

—चन्द्रमोहन प्रधान, मुजफ्फरपुर



शब्द-सामर्थ्य बढ़ाइये

निम्नलिखित शब्दों के जो सही अर्थ हों उन पर चिह्न लगाइये और अगले पृष्ठों में दिये उत्तरों से मिलाइये

१. **पर्जन्य**--- क. परिजन, ख. मेघ, वर्षा, ग. धन-धान्य, घ. मुसीबत ।

२. **उच्छिन्न**--- क. जूठा, ख. तितर-बितर, ग. कटा, उखड़ा हुआ, नष्ट, घ. लुप्त ।

३. **पर्णक**---क. पत्ते, ख. पूरक प्रश्न, ग. परचा, इश्तहार, घ. कोंपल ।

५. **अर्वाचीन**---क. प्राचीन, ख. चीन-विरोधी, ग. एक अलंकार, घ. हाल का, आधुनिक ।

५. **भाँपना**---क. रंग-ढंग से जान लेना, ख. छेड़ना, ग. घूर कर देखना, घ. नाप-जोख करना ।

६. **अर्थकर**---क. टीकाकार, ख. संपत्ति पर लगने वाला कर, ग. जिस से पैसा मिले, घ. अर्थपूर्ण ।

७. **भवान्निष्ठ**---क. आदरणीय, ख. आत्म-विश्वासी, ग. आप में विश्वास रखने वाला, घ. भगवती का उपासक ।

८. **अर्धांगिन्**---क. पत्नी, ख. पक्षाघात, ग. शिव, घ. अर्ध-नग्न ।

९. **चुन्नी**---क. छोटा नग, ख. भूसी, ग. एक चिड़िया, घ. दाल के टुकड़े ।

१०. **अवद्य**--- क. वध न करने योग्य, ख. निंद्य, ग. बिना अवधि का, घ. बंधनहीन ।

११. **चरणायुध**---क. जूता, ख. बिछुआ, ग. मुरगा, घ. दुलत्ती ।

१२. **दिवांध**---क. दुविधा, ख. उल्लू, ग. जिसे दिन में दिखायी न दे, घ. दृष्टिकोण ।

१३. **गृही**---क. गीध, ख. गृहस्थ, ग. संन्यासी, घ. मेमार ।

१४. **तमोभिद्**---क. तामसिक, ख. अंधकारमय, ग. जुगनू, घ. तमतमाया हुआ ।

१५. **गूढ़पुरुष**---क. महान व्यक्ति, ख. गुप्तचर, ग. आध्यात्मिक व्यक्ति, घ. जिसे समझना कठिन हो ।

१६. **चिकनिया**---क. मुलायम, ख. विनम्र, ग. छैला, घ. चिकन का कपड़ा ।

१७. **संगायन**---क. फिल्मी कोरस, ख. बौद्ध उपदेशों का सहगान, ग. मंत्रों का उच्चारण, घ. सामवेद के गान ।

१८. **प्रख्यापन**---क. घोषणा, ख. विज्ञापन, ग. निश्चयपूर्वक आख्यान, घ. सूचना-प्रसारण ।

१९. **परिकर्षण**---क. किसी का निरंतर विकास करना, ख. खिंचाव, ग. खींचातानी, घ. गुरुत्वाकर्षण-शक्ति ।

२०. **निर्मान**---क. निर्माण, ख. मानहीन, ग. अपार, असीम, घ. अभिमानरहित ।

२१. **अनुश्रुत**---क. ऐतिहासिक, ख. परम्परागत, ग. पौराणिक, घ. लोक-जीवन में सुनी-सुनायी ।

२२. **अधिदेय**---क. अनुदान, ख. जो अतिरिक्त धन दिया जाये, ग. उत्तराधिकारी की सम्पत्ति, घ. ऋण में लिया धन ।

शब्द-सामर्थ्य के उत्तर

१. **पर्जन्य**—ख. मेघ; वर्षा; इंद्र—भारत में कृषि मूलतया **पर्जन्य** पर आश्रित है। तत्० सं० पुं०

२. **उच्छिन्न**—ग. कटा; उखड़ा हुआ; नष्ट—विपरीत परिस्थितियाँ प्राय: मनुष्य के सुख-स्वप्नों को **उच्छिन्न** कर देती है। तत्० वि०

३. **पर्णक**—ग. परचा, इश्तहार—चुनाव-काल में विभिन्न राजनीतिक दल जनता का मत प्राप्त करने के लिए **पर्णक** वितरित करते हैं। तत्० सं० पुं०

४. **अर्वाचीन**—घ. हाल का, आधुनिक—भारतीयों ने देश के **अर्वाचीन** इतिहास में साहस और वीरता के अनेक उज्ज्वल पृष्ठ जोड़ दिये हैं। तत्० वि०

५. **भाँपना**—क. रंग-ढंग से जान लेना, ताड़ लेना—पुलिस अपराधियों की शक्ल से ही उन्हें **भाँप** लेती है। हि० क्रि०

६. **अर्थकर**—ग. जिस से पैसा मिले—उस ने जो व्यावसायिक योजना बनायी है वह **अर्थकर** सिद्ध हो सकती है। तत्० वि० (स्त्री०—अर्थकरी)

७. **भवन्निष्ठ**—ग. आप में विश्वास रखनेवाला। कम परिचित व्यक्तियों के नाम लिखे गये पत्रों के अंत में, हस्ताक्षर के ठीक पहले प्रयुक्त होने वाला समस्तपद, अँगरेजी के 'फेथफुली यौर्स' का पर्याय। तत्० वि०

८. **अर्धांगिन्** (अर्धांगी)—ग. शिव—**अर्धांगिन्** की **अर्धांगिनी** (पत्नी) पार्वती हैं। तत्० सं० पुं०

९. **चुन्नी**—क. छोटा नग, माणिक या लाल का छोटा टुकड़ा—उस की अँगूठी में **चुन्नी** जड़ी है। घ. अर्थ में भी प्रयुक्त। सं० स्त्री०

१०. **अवद्य**—ख. निंद्य, त्याज्य, अधम—माता-पिता की सेवा न करनेवाले लोग **अवद्य** हैं। तत्० वि०

११. **चरणायुध**—ग. मुरगा—**चरणायुधों** का द्वंद्व अब दिखायी नहीं देता। तत्० सं० पुं०

१२. **दिवांध**—ख. तथा ग. दोनों अर्थों में प्रयुक्त—संसार में **दिवांध** हो कर विचरण न करो।

१३. **गृही**—ख. गृहस्थ—**गृही** व्यक्ति परिवार के प्रति अपने उत्तरदायित्व को किसी क्षण नहीं भूल सकते। तत्० वि०

१४. **तमोभिद्**—ग. जुगनू—**तमोभिद्** अँधेरी रात को मनोहारिणी बना देते हैं। तत्० सं० पुं०

१५. **गूढ़पुरुष**—ख. गुप्तचर—युद्ध-काल में शत्रु **गूढ़पुरुषों** का जाल बिछाने की चेष्टा करता है।

१६. चिकनिया—ग. छैला—चिकनिया बन कर घूमना-फिरना सभ्यता का लक्षण नहीं है।

१७. संगायन—ख. बौद्ध उपदेशों का सहगान—यूरोपीय धर्मसभाओं की भाँति भारतीय बौद्ध भिक्षुओं की भी संगायन-सभाएँ हैं। सं० पुं०

१८. प्रख्यापन—ग. निश्चयपूर्वक आख्यान, जो लिखित रूप में हो—सभी संपादक सरकार को पत्रिका प्रकाशित करने का प्रख्यापन भर कर देते हैं। तत्० सं० पुं०

१९. परिकर्षण—क. किसी का निरंतर विकास करना, खींचने की क्रिया—उत्तम पत्रिकाओं का निरन्तर अध्ययन करने से हम अपनी साहित्यिक रुचियों का परिकर्षण कर सकते हैं। तत्० सं० पुं०

२०. निर्मान— ग. तथा घ. दोनों अर्थों में प्रयुक्त—निर्मान (असीम) आकाश, निर्मान (अभिमानरहित) व्यक्ति। वि.

२१. अनुश्रुत—घ. लोक-जीवन में सुनी-सुनायी—वीर बालक प्रहलाद के जीवन के साथ अनेक अनुश्रुत कथाएँ सम्बद्ध हैं। तत्० वि०

२२. अधिदेय—ख. जो अतिरिक्त धन दिया जाये—मैं ने जो बीमा करवाया था उस के अब थोड़े से अधिदेय जमा करवाने रह गये हैं। अभि० सं० पुं०

तत्. = तत्सम, सं. = संज्ञा, वि. = विशेषण, पुं = पुंलिग, स्त्री. = स्त्रीलिंग हि. = हिन्दी, अभि. = अभिनव

वचन-वीथी

आदमी को अपने देश पर अभिमान हो और वह इस प्रकार रहे कि देश उस पर अभिमान करे। —अब्राहम लिंकन

यदि प्रत्येक छोटी-बड़ी बात के लिए जनता को सरकार का मुंह ताकना पड़े तो ऐसा स्वराज्य निकम्मा है। —महात्मा गाँधी

न तो हम भयभीत हो कर वार्ता करें और न ही वार्ता करने से भयभीत हों। —केनेडी

प्रकृति का रहस्य धीरज है, उसी का अनुकरण करो। —इमर्सन

यदि किसी की बुराई ही करना है तो उसे कहो मत; उसे लिखो—लिखो जलधारा को छूते हुए तट की बालू पर। —नेपोलियन हिल

तुलसीदास में शेक्सपियर और बाइबिल दोनों हैं। —विनोबा

जीवन वह नाट्यशाला है जहाँ सर्वोत्तम स्थानों को निकृष्टतम व्यक्तियों ने घेर रखा है। —विलियम इंगे

लानत है उस पर जो मुझे पहली बार धोखा दे और लानत है मुझ पर अगर मैं उस से दोबारा धोखा खाऊँ। —अज्ञात

झगड़े मिट जाते हैं, किंतु मुंह से निकले शब्द कभी नहीं मिटते। —सियरा लियोन

ज्ञानी वही है जिसे अपने अज्ञान का भान है। —सुकरात

बिन्दु बिन्दु विचार

मैं एक मधुर मदालु अलस स्वर का बंदी हूँ
जब-जब मेरा अहं जागता है यह अलस स्वर मुझे लोरियाँ देने लगता है--

★ सो जाओ, बाहर चिलचिलाती धूप तुम्हें झुलसायेगी; सो जाओ, बाहर हिमानी अंधड़ तुम्हें ठिठुरायेंगे; सो जाओ, बाहर जलोद्वेलन तुम्हें लीलेंगे; सो जाओ, बाहर...

★ हाँ, सो जाओ! शय्या के सुखद तंद्रिल क्रोड़ को, घर के आश्वस्त वातावरण को और आत्मीयों के सहज अपनत्व को त्याग कर तुम्हें जागरण के कोलाहल और संघर्ष में नहीं पड़ना है

★ और मैं चुनौतियों के अपमान को पी कर सोता ही रह जाता हूँ

★ मैं एक मधुर मदालु अलस स्वर का बंदी हूँ

★ जब मेरा विवेक जागता है तब भी, जब मेरा भाव जागता है तब भी और जब मेरा बोध जागता है तब भी यही अलस स्वर मुझे लोरियाँ दे कर थपथपाने लगता है

★ यह मधुर मदालु अलस स्वर, जिस का मैं बंदी हूँ, मेरे प्रेत का है

★ पंडित जो भी लिख और पोथियाँ जो भी कहें, वास्तविकता यह है कि आदमी का प्रेत आदमी के साथ ही जन्मता है और आदमी के साथ ही मरता है

★ मेरा प्रेत छाया की भाँति निरंतर मेरे साथ है और जन्म तथा मरण के बीच जाने कितनी बार यह प्रेत मुझे मारने के लिए अपनी प्रवंचक मधुर मदालु वाणी में लोरियाँ गायेगा

★ इस के बंदीगृह से मुक्त होने के लिए मुझे जागना है और जागते ही रहना है

मैं एक अनुशासनपूर्ण वर्जनात्मक स्वर का बंदी हूँ
जब भी मैं जागता हूँ और आगे बढ़ना चाहता हूँ वर्जना का यह कर्कश स्वर मेरे बढ़े हुए डग को ठिठका देता है——ठहरो, यह डग तुम्हारे समाज को मान्य नहीं है; ठहरो, यह डग तुम्हारे धार्मिक सहयात्रियों को मान्य नहीं है; ठहरो, यह डग तुम्हारे राजनीतिक सहयात्रियों को मान्य नहीं है; ठहरो, यह डग तुम्हारी परम्पराओं को मान्य नहीं है

* हाँ, ठहरे रहो ! सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक स्वीकृतियों की सुखद छाया को त्याग कर तुम्हें नूतन की अज्ञात, असुरक्षित और संदिग्ध परिस्थितियों में नहीं कूदना है। परम्पराओं द्वारा निर्धारित ही श्रेष्ठ है। लीक-लीक चलो और भाग्य पर भरोसा रखो
* और मेरा बढ़ा हुआ पग वहीं ठहर जाता है
* मैं एक अनुशासनपूर्ण वर्जनात्मक स्वर का बंदी हूँ
* जब मैं नयी धरतियाँ तोड़ना चाहता हूँ तब भी, जब मैं नये आकाश खोजना चाहता हूँ तब भी और जब मैं नये पाताल फोड़ना चाहता हूँ तब भी, यही अनुशासनात्मक स्वर अपनी पारम्परिक वर्जनाएँ ले कर मेरे आड़े आता है
* बंदीघर के बाहर भी बंदीघर है
* यह वर्जनात्मक स्वर मेरे पितर का है
* पंडित जो भी लिखें और पोथियाँ जो भी कहें, वास्तविकता यह है कि आदमी का पितर भी आदमी के साथ ही जन्मता है और आदमी के साथ ही मरता है
* यह पितर छाया की भाँति मेरे साथ है और अपने प्रेत के समान ही मुझे इस के बंदीगृह से भी मुक्त होना है
* नये युग के सूर्य से आँख मिलानी है तो प्रवंचक अकर्मण्यताओं और परम्परागत वर्जनाओं——दोनों को ही तिलांजलि देनी होगी

रामानन्द दोषी

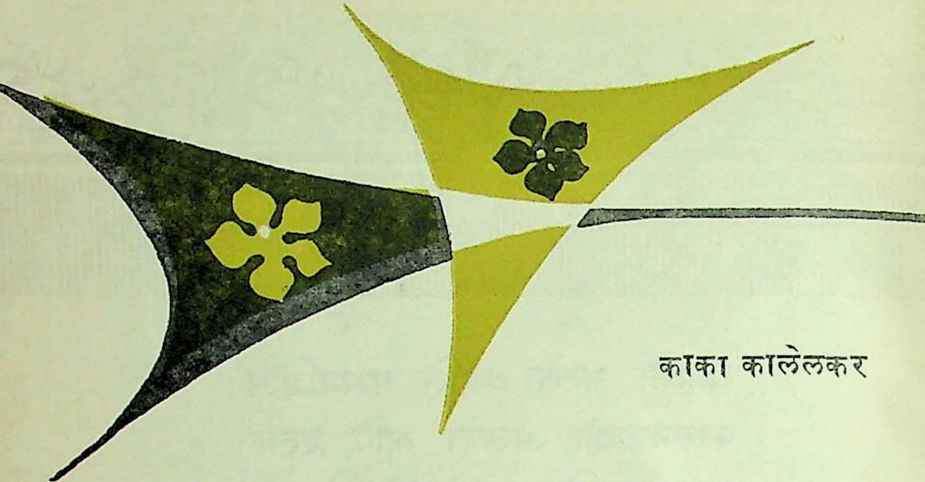
शाश्वत-स्वर

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मि:
सहस्त्राक्षो अजरो भूरि रेता:
तमा रोहन्ति कवयो: विपश्चितस्तस्य
चक्रा भुवनानि विश्वा

अथर्ववेद
१९/५३/१

समय सात प्रकार की किरणोंवाले (सूर्य) के समान प्रकाशवान है। यह सहस्त्र नेत्रवाले (इन्द्र) के समान शासन करनेवाला है। अजर अर्थात कभी वृद्ध न होने वाला तथा महाबलशाली है। समय सदा गतिशील घोड़े के समान है। बुद्धिमान लोग इसे अपना वाहन बनाते हैं, क्योंकि यह सर्वव्यापक है। भिन्न-भिन्न परिस्थितियों के कारण समय अपना रंग बदलता है।

उपर्युक्त मंत्र में काल अर्थात समय के महत्व को बड़े प्रभावोत्पादक शब्दों में प्रकट किया गया है। उस के सदुपयोग के बारे में भी इस से मनुष्य को प्रभूत प्रेरणा मिलती है।



काका कालेलकर

कोई परदेशी मनीषी भारत में आ कर कुछ दिन रहने के बाद आश्चर्य से कहता है—'यह देश अजीब है। यहाँ चेहरों की, पहनने के कपड़ों की, भाषाओं की और रस्म-रिवाजों की इतनी विविधता होते हुए भी न जाने किस तरह से एकता है!' हम देखते हैं कि यहाँ धर्म का महत्व इतना है कि हरेक धर्म का समाज ही अलग होता है। कभी-कभी उन की आपस में बनती भी नहीं, तो भी सब में एक विचित्र एकता हम महसूस करते हैं, जिस का वर्णन नहीं हो सकता। लेकिन और देशों से आप को अलग बनाने वाली कोई एकता है अवश्य। क्या हम उसे जीवन-दृष्टि की समानता कह सकते हैं? हम ने माना था कि कम से कम यहाँ के ऐंग्लो-इंडियन तो औरों से पूरे-पूरे अलग दीख पड़ेंगे। वे अलग हैं सही, लेकिन उन में भी ऐंग्लो के साथ इंडियन तत्व प्रकट हुए बिना रहता नहीं। वे तो अपने को पूरे-पूरे अँगरेज-जैसे बनाना चाहते हैं, लेकिन उन में भी कुछ भारतीयता झलकती ही है। आप लोगों के ध्यान में यह विशेषता शायद नहीं आ सकेगी। हम तो स्पष्ट देखते हैं।

हम मानते हैं कि ऐसी कुछ एकता है सही, लेकिन किस कारण वह है, यह तो हम कह नहीं सकते और इस से क्या लाभ मिल सकता है सो भी हम अभी तक ढूंढ़ नहीं पाये। हम जब अपनी संस्कृति की खूबियों का वर्णन अभिमान के साथ करते हैं तब एक दार्शनिक सूत्र दुनिया के सामने रख कर कहते हैं—विविधता में एकता। यही है भारतीय संस्कृति का आंतरिक प्राणतत्व। जब कोई मुसलमान भारत के बाहर जा कर अपने मुसलमान होने की बात जोरों से कहता है तब पश्चिम के लोग और दूसरे मुसलमान भी तुरंत पकड़ लेते हैं कि यह तो भारतीय ही है। भारत के एक मुस्लिम मौलवी ने अभिमान के साथ कहा था कि अरबिस्तान में इसीलिए हमारी इज्जत है कि हम इस्लाम के रहस्य को ऐसी खूबी से समझते और समझाते हैं कि दूसरों को आश्चर्य होता है। भारतीय

एकता की दिशा में

हमारी राष्ट्रीय एकता के विकास में शताब्दियों से जो बात बाधक रही है उसी को इंगित कर विद्वान लेखक ने समाज से अंतर्जातीय विवाहों की दिशा में एक साहसपूर्ण कदम उठाने का अनुरोध किया है

दार्शनिक आत्मा हमें इस्लाम का रहस्य समझाने में मदद करती है। ईसाई भी कहते हैं कि भारत के ईसाई जब हमारे धर्म की बातें करते हैं तब उस में हम एक गहरी आध्यात्मिक दृष्टि पाते हैं, जो हमें आश्चर्यचकित करती है।

भारत के वातावरण में संतों का धर्म-प्रचार इतना घुल-मिल गया है कि एक विशेष जीवन-दृष्टि से कोई बच नहीं पाता, लेकिन इस गहरी एकता से हम कोई लाभ नहीं उठा सके हैं। हमें तो राजनीतिक जीवन में हमारी विविधता कदम-कदम पर अखरती है और कोशिशें करने पर भी एकता से हम लाभ नहीं उठा सकते।

हम भी जानते हैं कि कोई अद्भुत एकता हम लोगों को भारतीय बनाती है, लेकिन वह एक तरह की आबोहवा ही है। वह हमें एकत्र बाँध नहीं सकती, हम सब मिल कर के एक हृदय हो नहीं सकते। परतंत्रता की परिस्थिति असह्य हो कर हम लोगों में आतंक की एकता आयी थी सही, लेकिन वह कितनी छिछली है, अँगरेज जानते थे। हमारी विविधता को बढ़ावा दे कर वे अपने आप को काफी समय तक मजबूत कर सके थे। समान परतंत्रता और समान असहायता, यही थी हमारी एकता।

गाँधीजी ने अपनी अद्भुत शक्ति से जो थोड़ी एकता इस देश में पैदा की उस के बल पर हम स्वतंत्र हुए सही, लेकिन वह एकता इतनी मजबूत नहीं थी कि देश का बँटवारा हम टाल सकते।

सन १८५७ में आजाद बनने का जो प्रयत्न हुआ उस में मुसलमानों को अपना राज्य फिर से पाना था। भारत के हिंदुओं ने उन के साथ दिलोजान से सहयोग दिया। लेकिन तब हम आजाद न हो सके। १८५७ से पहले अँगरेज हिंदुओं को समझाते थे कि मुसलमानों के आतंक से आप को बचाने वाले हम ही हैं। मुसलमान उन दिनों ब्रिटिश सत्ता से बिगड़े हुए थे। उन की विद्या उन्होंने ग्रहण नहीं की। हिंदुओं ने अँगरेजी सीख कर अच्छी प्रगति की और अँगरेजों के प्रियपात्र भी बने। १८५७ में जो हिंदू-

मुस्लिम एकता हुई थी वह क्षणिक भले हो, अँगरेज उस से डर गये थे। इसलिए उन्होंने पहले हिंदुओं को अपनाया। बाद में जब पढ़ाई के साथ हिंदुओं की महत्वाकांक्षा बढ़ी और स्वराज्य के स्वप्न वे देखने लगे तब अँगरेजों ने हिंदुओं को राज्यनिष्ठाहीन समझा और मुसलमानों को अपनाने लगे। मुसलमानों ने देखा कि शिक्षा में वे पिछड़ गये इसलिए हिंदुओं को अच्छी नौकरियाँ मिलती हैं तब उन्होंने अलीगढ़ यूनीवर्सिटी की स्थापना की। अँगरेजों ने तभी से मुसलमानों को अपनाया और वे अँगरेजी राज्य के खैरख्वाह बने! तब से आज तक मुस्लिम लीग ने कांग्रेस का विरोध किया और वे अँगरेजों के प्रियपात्र बने। आज भी कृतज्ञ अँगरेज पाकिस्तान का पक्षपात करते हैं, जो अँगरेजों की ही निर्मिति है। कांग्रेस ने मुसलमानों को अपनाने का पूरा प्रयत्न किया, जो अँगरेजों ने पूरा सफल होने नहीं दिया। हिंदू-सभा ने कांग्रेस की नीति का विरोध किया, जो अब भी चालू है।

थोड़े-से मुसलमान बाहर से आये। उन्होंने यहाँ की परिस्थिति देख कर यहाँ अपना राज्य स्थापित किया। असंतुष्ट हिंदुओं को, लोभी हिंदुओं को और इस्लाम-प्रेमी हिंदुओं को उन्होंने मुसलमान बनाया।

हिंदू समाज में विविधता बढ़ती ही गयी। एकता का कोई महत्व ही नहीं रहा और हिंदुओं ने आंतरिक एकता बढ़ाने का महत्व भी नहीं समझा। आज भी नहीं समझते हैं। एक जाति की अनेक जातियाँ हो सकती हैं। दो जातियाँ मिल कर एक जाति बनने का उदाहरण शायद हजारों वर्ष के इतिहास में एक भी नहीं मिलेगा। गाँधीजी ने अस्पृश्यता-निवारण का प्राणपण से प्रयत्न किया। वैसा प्रयत्न हिंदू-सभा ने किया हो, तो हमारे सामने आया नहीं है। हिंदू संगठन को मैं ऐसे बीमारों का संगठन कहता हूँ जो अपना रोग दूर करने की कोशिश किये बिना, बल्कि रोग को मजबूत करते हुए, संगठित होना चाहते हैं। भारत में हिंदुओं का प्रचण्ड बहुमत है तो भी चुनाव में बहुमत कांग्रेस का ही होता आया है। यह बताता है कि हिंदू-सभा की नीति में आत्म-निरीक्षण नहीं है और जो है सो निरोग नहीं है। गाँधीजी ने जो अस्पृश्यता-निवारण का काम किया उस का विरोध हिंदू-सभा ने नहीं किया। यह एक पुण्यकर्म हुआ सही, लेकिन आज भी गाँवों में हरिजनों की हालत शोचनीय है। जातियाँ कम करने का और जातियों में प्रेम-भाव बढ़ाने का प्रयत्न हिंदुओं की ओर से कहीं भी नहीं रहा। हिंदुओं ने आज भी जातियों का ऊँच-नीच भाव नहीं छोड़ा है।

जब मिशनरी लोगों ने भारत के आदिवासियों को ईसाई बनाना आरंभ किया तब चंद आदिवासी कहने लगे कि हम हिन्दू हैं। मिशनरियों ने समझाया कि आप हिंदू नहीं हैं। हिंदुओं ने आज तक आप की सेवा कुछ नहीं की है। अगर आप लोग हिंदू बनेंगे तो वे लोग आप को अस्पृश्य बनायेंगे और कहेंगे—हिंदू-शास्त्र के अनुसार नम्रता से सवर्णों की सात जन्म सेवा करते जाओ तब जा कर तुम्हारी अस्पृश्यता दूर होगी। तुम्हारे बाल-बच्चे तो अस्पृश्य रहेंगे ही, इसलिए बेहतर है कि ईसाई बनो।

विविधता में एकता जिन की संस्कृति का भव्य सिद्धांत है उन हिंदुओं ने आदिवासियों को अपनाने के लिए क्या किया?

आर्यसमाजी तो हरिजनों को और आदिवासी गिरिजनों को उन की शुद्धि कर के ही आर्य बनाने को तैयार हैं, यानी हरिजन और गिरिजन दोनों को पहले मंजूर करना चाहिये कि वे अशुद्ध हैं। शुद्ध आर्यसमाजी हमारी शुद्धि करेंगे तभी हम आर्य बन सकेंगे। हमें पता नहीं कि आर्यसमाज के प्रयत्न से कितने आदिवासी आर्य बन गये और हिंदू जाति का कौन-सा सवाल हल हो गया! हम लोग आपस में शास्त्रार्थ और चर्चा करते रहे, लेकिन हमारे धर्मों का श्रेष्ठ भाग हमारी पिछड़ी जातियों को कभी भी मिला नहीं। संतों ने उन को उच्च संस्कृति सिखायी। उन को ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग दिखाया, लेकिन हिंदू-समाज ने इन भक्त पिछड़े लोगों का सामाजिक उद्धार तो कभी किया ही नहीं। मुसलमान और ईसाई राज्यकर्ताओं के सामने हम अछूतों से भी बदतर हालत में रहे, लेकिन अपने समाज के अंदर हम ने कहीं भी समानता आने नहीं दी। बुद्ध भगवान ने उच्च-नीच भाव कुछ तोड़ा। हिंदू संस्कृति का कुछ संस्कार किया। उस में उन्हें काफी सफलता मिली। तुरंत हिंदू-समाज ने घोषित किया कि बुद्ध भगवान तो भगवान विष्णु के ही अवतार थे, लेकिन लोगों को बहकाने के लिए आये थे। वैदिक यज्ञ-धर्म का उच्छेद करने का अपराध उन्होंने किया, इसलिए हमारे शंकराचार्य ने बौद्ध धर्म को भारत से निकाल दिया। यह है हमारी राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक दृष्टि!

जिन बुद्ध भगवान ने हमारे लिए सारे एशिया में एक विशाल धर्म-साम्राज्य बना दिया उन्हें उत्साहपूर्वक स्वीकार करने की जगह हम ने विष्णु भगवान को ही बदनाम किया और कहा कि भगवान भी लोगों को बहकाने के लिए और उन के बीच अधर्म का प्रचार करने के लिए अवतार ले सकते हैं।

आज भी तिब्बत से जो बौद्ध शरणार्थी भारत आ रहे हैं उन्हें अपनाने का काम हम कुछ नहीं कर रहे हैं। सरकार करे और मिशनरी लोग भी करें। हम तो उन्हें अपने से अलग ही रखेंगे और वे भी भारत का स्वभाव समझ कर अलग ही रहना पसंद कर रहे हैं।

हिंदू धर्म की यह जो अलग-अलग रहने की और सब को अलग रखने की प्रधान नीति है इसे तोड़ने का प्रयत्न ऋषि-मुनियों के दिनों से थोड़ा-थोड़ा होता आया है। इसे किसी ने प्रोत्साहन नहीं दिया है। दो कुलों के बीच वैमनस्य टालने के लिए ऋषियों ने नियम बनाया कि वेद-पूर्व काल में जैसे एक परिवार के अंदर—भाई-बहिन के बीच भी—जो विवाह होते थे वे बंद होने चाहियें। समाज ने ऋषि-मुनियों का नियम मान लिया और एक परिवार के अंदर के विवाह बंद हुए। केवल हिंदू समाज में ही नहीं, अफ्रीका की थोड़ी पिछड़ी हुई जमातें हम छोड़ दें तो सारी दुनिया में एक परिवार के अंदर विवाह नहीं होते। कुलों की विविधता तोड़ कर एकता लाने का ऋषि-मुनियों का यह प्रथम प्रयत्न था।

वैदिक ऋषि-मुनियों ने दूसरा नियम बनाया कि गोत्रों में अलग-अलग रहने का स्वभाव तोड़ना चाहिये। उन्होंने नियम बनाया कि सगोत्र विवाह नहीं हो सकते। विवाह हो तो अपने गोत्र के बाहर ही होना चाहिये। अपने ही गोत्र के अंदर विवाह करना निषिद्ध है, अधर्म है। यह नियम अभी-अभी तक चलता रहा।

स्वराज्य होने के बाद हम ने सगोत्र विवाह का निषेध ढीला कर दिया।

मध्यकाल में जब सार्वभौम राज्य नहीं थे तब गाँव-गाँव के बीच भी झगड़े होते थे। इसीलिए तो हरेक गाँव के इर्द-गिर्द किले की दीवारें बनायी गयीं। सीमा-विवाद नदी के पानी के लिए चलते थे। गनीमत है कि तब भाषा-विवाद नहीं थे। सामाजिक नेताओं ने गाँव-गाँव के बीच युद्ध टालने के लिए नियम बनाया कि एक गाँव के लड़के-लड़कियाँ भाई-बहिन माने जायें। शादी करना है तो वर या वधू दूसरे गाँव में ही ढूंढ़ने चाहियें। इस का फल अच्छा हुआ। लोगों ने सोचा कि पड़ोस के गाँव का कोई बहादुर युवक हम लड़ाई में मार डालेंगे तो अपने गाँव की कोई लड़की विधवा बनेगी। इस प्रकार ये युद्ध धीरे-धीरे कम हो गये। राज्यसत्ता मजबूत होने लगी। सामाजिक संगठन व्यापक हुआ। विविधता में एकता आने लगी।

क्या आज हिंदू समाज विविधता में एकता लाने के लिए यह नियम बनाने को तैयार है कि विवाह करना हो तो भिन्न जाति में ही करना चाहिये, स्वजाति में विवाह करना निषिद्ध माना जाये, अधर्म माना जाये। अगर ऐसा नियम हुआ तो जाति-जाति के बीच के झगड़े एकदम सुधर जायेंगे। चुनाव के दिनों में जो जाति-संकीर्णता बाधा डालती है वह भी दूर होगी और विविधता में बहुत बड़ी एकता स्थापित होगी।

हम जाति को कायम रख द्वैतवादी और अद्वैतवादी परिवारों के अंदर की शादियाँ मंजूर करते हैं। शैव-वैष्णव और शाक्त भी परस्पर शादियाँ कर सकते हैं। सनातनी और सिख भी—अगर जाति एक हो तो—परस्पर शादियाँ कर सकते हैं। गुजरात में जैन और वैष्णव बनिये भी परस्पर शादियाँ कर सकते हैं। धर्मभेद, उपासना-भेद, दर्शन-भेद आड़े नहीं आते। तो एक ही धर्म की अनेक जातियों में विवाह करने का रिवाज क्यों न चलायें? पांच-दस अंतर्जातीय विवाह करने से कुछ नहीं होगा। ऋषि-मुनियों का उपाय स्वीकार कर के भविष्य में अपनी जाति में विवाह नहीं होने चाहियें। तब जा कर विविधता रहते हुए एकता सिद्ध होगी।

"चर्च में प्रार्थना करते समय एक आदमी ने देखा कि उस के आगे बैठे एक व्यक्ति ने अपने कानों में केले ठूँस रखे हैं। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उस ने धीरे से पूछा "आप ने अपने कानों में केले क्यों ठूँस रखे हैं?"

आगे वाले ने कोई उत्तर नहीं दिया। दो-तीन बार पूछने पर भी जब वह कुछ नहीं बोला तो वह आदमी जोर से चीखा, "मैं पूछता हूँ, तुम ने अपने कानों में केले क्यों ठूँस रखे हैं?"

आगे वाले ने पीछे घूम कर धीरे से कहा, "भाई, क्या कहा तुम ने? मुझे सुनायी नहीं दिया, क्योंकि मैं ने अपने कानों में केले ठूँस रखे हैं।"

पानीपत कांड

नैतिक मूल्य ख़तरे में

मन्मथनाथ गुप्त

हाल में जो तीन व्यक्ति पानीपत में जला कर मारे गये हैं, उन से शहीदों की बिलकुल नयी तो नहीं, पर एक विरल परंपरा चल पड़ी है। साधारणतया शहीद शब्द से हम उन्हीं लोगों को लेते रहे हैं जो किसी न किसी रूप में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध लड़ते हुए फाँसी पा गये, गोली से मरे या अनशन के कारण शरीर छोड़ गये, जैसे—मंगल पांडे, खुदीराम बोस, चंद्रशेखर आजाद, भगतसिंह, यतीन्द्रनाथ दास, आदि।

पर, अब हम एक नये युग में प्रवेश कर रहे हैं, जब केवल सरकार के विरुद्ध लड़ना ही पुरुषार्थ नहीं रह गया है, बल्कि गुमराह जनता के हाथों पीड़ित होने, यहाँ तक कि प्राण भी खोने, का डर पैदा हो गया है।

दूसरे शब्दों में, क्रांतिकारी का अर्थ जहाँ एक ओर शासन-सत्ता को बदल देने का प्रयत्न करने वाले व्यक्ति से है, वहाँ अब ऐसे व्यक्ति से भी है जो गुमराह जनता के अत्याचारों का सामना करने की सामर्थ्य रखता हो, चाहे इस के लिए कुछ भी कीमत क्यों न चुकानी पड़े। इस के उदाहरण में हम पानीपत में मारे गये क्रांतिकुमार और उन के दो अन्य साथियों को ले सकते हैं।

क्रांतिकुमार का असली नाम तो कुछ और ही था, पर उन्होंने स्वेच्छा से अपना नाम बदल लिया था। १९२९ में जब भगतसिंह, बटुकेश्वर दत्त, राजगुरु, सुखदेव आदि पर मुकदमा चल रहा था तो क्रांतिकुमार नौजवान थे। उन्होंने डिफेंस कमेटी (बचाव-समिति) के सचिव के रूप में बहुत महत्वपूर्ण काम किया। उस के बाद आजादी मिलने तक वे कई बार गिरफ्तार हुए। रोटी के लाले पड़े रहने पर भी क्रांतिकुमार ने क्रांति का पल्ला न छोड़ा।

सरदार भगतसिंह और उन के साथियों को फाँसी होने के बाद कराची में हुए कांग्रेस-अधिवेशन के अवसर पर क्रांतिकुमार कुछ नौजवानों को ले कर वहाँ गये थे और उन्होंने गांधीजी को

काले फूल पेश किये थे। पर इतिहास कई बार बड़ा अजीब परिहास करता है! क्रांतिकुमार इतने साल बाद वैसे ही तत्वों द्वारा मारे गये जो गांधीजी की हत्या के लिए जिम्मेदार थे।

क्रांतिकुमार पत्रकार थे, पर पानीपत के संवाददाता के नाते उन की हालत कोई विशेष अच्छी नहीं थी। पानीपत के शहीदों में वही सब से गरीब थे। एक कमरे के घर में एक बड़े परिवार के साथ रहते थे। उन की कई लड़कियाँ हैं, जिन का ब्याह अभी होना है।

मेरा परिचय उन से तब हुआ जब बटुकेश्वर दत्त पटना से ला कर दिल्ली के अस्पताल में रख गये। यह एक केंद्र बन गया था, जहाँ पुराने और नये क्रांतिकारी तथा अन्य लोग एकत्र होते थे। क्रांतिकारी युग के मधु दा (सुरेंद्रमोहन घोष), कुंदनलाल, चमनलाल आजाद आदि से ले कर कामराज, स्व. लालबहादुर शास्त्री तक सभी आते थे। यहीं क्रांतिकुमार से मेरा घनिष्ठ परिचय हुआ था। बटुकेश्वर दत्त के शव के साथ जो पचास के करीब साथी दिल्ली से फीरोजपुर गये थे उन में क्रांतिकुमार भी थे। वहाँ लिये गये बहुत से फोटुओं में उन के चित्र खिंच गये हैं। यद्यपि वे नौजवान नहीं थे, फिर भी उन में नौजवानों की तरह जोश था। जब बटुकेश्वर दत्त को चिता पर चढ़ाया गया उस समय वे रो पड़े थे। शरीर से वे कमजोर थे और दमा के पुराने मरीज, पर मन से वे कमजोर नहीं थे। मैं ने जो कुछ जाना उस से मेरे मन पर यह छाप पड़ी कि यदि क्रांतिकुमार का नैतिक बल न होता तो वह साइकिल की दुकान जिस में वे उस समय थे, कब की बंद हो गयी होती। पानीपत में जो वारदातें हुईं उन में वे स्वभावानुसार अपने सिद्धांतों पर अडिग रहे तथा गुमराह जनता के सामने घुटने टेकने से इनकार कर अपनी जान दे दी।

क्रांतिकुमार-जैसे व्यक्ति की—जो आजन्म अपने सिद्धांतों के लिए लड़े और स्वतंत्रता के बाद भी जो किसी प्रलोभन में नहीं फँसे--ऐसी मृत्यु हमें यह सोचने को बाध्य करती है कि आज हम किस धरातल पर जी रहे हैं और अब क्रांति का रूप क्या हो गया है।

पंजाबी सूबे के संबंध में निर्णय की घोषणा होने पर पंजाब के कुछ भागों का वातावरण क्षुब्ध हो उठा। पानीपत में भी स्थिति ठीक न होने के कारण वहाँ १३ मार्च को दफा १४४ लागू कर दी गयी, जिस के अनुसार किसी प्रकार की सभा करना या जुलूस निकालना मना हो गया। उस दिन तो शांति रही, पर १४ मार्च को जुलूस निकला और उस ने दुकानें बंद कराने की चेष्टा की। आश्चर्य की बात है कि दफा १४४ लागू होने पर भी जब इस प्रकार के जुलूस निकलने लगे तो बाहर से किसी प्रकार की पुलिस या सैनिक मदद नहीं मँगायी गयी। अधिकांश दुकानें बंद रहीं, पर कुछ लोगों ने (जिन्हें मोटे तौर पर कांग्रेसी कहा जा सकता है) दुकानें बंद नहीं कीं।

दुकानें बंद करने के संबंध में इस प्रकार का मतभेद स्वाभाविक था। कुछ लोग समझते थे कि अन्य भाषाई सूबों की तरह पंजाबी सूबा बनने में कोई हर्ज नहीं है। दूसरी तरफ, कुछ लोग समझते थे कि हर हालत में पंजाब की एकता कायम रखनी चाहिये। दोनों मत अपनी-अपनी जगह ठीक कहे जा सकते हैं और दोनों के पीछे इतिहास की लंबी परंपराएँ

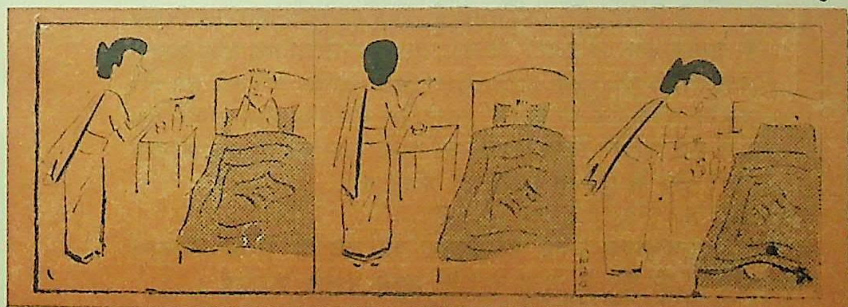
हैं। दोनों के पक्ष में कुछ तर्क हैं, जिन्हें आसानी से काटा नहीं जा सकता। लोकतंत्र में इन पर ठंडे दिमाग से विचार हो सकता था। किसी भी हालत में इसे उत्तेजनात्मक रंग देने की कोई आवश्यकता नहीं थी, पर उसे यह रूप दिया गया और नतीजा यह हुआ कि पानीपत की जनता गुमराह हो गयी।

१५ मार्च को पुनः जुलूस निकला और जब वह बिलकुल काबू से बाहर हो गया तब पुलिस ने उस पर गोली चलायी, जिस से एक व्यक्ति मारा गया।

जो लोग दुकान बंद कराना चाहते थे उन के हाथ में अब एक नया अस्त्र आ गया। उन्होंने कहा कि इस गोलीकांड के विरोध में दुकानें बंद हो ही जानी चाहियें। पर बताते हैं क्रांतिकुमार, दीवानचंद टक्कर और संतराम लांबा आदि कुछ लोगों ने कहा कि हम न तो इस तरफ हैं न उस तरफ। कहते हैं जनता को उत्तेजित करने के लिए क्रांतिकुमार के नाम से यह भी फैलाया गया कि एक नहीं दस लाशें गिर जायें, फिर भी हम कोई परवा नहीं करते। यह खबर क्रांतिकुमार को भी लगी और उन्होंने इस का प्रतिवाद किया। एक क्रांतिकारी भला जनता पर गोलीकांड का समर्थन कैसे करता!

क्रांतिकुमार तथा उन के साथी साइकिल की एक दुकान में थे। जब उत्तेजित जुलूस उस तरफ आया और पथराव शुरू हुआ तब दुकान में बैठे तीनों व्यक्ति भीतर चले गये। दुकान बंद कर देनी पड़ी। जुलूस लौट गया, पर कुछ लोग शायद पहले ही यह तय कर चुके थे कि इन लोगों को सजा मिलनी चाहिये, इसलिए टाट में पेट्रोल डाल कर उन्होंने दुकान में आग लगा दी। चूँकि भागने का कोई रास्ता नहीं था इसलिए तीनों व्यक्ति––क्रांतिकुमार, दीवानचंद टक्कर और संतराम लांबा––शहीद हो गये।

मैं पानीपत, कांग्रेस संसदीय दल के उपनेता सुरेंद्रमोहन घोष, संसद-सदस्य सतीश सामंत और भाई चमनलाल आजाद के साथ गया था। मैं ने उस दुकान का मुआयना किया। मालूम हुआ कि उस दुकान में एक भीतरी कमरा था, जिस में तीनों व्यक्तियों ने पथराव और आग से बचने के लिए आश्रय लिया था, किंतु वहीं वे जल कर मर गये। उन के रिश्तेदारों से यह भी पता लगा कि उन का सारा शरीर बुरी तरह जल गया था–यहाँ तक कि बड़ी कठिनाई से यह पता लगा कि कौन किस का कंकाल है। क्रांतिकुमार हर समय अपने साथ दमे की गोलियाँ लिये रहते थे, अतः गली हुई



शीशी से उन का पता लगा। एक दूसरे साहब घड़ी बाँधते थे, उस से उन का पता लगा। तीसरे व्यक्ति को इस तरह पहचाना गया कि इन दोनों में नहीं हैं तो तीसरे हैं। इस का अर्थ यह हुआ कि हद दर्जे की नृशंसता से काम लिया गया। सब से अजीब बात यह है कि जो व्यक्ति पुलिस की गोली से मारा गया था उस का बदला किसी भी प्रकार इन तीनों व्यक्तियों से निकाला नहीं जा सकता था। केवल दूकान खुली रखने के कारण सारा दोष क्रांतिकुमार तथा उन के दो अन्य साथियों पर लगाना यह सूचित करता है कि जिन लोगों ने भी यह काम किया वे आपे से बाहर हो गये थे और उन को इस बात का कोई ज्ञान नहीं रह गया था कि कौन शत्रु है और कौन मित्र।

हम लोग तीनों व्यक्तियों के परिवारों में गये और वहाँ सारी बातों की छान-बीन के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि जिन लोगों ने यह काम किया उन्होंने कुछ सोच-विचार कर नहीं किया, बल्कि भड़कावे में आ कर निहत्थे लोगों पर गुस्सा निकाल डाला।

इस तरह क्रांतिकारी का एक और अर्थ सामने आया—गुमराह लोगों के सामने आत्मसमर्पण न कर सिद्धांत और सचाई पर बलिदान हो जाने वाला व्यक्ति।

सरदार भगतसिंह की शहादत एक जाज्वल्यमान बलिदान है। उस के साथ किसी शहादत की तुलना नहीं करनी चाहिये, पर क्रांतिकुमार और उन के साथियों ने जो परंपरा स्थापित की वह सब के लिए बलदायक सिद्ध होगी। भड़कायी हुई जनता क्या कर सकती है, यह हम ने देश-विभाजन के समय देखा और और अब क्रांतिकुमार के बलिदान में वही दृश्य पुनः सामने आया।

भारतीय पुनर्लेखन संस्थान के अध्यक्ष श्री पी. एन. ओक के अनुसार अरब पर महाराज विक्रमादित्य का आधिपत्य रहा था।

हजरत मोहम्मद के जन्म के १६५ साल पहले अरबी के कवि जिरहिया बिन्तोई ने विक्रमादित्य के गौरवमय शासन की प्रशंसा की थी।

इस्ताम्बुल (तुर्की) के एक पुस्तकालय में सुरक्षित 'सयूर ओकूल' नामक ग्रंथ के ३१५वें पृष्ठ पर अंकित है :–

वे निश्चय ही भाग्यशाली हैं जिन का जन्म महाराज विक्रम के शासन-काल में हुआ। वे प्रजापालक, कर्त्तव्यनिष्ठ तथा उदारमना शासक थे। हम अरब उस समय अज्ञान में डूबे हुए थे। उन्होंने अपने धर्म का प्रचार हमारे देश में किया और अपने देश से वे ऐसे उद्भट विद्वानों को यहाँ लाये, जिन की विद्वत्ता का तेज हमारे देश के सूर्य के समान ही प्रखर था।



अल्पसंख्यक वर्ग के शासन की सब से अच्छी मिसाल आप के ही घर में आप के छोटे सुपुत्र प्रस्तुत करते हैं।

'राई-नोन' प्रभात कर उठे

याद चोर से झगड़-झगड़ ये
सपने रात बिरात कर उठे
'राई-नोन' प्रभात कर उठे

चरण चले ये, स्वर के, युग-बाजीगर के
खोल उठीं सब द्वार उसाँसें अंतर के
आँसू पहरेदार, गीत संगी घर के

रोका बहुत, मनाया कितना
विवश स्वेद-कण बात कर उठे
'राई-नोन' प्रभात कर उठे

जीवन-संगर के अपराधी ओर-छोर ये
साहस में चाहों की नौका बोर-बोर ये
जी में उठ-उठ आती कुछ ऐसी मरोर ये

साँसों के बाजीगर दौड़े
उट्ठे, दो-दो हाथ कर उठे
'राई-नोन' प्रभात कर उठे

——माखनलाल चतुर्वेदी

(४ अप्रैल को अपनी ७८वीं वर्षगाँठ पर श्रद्धेय कविवर द्वारा
'कादम्बिनी' के पाठकों को विशेष भेंट)

पाँच अप्रैल की सुबह !
पूर्व दिशा अभी सूनी थी। तलईमन्नार (लंका) के तट पर खड़े सुप्रसिद्ध भारतीय तैराक मिहिर सेन ने दूर-दूर तक आँखें फैला कर अपने लक्ष्य पाक जलडमरूमध्य को देखा । गर्जन-तर्जन करता हुआ सागर हर लहर के साथ बार-बार चुनौती दे रहा था—आओ, मुझे पार करो, किंतु सावधान, मेरी गोद में अनगिनत शार्क मछलियाँ और जहरीले साँप भी हैं !

५ बजकर ४० मिनट !

अब तक संसार के तैराकों को इंगलिश चैनल ही चुनौती बनी रही है जब कि भारत और श्रीलंका के बीच स्थित पाक जलडमरूमध्य उस से कहीं खतरनाक और बड़ी चुनौती है । इस चुनौती का जोरदार जवाब दिया है भारतीय तैराक मिहिर सेन ने

मिहिर सेन ने चुनौती स्वीकार कर ली। उन्होंने अपना पूर्व निर्णय क्रियान्वित कर दिया। एक छलाँग. . .एक चुनौती. . . चुनौती का जवाब !

सागर ने अपनी पूरी शक्ति से प्रतिरोध प्रारंभ कर दिया और मानव ने अपनी संपूर्ण आस्था से जवाब दिया। तलईमन्नार से धनुषकोटि तक फैले हुए पाक जलडमरूमध्य का २२ मील का विस्तृत सागर, जिसे वह अपनी बाँहों में समेटने का प्रयत्न कर रहा था। ऊँची-नीची लहरें. . . समुद्र के विशालकाय हाथ मिहिर सेन को धकेलने आगे बढ़ आये थे और जवाब में थे तैराक के आत्मविश्वासी छोटे-छोटे हाथ, जिन्होंने एक बार सन १९५८ में इंगलिश चैनल की चुनौती भी स्वीकार की थी और प्रमाणित कर दिया था कि मनुष्य अजेय है।

यह एक संयोग ही था कि मिहिर सेन की छलाँग के दिन सहस्रों वर्ष पुराना भारतीय इतिहास अपने आप को दोहरा रहा था।

कभी-कभी भूत और वर्तमान विचित्र साम्य में बँधे होते हैं। अनचाहे ही यह साम्य चमत्कार के रूप में स्वीकार करना पड़ता है। मिहिर सेन का पाक जलडमरूमध्य को पार करना ठीक उसी दिन हुआ जिस दिन पवनपुत्र ने सहस्रों वर्ष पूर्व यह फासला तै किया था। अंतर है तो केवल इतना कि उन्होंने भारतीय तट से लंका को अपना लक्ष्य बनाया था और मिहिर सेन ने लंका के तट से भारतीय तट को।

यों मिहिर ने सागर के इस अंश को पार करने का जो निर्णय किया था उस के अनुसार क्रियान्वयन-तिथि न तो ५ अप्रैल ही थी, न मंगलवार और न पूर्णिमा; किंतु शायद विधि ने अपने आप ही परिवर्तन कराया और मिहिर सेन यही दिन और तिथि निश्चित करने को बाध्य हो गये। वे पूर्व घोषित तिथि को पाक जलडमरूमध्य में छलाँग नहीं लगा सके थे, क्योंकि एकाएक ही वे अस्वस्थ हो गये थे।

सागर :

स्वस्थ होते ही उन्होंने जो दिन निश्चित किया वह अनजाने ही एक पौराणिक घटना से इतना अधिक मिल गया।

यहाँ बरबस ही हम एक और बात नहीं बिसरा पाते कि उपर्युक्त तिथि को हनुमान का जन्म-दिन भी था। इस तरह यह सिलसिला है भूत और वर्तमान के साम्य का, जो न केवल विधि के विचित्र कौतुक के प्रति आकर्षित करता है, अपितु विश्वास भी जगाता है।

इंगलिश चैनल पार करने के बाद ही मिहिर सेन ने पाक जलडमरूमध्य पार करने का विचार किया था। तलईमन्नार से समुद्र में उतरने से पूर्व एक आकाशवाणी-संदेश में उन्होंने कहा था कि वे पाक जलडमरूमध्य इसलिए पार करना चाहते हैं ताकि देश के नवयुवकों में साहस जाग्रत हो। उन का कहना है कि इंगलिश चैनल पार करना ही संसार के तैराकों ने अंतरराष्ट्रीय ख्याति तथा तैराकी का आकर्षण बना रखा है, जब कि पाक जलडमरूमध्य पार करना अधिक कठिन



एक चुनौती और

और खतरनाक है।

मिहिर भारतीय पौराणिक कथाओं से बहुत प्रभावित रहे हैं—विशेषकर रामायण के उस प्रसंग से जिस में हनुमान ने समुद्र को लांघा था। भारत और लंका के बीच की यह समुद्री दूरी केवल पौराणिक कथाओं की चीज ही समझी जाती थी, किंतु मिहिर ने अपने साहस से जतला दिया है कि हम किसी अविश्वसनीय बुनियाद पर नहीं खड़े हैं।

कटक (उड़ीसा) के एक बंगाली परिवार में सन १९२० में मिहिर का जन्म हुआ। पिता कटक के सफल और योग्य डाक्टरों में माने जाते हैं। स्वदेश

में वकालत की परीक्षा पास करने के बाद मिहिर उच्च शिक्षा प्राप्त करने विदेश चले गये और वहाँ से लौट कर कलकत्ता में वकालत कर रहे हैं।

दृढ़-निश्चयी और साहसी मिहिर सेन की इस अद्‌भुत तैराकी की कहानी इतनी रोमांचक है कि साधारण आदमी को लगता है जैसे वह किसी तिलिस्म को जीता-जागता देख रहा है या फिर पुराणों के किसी विलक्षण चरित्र को पढ़ रहा है, किंतु तलईमन्नार तथा धनुषकोटि के तट पर खड़े उन दर्शकों, मिहिर के आसपास समुद्र में तैरने वाले मछुआरों तथा अनेक नौ-सैनिक कर्मचारियों के भाग्य पर हमें ईर्ष्या ही होती है जिन्होंने इस गौरवपूर्ण कहानी को अपनी आँखों से समुद्र के सीने पर घटित होते देखा है।

समुद्र में कूदने के कुछ क्षण बाद ही वे तलईमन्नार के उत्तर-पश्चिमी समुद्रतट पर खड़े दर्शकों की आँखों से ओझल हो गये थे, यद्यपि उन की स्मृति में अब भी वह दृश्य जीवित होगा जब पुराने प्रकाश-स्तंभ के निकट से गहरे लाल रंग की मद्रासी तैराकी पोशाक पहने हुए मिहिर ने, तालियों की गड़गड़ाहट के बीच, मुसकराते हुए छलाँग लगायी थी।

मिहिर सेन अब अथाह सागर की लहरों पर चढ़ते-गिरते आगे बढ़ रहे थे। वे कभी-कभी अपने इर्द-गिर्द उन मछुआरों को देख लेते जो जल-जंतुओं से रक्षा के लिए कुछ दूर तक उन के साथ तैर रहे थे।

भारतीय नौसेना के 'सुकन्या', 'शारदा' और 'कोंकण' नामक तीन जहाज भी मिहिर सेन की देखभाल के लिए सागर की लहरें चीरते हुए बढ़ रहे थे। करीब आधे दर्जन मोटर-नौकाएँ, जिन में नौ-सैनिक कर्मचारी और डाक्टर थे, समय पर आवश्यक सहायता देने के लिए ऐतिहासिक अभियान में शरीक थीं। इन नौकाओं पर हथियारों से लैस नौ-सैनिक गोताखोर तैनात थे ताकि शार्क मछली अथवा अन्य किसी खतरे से बहादुर तैराक को बचाया जा सके। सेन की आंग्ल पत्नी बेला सेन लगातार अपने पति के निकट रहीं। वे सेन के इस जल-अभियान के प्रारंभ होने से पूर्व ही विजय के प्रति पूर्ण आश्वस्त थीं। उन्होंने रामेश्वरम के रामनाथस्वामी मंदिर में पति की मंगल-कामना हेतु प्रार्थना की थी।

तैराक का मार्ग सूचित करने की दृष्टि से हर तीसरे मील पर नौकाओं द्वारा झंडे दिखा कर सही दिशा-निर्देश किया जाता था।

नौ-सैनिक बेड़े के कमांडर शर्मा ने मिहिर सेन की कमर में छुरा बाँध दिया था, ताकि आवश्यकता होने पर वे स्वयं भी जल-जन्तुओं से अपनी रक्षा कर सकें।

'कोंकण' जहाज के गोताखोर लेफ्टिनेंट मार्टिस ने इस अभियान में बहुत महत्वपूर्ण कार्य किया। वे संपूर्ण तैराकी के दौरान २० घंटे से अधिक समय तक मिहिर सेन के साथ जल में रहे।

अभियान-प्रारंभ से पूर्व की सब से रोचक बात थी मिहिर सेन का दाढ़ी मुँड़वाना, जिसे उन्होंने १९५८ में इंगलिश चैनल पार करने के बाद से रखवा लिया था।

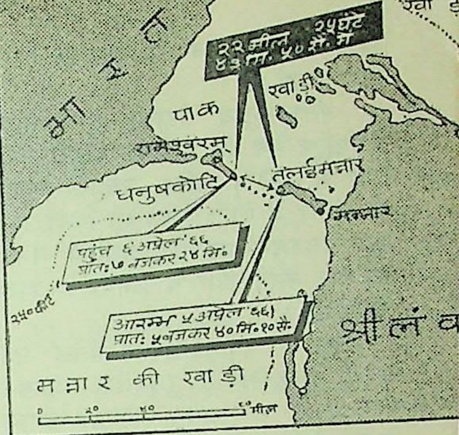
सूर्य की किरणें कपास-जैसी कोमलता छोड़ती हुई क्रमशः कठोर और चुभने वाली होती जा रही थीं। वे लहरों पर चढ़ कर सेन की आँखों को बार-बार चौंधिया जातीं।

सुबह १० बजे तक मिहिर सेन ने समुद्र के ६ मील जीत लिये थे। दोपहर को वे विश्राम के लिए पीठ के बल तैरते रहे। बीच-बीच में नौ-सैनिक तैराक उन्हें शहद और कागज के प्यालों में ग्लूकोज पहुँचाते रहे। योजना थी कि बाँस की नलियों से खिलाने-पिलाने का काम हो, किंतु यह संभव न हो सका। नारियल और बर्फ का पानी उन्हें अवश्य दिया जाता रहा।

रात्रि को उस समय संघर्ष प्रतिक्षण बढ़ने लगा जब चाँद यौवन पर आ गया और लहरों में ज्वार पैदा हो गया।

रात्रि के ९ बजे! मिहिर ज्वार से जूझ रहे थे और मंजिल केवल साढ़े चार मील दूर रह गयी थी। लेकिन, लहरें उन्हें यहाँ-वहाँ उछालने लगीं और अब तो मंजिल ५ मील दूर हो गयी। थकान में डूबे सेन अगले एक घंटे में केवल २०० गज ही तैर सके। सहायक मोटर-नौकाएँ उठ चुकी थीं और दूर-दूर तक वे स्वयं को निस्सहाय पा रहे थे। एक गहन निराशा उन पर छाने लगी। किंतु उन्हीं के कथनानुसार ऐसे नाजुक समय में यदि उन के रक्षक गोताखोर लेफ्टिनेंट मार्टिस ने उन्हें हिम्मत न बँधायी होती तो शायद वे मंजिल के अंतिम संघर्ष को न जीत सकते।

वे दोनों ही भटक गये थे। मार्गदर्शक जहाज को भी तूफानी लहरें कहीं दूर ले गयी थीं। वे किधर जा रहे हैं, इस की जानकारी दोनों में से किसी को नहीं थी। मार्टिस ने इस दौरान न सिर्फ मिहिर सेन को ढाढ़स बँधाया, अपितु ५ फुट लंबे एक जहरीले साँप को मार कर उन की रक्षा भी की। यही नहीं, वह तमाम



रात सेन के इर्द-गिर्द आने वाली शार्क मछलियों और साँपों पर गोलियाँ छोड़ता हुआ उन्हें सेन से दूर किये रहा।

रात के २ बजे मिहिर धनुषकोटि से तीन मील दूर रामेश्वरम की ओर भटक रहे थे। ज्वार प्रतिक्षण कई फुट ऊँची लहरों के द्वारा संघर्ष को और भी जटिल किये जा रहा था। कप्तान शर्मा ने लाउडस्पीकर से खबर दी—"सिर्फ तीन मील!"

पूरे चौबीस घंटे की तैराकी के बाद ५ बज कर ४० मिनट पर वे धनुषकोटि से पौने दो मील दूर थे। मंजिल के अंतिम पौने दो मील मिहिर ने १०० मिनट में पार किये।

फिर, प्रभात हुआ! विजय का प्रभात! सूर्य की किरणें मिहिर सेन के गले में माला बन कर जा गिरीं।

७ बज कर १६ मिनट पर मिहिर सेन धनुषकोटि तट पर थे। "मैं ने जीत लिया! बाजी मार ली!" तट पर कदम रखते ही वे चिल्लाये और मातृभूमि की मिट्टी माथे पर लगायी। इस तट पर भी हजारों दर्शकों ने करतल-

ध्वनि के बीच उन का जयकार किया और बधाई दी।

अंतरराष्ट्रीय तैराकी के इतिहास में मिहिर सेन अब न केवल दोहरी सफलता के धनी हैं, बल्कि उन्होंने स्वदेश को संसार में गौरवान्वित भी किया है। पाक जलडमरूमध्य और इंगलिश चैनल को पार करने वाले वे दुनिया के पहले तैराक हैं।

इस से पूर्व इंगलिश चैनल को सब से दुरूह मार्ग से (इंगलैंड से फ्रांस) पार करने वाले प्रथम एशियाई तैराक के नाते वे विश्व में पर्याप्त प्रतिष्ठा १९५८ में ही अर्जित कर चुके थे। तब उन की अवस्था २८ वर्ष थी। इंगलिश चैनल और पाक जलडमरूमध्य की लंबाई लगभग समान होते हुए भी पाक जलडमरूमध्य में तैरना अधिक खतरनाक है। यहाँ सागर सदैव अशांत रहता है और शार्क तथा जहरीले साँप बहुतायत से पाये जाते हैं, जब कि इंगलिश चैनल में ऐसी कोई बात नहीं है।

मिहिर सेन ने इंगलिश चैनल १४ घंटे ४५ मिनट में पार की थी, जब कि पाक जलडमरूमध्य पार करने में २५ घंटे २६ मिनट लगे। इस का कारण यह है कि इस सागर-अंश की प्रतिरोधक शक्तियाँ इंगलिश चैनल से कई गुनी अधिक हैं, जो तैराक को न सिर्फ आगे बढ़ने से रोकती हैं बल्कि लगातार पीछे भी धकेलती हैं। विशेषज्ञों का अनुमान है कि इस तैराकी में मिहिर सेन ने ३० मील से भी अधिक की दूरी पार की।

इंगलिश चैनल पार करने का विचार उन के दिमाग में सन १९५१ में पैदा हुआ था, जब वे इंगलैंड पहुँचे ही थे। किंतु आर्थिक असुविधाओं ने उन के मार्ग में रोड़े डाले। उन्होंने तत्कालीन प्रधान मंत्री स्व. नेहरू, हुमायुन कबिर, पी. सी. सेन, बीजू पटनायक आदि को इस संबंध में लिखा तथा कुछ सुविधाएँ प्राप्त कर अपनी लक्ष्य-पूर्ति में जुट गये।

इंगलिश चैनल की चुनौती सब से पहले उन्होंने १९५५ में ही स्वीकार कर ली थी, किंतु तब दुर्भाग्यवश असफलता मिली। १९५६ और ५७ में भी उन्होंने चैनल पार करने के प्रयत्न किये, किंतु अनुपयुक्त मौसम आदि की कठिनाइयों के कारण निराशा ही हुई। पर, मिहिर सेन ने हिम्मत नहीं हारी। वे आश्चर्यजनक साहस के प्रतीक हैं। वे चुनौतियाँ स्वीकारते भी हैं, देते भी हैं और आत्म-विश्वास ने आज उन्हें संसार का महानतम तैराक बना दिया है।

ज्ञान बढ़ता है तो उस के साथ अज्ञान भी बढ़ता जाता है पहले ९ ही ग्रह थे, अब ५० लाख ग्रह हो गये। जो सितारे दीख हैं, अनंत सूर्यों के समान प्रचंड हैं। उन की तुलना में सूर्य बिंदु है। पहले जब ९ ग्रह इतना नचाते थे तो अब ५० लाख ग्रह मिल कितना नचायेंगे! खोज होने पर करोड़ों ग्रह और सितारे दीखेंगे। इसलिए ज्ञान के क्षेत्र-विस्तार के साथ अज्ञान का क्षेत्र भी बढ़ता जा रहा है।

—विनोबा

क्या हो गया!

देखते ही देखते क्या हो गया

लौट आया बीच से ही राह के
बुझ गये संकेत मन की छाँह के
अधजले विश्वास साक्षी दे रहे
किस अनागत के अकल्पित दाह के
अधफला आशीष स्वाहा हो गया

बिक गया सब पुण्य छल की हार पर
शून्य-चित्रित व्यर्थता के द्वार पर
साँस उलटी चल रही अभिव्यक्ति की
सिर पटकती जो शिला की धार पर
भाव मर्माहत सदा को सो गया

प्रतिश्रुता आस्था खुले डसती रही
प्यार पाने से सदा बचती रही
झेल पाता कौन इतनी अनकही
जो अनींदी याद को कसती रही
उम्र भर की नींद का सपना गया

—'अंचल'

यदि इसे शैलेश मटियानी लिखते

सच तो यह है कि इस कहानी को सिर्फ एक आदमी लिख सकता था और उसी ने इसे लिखा भी। उस के अलावा कोई भी इसे लिखता तो कहानी 'यह कहानी' नहीं रह जाती। बहरहाल, अगर इसे शैलेश लिखते... शैलेश ही इसलिए, क्योंकि कहानी के इस तरह के प्रस्तुतीकरण से असहमत होने के संबंध में जितनी अधिक संभावना शैलेश से है उतनी किसी और से नहीं।

कथान्तर -- कथान्तर -- कथान्तर -- कथान्तर--

ज़िंदगी में

दरअसल चुनचुनाहट तो मेरी पीठ पर काफी पहले तभी से शुरू हो गयी थी जब पुष्कर (मेरा बड़ा बेटा) कमरे में आया था। बिलकुल पास आ, मेरे चेहरे के पास झुक कर कुछ ऊँची आवाज में वह बोला था, 'डैडी! राघवन साहब आये हैं... प्रिंसिपल राघवन... और लोग भी हैं कुछ। आप के कुशल समाचार लेने आये हैं...'

मैं कुछ गलत कह गया। पुष्कर ने मुझे बताने से पहले यह बात, कमरे में आते ही आते, मेरे पास बैठी सरोज (मेरी बड़ी बेटी) को बता दी थी और एक ही लंबे वाक्य में बता दी थी। तब उस की आवाज इतनी ऊँची नहीं थी, न ही वह सरोज के चेहरे के पास झुका था यह सूचना देने के लिए। इतने करीब से, इतनी ऊँची आवाज में, इतने टुकड़े-टुकड़े वाक्यों में... मगर तब भी मुझे उस की बात समझने में देर लगी थी।

संभव है, शैलेश को कहानी का मेरे द्वारा किया गया निर्वाह पसंद न आये, इस से भी अधिक संभव है, उन्हें कहानी का इस तरह का कथा-कलेवर न जँचे और बहुत संभव है, वे इस मेरी वाली संवेदना को कहानी-रचना के लिए सर्वथा अनुपयुक्त ठहरा दें। गरज यह कि यदि शैलेश इस कहानी को लिखते तो कहानी निश्चित ही 'यह कहानी' नहीं रह जाती। इस कहानी का 'मैं' तब संभवतः अपने अतीत के परिणामस्वरूप भिन्न प्रकार से प्रभावित होता। कदाचित उस का वह महान अतीत उस के वर्तमान के लिए एक सौभाग्य बन जाता ः ः

मगर मेरी इस रचना के 'मैं' का यदि कोई सब से बड़ा दुर्भाग्य है, दुर्बलता है, दुख है, तो वह उस का महान अतीत ही है। यह सिर्फ इसलिए कि मनुष्य का वर्तमान उस के लिए उस के अतीत के सापेक्ष्य में अर्थ रखता है।

कथान्तर — कथान्तर — कथान्तर — कथान्तर—

मैं ने अपनी झँपी पलकें उठायी थीं, 'राघवन साहब... ?' मैं रुका था, जान-बूझकर नहीं, स्वतः ही और फिर बोल पड़ा था, 'ले आओ... ले आओ... राघवन साहब आये हैं... तभी तो मैं ने कहा... यह गाड़ी की-सी आवाज... राघवन साहब बेचारे बहुत भले...'

मेरी पलकें ढुलक गयी थीं। पुष्कर चला गया था, मगर मेरी बुदबुदाहट जारी थी। शायद वह देर तक जारी ही रहती, अगर मुझे सुनायी न पड़ता, 'चीफ साहब, नमस्कार।' आवाज ऊँची और खुली हुई थी। कुछ देर बाद ही मैं यह समझ सका था कि मुझे नमस्कार किया गया है। फिर कुछ देर बाद कि मुझे नमस्कार का उत्तर देना है, मुझे अपनी भारी और लटकी हुई पलकें उठानी पड़ी थीं। तभी मुझे अपनी पीठ पर कुछ महसूस हुआ था। मगर मैं समझ नहीं पाया था कि वह क्या है। कुछ सुलग रहा है? कोई चींटी रेंग रही है? सर्द हवा की छुअन है? खून चुहचुहा आया है? कुछ चिपचिपापन है?... कुछ है तो जरूर।

मिजाजपुरसी को आये लोगों ने मेरी कुशल-क्षेम पूछी थी। जवाब मैं ने नहीं, सरोज ने दिया था। मैं तो बस चुपचाप बैठा था, पलकें लटकी थीं, गरदन पर टिका हुआ सिर डोल-डोल उठता था (जैसे अब गिरा तब गिरा), मेरे कंधे हिल-हिल उठते थे, जबड़े काँप-काँप जाते थे, होंठों पर थरथरी होती थी। जब भी कोई मेरे बारे में मुझ से कुछ पूछता है, मैं कुछ भी नहीं बताता, घर के लोग ही बताते हैं कि मैं कैसा हूँ, मुझे कैसा लगता है... वजह, जहाँ तक मैं सोचता हूँ, यह है कि यह सब बताते वक्त पलकें उठाये रहना पड़ता है, सवाल को फौरन सुन और समझ लेना पड़ता है, उस का उसी तरह फौरन जवाब दे देना

पड़ता है और सवाल की माँग के मुताबिक पूरा बोल कर तत्काल चुप भी हो जाना पड़ता है। मगर मैं...

...अब एक इसी हरगंगा बाँध को ले लीजिये...

हाँ, हरगंगा बाँध को ही ले लीजिये। तबाह हो गयी थी गवर्नमेंट...'

मिजाजपुरसी को आये वे लोग अब आपस में बातें कर रहे थे मेरे विषय में, कि किस प्रकार हरगंगा नदी पर हर बार लाखों की लागत से बाँध बन कर तैयार होता, मगर बाढ़ आती और बाँध ढह जाता। बड़े-बड़े इंजीनियर थक कर हार गये, विदेशों से बुलाये गये इंजीनियर असफल हो गये और अंत में किस प्रकार मैं ने बाँध का नये ढँग का नक्शा तैयार किया, अपनी उस वृद्धावस्था में पुनः अपनी सेवाएँ राष्ट्र को अर्पित कीं... और आज दस साल हो गये हैं, देश को उस बाँध से पानी मिल रहा है, बिजली मिल रही है, करोड़ों का फायदा है.. और आज तक उस की एक ईंट भी नहीं खिसकी है!... वे लोग बता रहे थे।

मेरा ध्यान उन लोगों की बातों की ओर थोड़े ही था। वह तो किसी की ओर भी नहीं था। मैं पलकें झपकाये बैठा था, मेरा ध्यान भी पलकें झपकाये बैठा था। उन लोगों के पास मैं तो गया नहीं था, वे लोग ही मेरे पास आये थे। ऐसे ही मेरा ध्यान उन की बातों के पास नहीं जा रहा था, उन की बातें मेरे ध्यान के पास आ रही थीं। चुप और पलक झँपाये बैठा मैं अब भी यह तय नहीं कर सका था कि अपनी पीठ पर जो 'कुछ' मुझे लग रहा है, वह क्या है—चींटी ? जलन ? ठंडक ? चिपचिपाहट ?

'...अजी साहब ! आप के जीवट के किस्से तो हमारे काका साहब सुनाते थे। जब आप उधर तराई और असम के जंगलों के बीच से हो कर रेलवे-लाइन खींच ले गये थे, तब के..."

वह हरगंगा बाँधवाली बात शायद समाप्त हो गयी थी, क्योंकि अब तराई और असम के किस्से... कि ये इलाके तब कितने भयंकर जंगलों से ढँके हुए थे। शेर, बाघ, चीते, अजगर, साँप... पग-पग पर। खूँख्वार जंगली लोग... और सरकार उन इलाकों में रेल-गाड़ी ले जाना चाहती थी। फिर निराश हो गयी थी, क्योंकि मजदूर उन भयंकर इलाकों में काम करना तो दूर, जाने के लिए भी तैयार नहीं थे। किसी भी प्रलोभन पर नहीं...

बता रहे थे वे लोग कि किस प्रकार यह कठिन काम मैं ने अपने जिम्मे लिया और मजदूरों को आश्वासन दिया, 'मेरी जान पहले जायेगी, तुम्हारी बाद में... चलो !' और फिर किस प्रकार पुलिस-गार्ड के साथ वर्षों तक मैं बंदूक ताने मजदूरों की रक्षार्थ खुद भी तैनात रहा, और...

मुझे थूकना था। थूक कर मुँह खाली कर लेने की मुझे बार-बार जरूरत महसूस होती है। मुँह जल्दी-जल्दी भर आता है.. अभी मैं ने मुँह के भीतर की गंदगी बटोरनी ही शुरू की थी, अभी मेरा सिर तकिये से उठा भी नहीं था कि मेरे मुँह की इस हरकत को पास ही बैठी सरोज ने फौरन लक्ष्य कर लिया और बड़ी तत्परता से पलंग के नीचे से चिलमची उठा कर मेरे सामने कर दी और दूसरे हाथ से मुझे कंधों से थामे रही, ताकि थूकते वक्त मैं आगे या दाहिने-बायें न गिर पड़ूँ और थूक कर वापस तकिये के सहारे

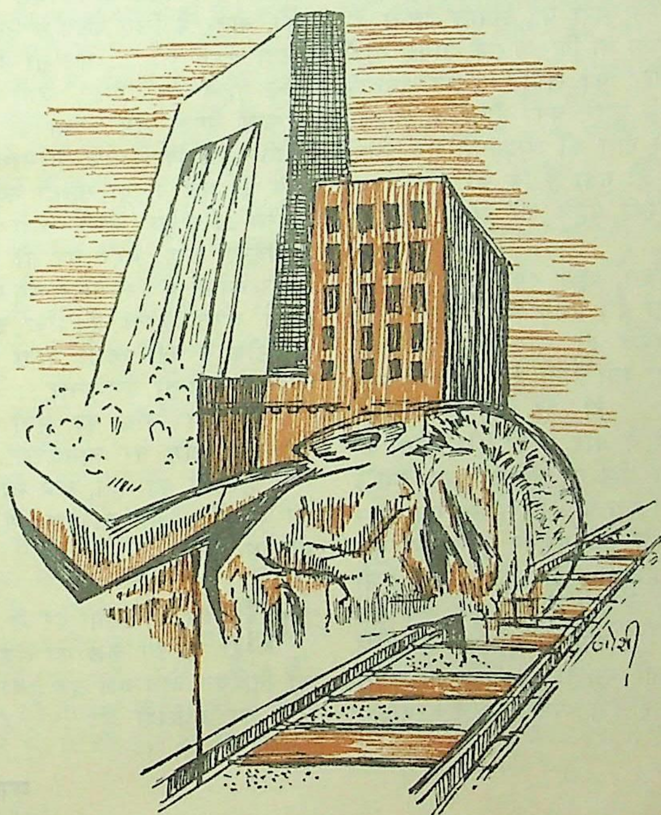
आ टिकूँ।

मैं वापस तकिये के सहारे आ गया और अपना मुँह पोंछ लेना चाह रहा था। मुँह पोंछने के लिए मैं ने अपना हाथ उठाने की चेष्टा की और मुझे लगा जैसे मैं किसी दूसरे का हाथ उठाना चाह रहा हूँ। मेरे हाथ में उठने से पहले एक जोर की थरथराहट हुई। ताकत लगी...मेरा हाथ उठ रहा था, बेहद धीमे, बहुत थरथराते हुए...और शायद उसी रफ्तार से उठता हुआ वह कभी-न-कभी मुँह तक पहुँच भी जाता, मगर तब तक सरोज चिलमची नीचे रख, उधर पायताने से तौलिया उठा कर मेरे मुँह तक पहुँचा चुकी थी। मेरा हाथ एक और जोर की थरथरी भर कर गिर गया...

'बहुत बड़ा एडवेंचर था साहब वह! ...अब जाइये आप कभी उधर, दुनिया बस गयी है!'

'अजी, वह सब चीफ साहब की बसायी दुनिया है...'

मुड़े-मुड़े मेरे पैर अकड़ गये थे और घुटनों में, जाँघों में, दर्द सुलग आया था। मैं एक ही पहलू ज्यादा देर नहीं बैठ पाता। कुरसी या सोफे पर भी मुझ से नहीं बैठा जाता...अरसे से मैं कुरसी या सोफे पर नहीं बैठा हूँ। अपनी गाड़ियों



पड़ता है और सवाल की माँग के मुताबिक पूरा बोल कर तत्काल चुप भी हो जाना पड़ता है। मगर मैं...

...अब एक इसी हरगंगा बाँध को ले लीजिये...

हाँ, हरगंगा बाँध को ही ले लीजिये। तबाह हो गयी थी गवर्नमेंट...'

मिजाजपुरसी को आये वे लोग अब आपस में बातें कर रहे थे मेरे विषय में, कि किस प्रकार हरगंगा नदी पर हर बार लाखों की लागत से बाँध बन कर तैयार होता, मगर बाढ़ आती और बाँध ढह जाता। बड़े-बड़े इंजीनियर थक कर हार गये, विदेशों से बुलाये गये इंजीनियर असफल हो गये और अंत में किस प्रकार मैं ने बाँध का नये ढँग का नक्शा तैयार किया, अपनी उस वृद्धावस्था में पुनः अपनी सेवाएँ राष्ट्र को अर्पित कीं... और आज दस साल हो गये हैं, देश को उस बाँध से पानी मिल रहा है, बिजली मिल रही है, करोड़ों का फायदा है.. और आज तक उस की एक ईंट भी नहीं खिसकी है!... वे लोग बता रहे थे।

मेरा ध्यान उन लोगों की बातों की ओर थोड़े ही था। वह तो किसी की ओर भी नहीं था। मैं पलकें झपकाये बैठा था, मेरा ध्यान भी पलकें झपकाये बैठा था। उन लोगों के पास मैं तो गया नहीं था, वे लोग ही मेरे पास आये थे। ऐसे ही मेरा ध्यान उन की बातों के पास नहीं जा रहा था, उन की बातें मेरे ध्यान के पास आ रही थीं। चुप और पलक झँपाये बैठा मैं अब भी यह तय नहीं कर सका था कि अपनी पीठ पर जो 'कुछ' मुझे लग रहा है, वह क्या है—चींटी? जलन? ठंडक? चिपचिपाहट?

'...अजी साहब! आप के जीवट के किस्से तो हमारे काका साहब सुनाते थे। जब आप उधर तराई और असम के जंगलों के बीच से हो कर रेलवे-लाइन खींच ले गये थे, तब के..."

वह हरगंगा बाँधवाली बात शायद समाप्त हो गयी थी, क्योंकि अब तराई और असम के किस्से... कि ये इलाके तब कितने भयंकर जंगलों से ढँके हुए थे। शेर, बाघ, चीते, अजगर, साँप... पग-पग पर। खूँखार जंगली लोग... और सरकार उन इलाकों में रेल-गाड़ी ले जाना चाहती थी। फिर निराश हो गयी थी, क्योंकि मजदूर उन भयंकर इलाकों में काम करना तो दूर, जाने के लिए भी तैयार नहीं थे। किसी भी प्रलोभन पर नहीं...

बता रहे थे वे लोग कि किस प्रकार यह कठिन काम मैं ने अपने जिम्मे लिया और मजदूरों को आश्वासन दिया, 'मेरी जान पहले जायेगी, तुम्हारी बाद में... चलो!' और फिर किस प्रकार पुलिस-गार्ड के साथ वर्षों तक मैं बंदूक ताने मजदूरों की रक्षार्थ खुद भी तैनात रहा, और...

मुझे थूकना था। थूक कर मुंह खाली कर लेने की मुझे बार-बार जरूरत महसूस होती है। मुँह जल्दी-जल्दी भर आता है.. अभी मैं ने मुंह के भीतर की गंदगी बटोरनी ही शुरू की थी, अभी मेरा सिर तकिये से उठा भी नहीं था कि मेरे मुंह की इस हरकत को पास ही बैठी सरोज ने फौरन लक्ष्य कर लिया और बड़ी तत्परता से पलंग के नीचे से चिलमची उठा कर मेरे सामने कर दी और दूसरे हाथ से मुझे कंधों से थामे रही, ताकि थूकते वक्त मैं आगे या दाहिने-बायें न गिर पड़ूँ और थूक कर वापस तकिये के सहारे

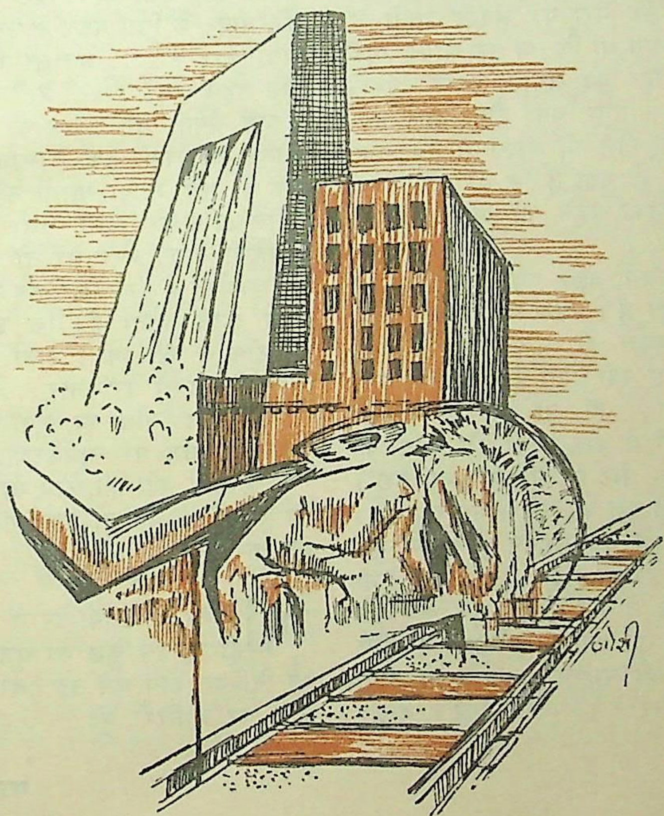
आ टिकूँ।

मैं वापस तकिये के सहारे आ गया और अपना मुँह पोंछ लेना चाह रहा था। मुँह पोंछने के लिए मैं ने अपना हाथ उठाने की चेष्टा की और मुझे लगा जैसे मैं किसी दूसरे का हाथ उठाना चाह रहा हूँ। मेरे हाथ में उठने से पहले एक जोर की थरथराहट हुई। ताकत लगी...मेरा हाथ उठ रहा था, बेहद धीमे, बहुत थरथराते हुए...और शायद उसी रफ्तार से उठता हुआ वह कभी-न-कभी मुँह तक पहुँच भी जाता, मगर तब तक सरोज चिलमची नीचे रख, उधर पायताने से तौलिया उठा कर मेरे मुँह तक पहुँचा चुकी थी। मेरा हाथ एक और जोर की थरथरी भर कर गिर गया...

'बहुत बड़ा एडवेंचर था साहब वह! ...अब जाइये आप कभी उधर, दुनिया बस गयी है!'

'अजी, वह सब चीफ साहब की बसायी दुनिया है...'

मुड़े-मुड़े मेरे पैर अकड़ गये थे और घुटनों में, जाँघों में, दर्द सुलग आया था। मैं एक ही पहलू ज्यादा देर नहीं बैठ पाता। कुरसी या सोफे पर भी मुझ से नहीं बैठा जाता... अरसे से मैं कुरसी या सोफे पर नहीं बैठा हूँ। अपनी गाड़ियों



पर भी मैं महीनों से नहीं बैठा हूँ . . .हाँ, उन के आने-जाने की आवाजें जरूर सुनता हूँ। जब बाहर कोई जोर की घर्राहट होती है तो मैं थोड़ा चौंकता जरूर हूँ, क्योंकि उस घर्राहट से मेरी तंद्रा टूट जाती है। मगर मैं किसी ओर झटक कर नहीं देखता, शांत ही पड़ा रहता हूँ। और कुछ देर बाद (तब तक कोई घर्राहट वहाँ नहीं रह जाती) पलक झपके ही मेरे होंठ बुदबुदा जाते हैं, 'वह क्या है ?' मैं यह नहीं देखता कि यहाँ जवाब देने के लिए कोई है भी या नहीं ? अगर कोई होता है तो जवाब दे देता है।

शुरू-शुरू में जवाब देने वाला सहसा मेरे सवाल को समझ नहीं पाता था, क्योंकि मेरा यह सवाल इतनी देर से निकलता था कि तब तक शायद गाड़ी की घर्राहट का खयाल जवाब देनेवाले के मन से उतर चुका होता था। मगर अब मेरी रोज की आदत से सब लोगों को पता हो गया है कि मेरे सवाल का संबंध काफी पहले की किसी बात से होता है . . .

लीजिये, बहक गया न मैं! अक्सर यही होता है। प्रसंग से यों बहक जाना और बहकते ही चले जाना . . . पता नहीं, ऐसा क्यों होता है! पहले तो नहीं होता था . . .हाँ, तो मेरे पैर मुड़े-मुड़े अकड़ गये थे और घुटनों और जाँघों की सुलगन से, पीठ पर मुझे जो (वह 'कुछ') महसूस हो रहा था, उसे मैं भूल गया था। मगर शायद उस सुलगन के कारण मुझ में कोई हरकत पैदा हुई होगी, तभी तो सरोज ने मेरे करीब झुक कर पूछ लिया कि मुझे क्या चाहिये, क्या तकलीफ है ? मैं नहीं चाहता था कि इतने लोगों के सामने सरोज से अपने पैर सीधे करवाऊँ। मगर मेरे चाहने-न चाहने से क्या! सरोज ने पूछा था और मुझे तकलीफ भी थी। सो, मेरे होठों से निकल गया।

सरोज ने मेरे पाँव सीधे कर दिये थे। अब वहाँ कोई सुलगन या अकड़ाहट नहीं रह गयी थी। इसलिए पीठ पर महसूस हो रहा वह 'कुछ' फिर से महसूस होने लगा था। हालाँकि अभी स्पष्ट नहीं जान पाया था कि वह क्या है . . मेरे पैरों को बहुत सुख मिल रहा था अब। सच, मुझ से तो अपने पाँव भी सीधे नहीं होते। कुछ भी नहीं होता। इसीलिए तो घर का कोई न कोई व्यक्ति मेरे पास हर वक्त बना रहता है, मुझे लेटाने को, बैठाने को, पहलू या करवट बदल देने को, बाहर के लिए पलंग से उतारने को, खड़ा करने को . . . अब तो नहीं, मगर कुछ पहले तक, 'बाहर' जाते वक्त मुझे बरबस अपनी मेम साहब की याद आ जाती थी, किसी हूक के साथ, क्योंकि एक तो मुझे ज्यादा सूझता नहीं—खैर, टटोल-टटोल कर काम चला ही लेता हूँ किसी तरह, मगर मेरे तो हाथ इस कदर काँपते हैं (खासकर जब उन्हें कुछ काम करना होता है) कि इजारबन्द भी ठीक से नहीं पकड़ा जाता मुझ से, खोल सकना तो दरकिनार . . .

'हरगंगा बाँध का, सुना है चीफ साहब के नाम पर नामकरण . . .'

'हरगंगा का नहीं, राम सागर बांध का कहिये . . . वह तो पेपर में भी आ गया था।'

पीठ पर के, इतनी देर से महसूस हो रहे उस 'कुछ' का खुजली होने का निश्चित बोध मुझे तब हुआ जब मैं चाय का आखिरी घूंट . . .हाँ, चाय

ही कहिये, क्योंकि मैं 'गुड्डू' नहीं हूँ, दादा-बाबा हूँ, और मैं ने पी भी वह, चार पी रहे अपने मुलाकातियों के साथ। वरना यदि वह चाय होती, तो जैसे मुलाकातियों के लिए आयी चाय के साथ बदल जाने की कोई गलती नहीं हुई, वैसे ही उस मेरी 'चाय' के साथ भी यह गलती न होती। मगर उस के साथ हुई यह बदल जाने की गलती...'जीजी! वह गिलास तो गुड्डू के लिए था, डैडी के लिए तो यह गिलास है!' गलती सरोज ने की थी और यह गलती होनी ही थी। उसे क्या पता ... जिन्हें पता भी है, घर के वे लोग तक अक्सर यह गिलास बदल देने की गलती कर जाते हैं। खास फर्क भी तो नहीं होता उन दोनों में। फर्क तो इतना-सा है कि कि गुड्डू खालिस दूध पीने से भागता है, इसलिए उस के दूध में चाय का पानी डाल दिया जाता है और मुझे डाक्टर ने स्ट्रांग चाय पीने को मना किया है, इसलिए मेरी चाय में ढेर-सा दूध डाल दिया जाता है। अन्यथा गिलास मुझे भी कुनकुना करके भेजा जाता है और गुड्डू को भी। गुड्डू को तो इसलिए, क्योंकि वह गरम घूंट से मुँह जलते ही जोर से चीख उठता है। और मेरा गिलास कुनकुना इसलिए, क्योंकि मैं गरम घूंट से मुँह जलने पर कुछ भी नहीं कहता। पोपले मुँह से फूंक मारने का व्यर्थ प्रयास करता, पलक झाँपे, चुपचाप घूंट खींचता चला जाता हूँ और मुँह जलाता चला जाता हूँ... शायद घर के लोगों को ये दोनों ही बातें नापसंद हैं—एकबारगी चीख उठना भी, चुप हो रहना भी। शायद ये दोनों ही बातें लोगों को रास नहीं आतीं...और जैसे वहाँ बहू खुद गिलास थामे रहती है, गुड्डू को सिर्फ घूंट खींचने होते हैं, वैसे ही यहाँ गिलास खुद सरोज थामे रहती है, मुझे सिर्फ घूंट खींचने होते हैं ... मुँह आप का और गिलास दूसरे के हाथ में ...

'...कुछ रोज पहले इस सवाल को ले कर असेम्बली में बड़ी बहस हुई थी साहब!' प्याली एक तरफ खिसका कर मुलाकातियों में से किसी ने कहा था।

अब मुक्ता नदी को ले कर बातें हो रही थीं उन में कि कैसे दो बार बांध बँध चुका, मगर दोनों ही बार ...!

'हर साल बाढ़ से देश के धन-जन की कितनी हानि होती है' ...रूमाल से मुँह पोंछ कर अब आगे कह रहे थे वे, 'खुद सिंचाई-मंत्री ने कहा उस रोज कि अगर चीफ इंजीनियर श्री गणपतलाल अभी थोड़े भी स्वस्थ और चलने-फिरने लायक होते तो यह संकट कब का दूर हो गया होता, कब का बांध बँध गया होता...'

'अरे साहब, चीफ साहब के अभाव को तो पूरा देश महसूस कर रहा है...'

इसी वक्त मेरी पीठ पर उस 'कुछ' लग रहे की जगह एक ठंडी चिनगारी-सी फूटी ... मगर नहीं, वह चिनगारी नहीं थी। वह तो खुजली थी, बेहद मीठी ...गहरी और वह, जो इतनी देर से ....वह तो चुनचुनाहट या गुदगुदी थी ... हाँ, निश्चित! मगर अब तो यह खुजली लग आयी ... पूरा देश मेरे अभाव को महसूस कर रहा है ...जाने कितनी मीठी खुजली है यह। काश! मैं..

मगर मैं अपनी जगह पर चुप बैठा हूँ और पलक झँपाये हुए हूँ। शरीर की सारी हरकतों को शक्ति-भर दबाये, इस खुजली की सारी मिठास को चुपचाप पी जाने की कोशिश कर रहा हूँ। मगर इतनी मिठास! ये आये हुए लोग बैठ तो लिये हैं काफी देर। चाय भी पी चुके।

गीत

हरियाई शाखें
भर आयीं आँखें

स्वर रुँध-रुँध आये
नखत टिमटिमाये
पद पखारने को
नयन डबडबाये
कैसे सुख झेलूँ
तुम आये जा के
भर आयीं आँखें

कस्तूरी काया
हिरना भरमाया
बौने हाथों में
आसमान आया
फिर अपने 'उन' को
बाँहों में पा के
भर आयीं आँखें

दुख में तो छलकी
सुख में भी छलकी
आँखें ये मेरी
गागर अध-जल की
सुख-विह्वल हूँ मैं
अब साँईं राखे
भर आयीं आँखें

——उमाकांत मालवीय——

अब और क्या बच गया . . . अब तो इन्हें उठ जाना चाहिये . . .

कैसे भी, बिना किसी परेशानी को चेहरे पर झलकने दिये, किसी हरकत को शरीर में होने दिये, मुझे इस सुलगती हुई मिठास को बर्दाश्त किये रहना है; क्योंकि सरोज पास में बैठी है और . . .

पता नहीं क्यों, मेरे बदन की हरेक हरकत का —— पलकें उठने का, गरदन घूमने का, धड़कनें कसमसाने का, होठों के फड़कने का हमेशा एक ही मतलब लिया जाता है कि मुझे कुछ चाहिये . . . मुझे कुछ तकलीफ है . . . अजीब बात !

लेकिन एक बात तो मैं अब भी ठीक से मालूम नहीं कर पाया। वह यह कि खुजली मेरी पीठ पर है किस जगह। कभी वह दाहिनी तरफ मालूम होती है, कभी बायीं तरफ ! कभी एकदम चमड़ी पर, कभी रगों के भीतर !

मुलाकातियों ने इस बीच एक और सूचना दी कि शिक्षा-बोर्ड ने स्कूलों की किताबों में मेरी संक्षिप्त जीवनी रख दी है, एक पाठ के रूप में।

मुलाकाती लोग अब उठना चाह रहे हैं।

मेरी खुजली (कहीं भी हो वह) लगातार बढ़ती जा रही है और अब उसे पी जाना मेरे लिए ...

'आये तो थे हम, दरअसल, चीफ साहब के दर्शन करने ही, लेकिन एक छोटा-सा निवेदन भी कर जाना था..'

राघवन साहब हैं बोलनेवाले। राघवन साहब, अब आप जरा जल्दी . . . .प्लीज !

'इस साल कालिज ने अपने पचीस वर्ष पूरे कर लिये हैं। रजत-जयती मनाने

का आयोजन किया जा रहा है' राघवन साहब तो बोलते चले जा रहे हैं... 'सोचा था, आयोजन का उद्घाटन चीफ साहब के द्वारा ...मगर ...'

मगर मेरी हालत वे देख ही रहे हैं। पलंग से भी नहीं उतर सकता, उठ-बैठ भी नहीं सकता। काफी समय से बाहर जाना छूट चुका है। उम्र भी तो नब्बे के लगभग ...यह जवाब मैं नहीं दे रहा, उन लोगों की विदाई में खड़ी हो गयी सरोज दे रही है—मेरी तरफ से। मैं तो चुप बैठा हूँ, पलकें झँपाये। मैं तो खुजली की बढ़ती जा रही मिठास को किसी भी तरह चुपचाप... मैं तो मुलाकातियों के 'अच्छा तो चीफ साहब, नमस्कार!' कहने के इंतजार में हूँ... वे अब जायें तो! उन्हें छोड़ने को उन के साथ कुछ बाहर तक सरोज जरूर जायेगी। सरोज को बाहर तक जाने, उन लोगों को विदा करने और वापस भीतर आने में कुछ समय तो जरूर लगेगा। और तब तक .. मैं इस बार पूरी ताकत लगा दूँगा। जिंदगी में मैं ने अपने हाथों इतने-इतने बाँध खड़े किये, पुल बनाये, सड़कें, रेलवे-लाइनें, भवन .. और आज देश मेरे अभाव को महसूस कर रहा है ...और शिक्षा-बोर्ड ने स्कूल की किताबों में मेरी जीवनी .. और राष्ट्रीय ख्याति के कालिज की रजत-जयंती समारोह के उद्घाटन के लिए मुझे ...नहीं! मैं इस बार पूरी ताकत लगा दूँगा। जिंदगी में मैं ने ऊँची महत्वाकांक्षाएँ रखीं, फिर यह महत्वाकांक्षा कैसे...? सरोज के लौटने तक तो निश्चित ही, कितना भी काँपता-थरथराता हो, मेरा हाथ खुजली की जगह तक पहुँच ही जायेगा...

मगर इन लोगों ने तो खड़े-खड़े कोई और प्रसंग छेड़ दिया है!

अब मैं ज्यादा देर तक पिये नहीं रह सकता खुजली की इस मिठास को! परेशानी मेरे चेहरे पर अब झलक ही आयेगी। शरीर में कोई हरकत अब जाग ही उठेगी। और मेरी हरेक हरकत का मतलब लिया जाता है कि... सरोज फौरन मेरे करीब झुक आयेगी, 'क्या चाहिये डैडी?' तब मैं अपने होंठों को सच्ची बात बुदबुदा देने से रोक नहीं पाऊँगा...और सुनते ही सरोज का हाथ तत्परता के साथ मेरी खुजली पर ...

काश! एक बहुत ही बौना आदमी होता मैं, जिंदगी में खुद कभी अपना पेट तक नहीं पाल सका जो, कभी अपनी लाज तक नहीं ढँक सका जो, कभी अपने पाँवों पर खड़ा न रह सका जो ... इतना बौना!

मेरी कोई भी महत्वाकांक्षा जिंदगी में अधूरी नहीं रही थी कभी...

महात्मा भगवानदीन जीवन के अंतिम दिनों तक ज्ञानपिपासु बने रहे। वे चलते-फिरते विश्वकोश थे। वृद्धावस्था में रोगग्रस्त होने पर भी वे पुस्तकें पढ़ते तथा कुछ न कुछ लिखाते रहते थे। उन की मृत्यु से कुछ दिन पहले श्री रिखभदास राँका उन से मिलने गये। उन्होंने पूछा, "क्या आप को किसी चीज की जरूरत है?" महात्माजी बोले, "हो सके तो मेरे लिए विज्ञान की अद्यतन जानकारी देने वाला साहित्य भेजना।"

मृत्यु-चुंबन

जिस दुनिया में हम रहते हैं वह अनेक दुनियाओं की दुनिया है — बहुत-सी तो हमारे लिए नितांत अनजानी और अनदेखी हैं। विचित्रताओं से भरपूर इन लघु दुनियाओं की झांकी न केवल हमारे मनोरंजन वरन नयी जानकारी में भी सहायक हो सकती है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सिद्धांत में विश्वास करनेवालों के लिए तो अन्य लोगों के सुख-दुख में एक प्रकार की स्वानुभूति ही होती है। इस स्तंभ के द्वारा हम अपने पाठकों को एक ऐसी दुनिया में ले चलेंगे जो परिचित दुनिया से भिन्न होगी, किंतु सद्भावना के संबल द्वारा हम उसे समझ सकेंगे। तो आइये ब्राजील के एक अनजाने गांव में

एक दुनिया यह भी है! अपनी दुनिया से अलग, अजनबी और अनोखी। यहाँ की सब से बड़ी विशेषता है मृत्यु। यह सुन कर शायद आप चौकेंगे, किंतु बात यह सच है। मृत्यु कहाँ नहीं होती? अपनी दुनिया में भी तो होती है, लेकिन उस का रूप दूसरा है। हमारी दुनिया में मृत्यु होती है व्यक्तिगत—ठीक उसी तरह जिस तरह हर व्यक्ति का जीवन अपने आप में विशिष्ट होता है, किंतु जिस दुनिया में हम आप को ले आये हैं, वहाँ यह बात नहीं। हमारे यहाँ आदमी की मृत्यु के अलग-अलग कारण होते हैं। कोई उम्र पूरी हो जाने पर स्वाभाविक रूप से मरता है तो कोई बीमारी से; कोई दुर्घटना का शिकार हो कर मरता है तो कोई हृदय-गति रुक जाने के कारण। किंतु इस दुनिया में मृत्यु कोई व्यक्तिगत चीज नहीं है। हर आदमी अकाल-मृत्यु का शिकार होता है और एक ही तरह से मरता है। हम लोग नहीं जानते कि हमारी मृत्यु कैसे होगी, मगर ये लोग जानते हैं। मृत्यु हर क्षण इन के आसपास मँडराती रहती है, अचानक आती है और अपने पंजों में किसी को भी दबोच कर ले उड़ती है। इस स्थिति में जीवन कितना निराशापूर्ण और अविश्वसनीय हो

एक दुनिया यह भी

उदास और नीरस दिन बीतता है, फिर रात घिर आती है। अँधेरा छा जाता है और लोग सो जाते हैं। घरों की दीवारों और छतों की दरारों में छिपी मृत्यु बाहर रेंगने लगती है। बेआवाज कदमों से वह निद्रामग्न लोगों के ऊपर चढ़ जाती है। उन के किसी कोमल अंग पर, ओंठ पर या आँख के नीचे एक बार चूमती है और चली जाती है। मृत्यु का यह चुंबन इतना नशीला होता है कि आदमी जीवन के संघर्ष से विमुख हो कुछ ही दिनों में मृत्यु की गोद में सो जाता है।

आदमी का खून चूसने वाला एक कीड़ा होता है—बारबेयरो । दिन में यह कीड़ा दीवारों, छतों की दरारों और सूराखों में छिपा रहता है । चिराग के उजाले में भी वह बाहर नहीं आता। बाहर तब आता है जब अँधेरा हो जाता है और लोग सो जाते हैं। सोये हुए आदमी के चेहरे पर चढ़ कर यह कीड़ा किसी नरम स्थल पर इतनी सहजता से काटता है कि आदमी को पता भी नहीं चलता। कीड़ा खून पीता है और जाते-जाते काटने की जगह ट्रायपैनोसोमा क्रूजी नामक एक कीटाणु छोड़ जाता है। आदमी उठता होगा, इस की कल्पना नहीं की जा सकती। आइटाकैम्ब्रिया के निवासियों के बारे में पढ़ कर शायद आप कुछ अनुमान लगा सकें ।

आइटाकैम्ब्रिया ! प्राकृतिक शोभा के बीच बसा हुआ ब्राजील का एक अभागा गाँव । दोनों ओर हरियाली से ढकी पहाड़ियों के बीच एक मनोरम घाटी में प्राकृतिक वैभव से परिपूर्ण स्थान । किंतु गाँव में निर्धनता इतनी कि चारों ओर फटेहाल, अधभूखे, कमजोर और बीमार चेहरे दिखायी देते हैं । जीवन की सहज प्रसन्नता और उत्साह का कहीं नाम नाम नहीं । सड़क ऊबड़खाबड़ और टूटी-फूटी । गलियाँ उदास । अजीब-सी खामोशी ! इस गाँव में कोई मेयर नहीं, कोई पादरी नहीं, पुलिस नहीं, रेडियो नहीं, टेलीफोन नहीं । और तो और अस्पताल नहीं, कोई डाक्टर नहीं । ब्राजील के इस गाँव में केवल निर्धन किसान रहते हैं । घास-फूस और मिट्टी से बने कच्चे घरों के इस गाँव के बाहर आठ कब्रिस्तान हैं । देख कर आश्चर्य होता है कि इस छोटे-से गाँव में आठ कब्रिस्तानों की क्या जरूरत है !

उस जगह हलकी-सी चुनचुनी महसूस करता है और अनजाने ही हाथ से रगड़ लेता है। बस, बारबेयरो द्वारा छोड़ा गया कीटाणु मनुष्य के रक्त में प्रविष्ट हो जाता है और अपना काम शुरू कर देता है।

मनुष्य के रक्त में पहुँच कर यह कीटाणु स्वयं ही अपने-जैसे असंख्य कीटाणु उत्पन्न कर लेता है। कुछ ही दिनों में रोग के लक्षण दिखायी देने लगते हैं। आँखों पर सूजन चढ़ आती है, जिस से कभी-कभी तो आँखें बिलकुल बंद हो जाती हैं। बुखार चढ़ता है और चक्कर आने लगते हैं। यदि बारबेयरो का शिकार कोई बच्चा हुआ तो सूजन, बुखार और चक्कर आने के अलावा एक लक्षण और प्रकट होता है। बच्चा रह-रह कर चौंकने लगता है। फिर उस की आँतों में सूजन आ जाती है। तीन-चार सप्ताह में ही यह कीटाणु हृदय तक पहुँच जाता है और वह एक भयंकर हृदय-रोग, मायोकार्डिटीज, से ग्रस्त हो जाता है।

कुछ लोग तो इसी अवस्था में मर जाते हैं, किंतु कुछ व्यक्तियों के शरीर से धीरे-धीरे ये लक्षण गायब हो जाते हैं। आदमी पहले की तरह हो जाता है, लेकिन सिर्फ ऊपरी तौर पर। भीतर तो एक गुप्त युद्ध चलता रहता है। बारबेयरो द्वारा छोड़े गये कीटाणु का वंश एक ओर तथा मनुष्य के रक्त की रोग-प्रतिरोधक शक्ति दूसरी ओर। कीटाणु का वंश बढ़ता जाता है। लड़ाई चलती रहती है। प्रतिरोधक शक्ति कम हो जाती है और १०–१५ वर्ष बाद बिलकुल समाप्त हो जाती है। तब अचानक मृत्यु आ कर मनुष्य का जीवन छीन लेती है--चुपचाप, तनिक भी पीड़ा दिये बिना !

आइटाकैम्ब्रिया के लोग कहते हुए पाये जाते हैं--अमुक आदमी फल तोड़ते हुए मर गया; अमुक घुटनों के बल बैठा हुआ प्रार्थना कर रहा था कि चल बसा; अमुक बच्ची अपने माँ-बाप से बात करते-करते लुढ़क गयी; अमुक स्त्री अपने पति की कब्र पर फूल चढ़ा रही थी कि . . .

कोई दर्द नहीं, कोई छटपटाहट नहीं, कोई चीत्कार नहीं। जीता-जागता आदमी अचानक चल बसता है। जो शेष हैं वे जानते हैं कि उन के भाग्य में भी यही बदा है। वे चुपचाप अपने पड़ोसियों की शव-यात्रा में शामिल हो जाते हैं और कब्रिस्तान में एक स्मारक-शिला और बढ़ जाती है। चिकित्सा-विज्ञान मौन रहता है और इस आकस्मिक मृत्यु से भयभीत चिकित्सक आइटाकैम्ब्रिया की ओर कभी नहीं आते !

आइटाकैम्ब्रिया गाँव शेष दुनिया से कटा हुआ है। बाहरी दुनिया से यहाँ के निवासियों का संबंध इतना ही है कि हर २० दिन बाद यहाँ तक आने वाली पथरीली सड़क पर मोंटेस क्लैरोस नामक नगर से एक ट्रक आता है जिस में गाँववालों की जरूरत का सामान लदा होता है। इस ट्रक को ले कर आनेवाले भी जल्दी-से जल्दी सामान उतार कर वापस शहर की ओर भाग जाते हैं !

बारबेयरो कीड़े से उत्पन्न इस घातक रोग से आइटाकैम्ब्रिया-निवासी ही नहीं, दक्षिण अमरीका के ७० लाख और लोग भी हैं जिन के भाग्य में यह अकाल-मृत्यु लिखी है। यह रोग उत्तरी अमरीका में भी कहीं-कहीं पाया जाता है, लेकिन वहाँ सफाई और चिकित्सा की सुविधाएँ प्राप्त होने के कारण आइटाकैम्ब्रिया-जैसी दयनीय दशा उत्पन्न नहीं हो पाती। वैज्ञानिकों का मत है कि बारबेयरो का काटा आदमी

किसी प्रकार बच नहीं सकता। बीमारी से बचने का एकमात्र उपाय यह है कि बारबेयरो को ही समाप्त किया जाये!

इस भयंकर कीड़े का नाश करने के लिए अनेक योजनाएँ बनायी गयी हैं, किंतु अभी तक इस पर विजय नहीं पायी जा सकी है। ब्राजील सरकार ने इस पर काफी धन खर्च किया है। किंतु आइटाकैम्ब्रिया के निवासी! मृत्यु हर समय उन के सामने नाचती रहती है और उन्हें लगता है कि उन के उद्धार के लिए कभी कोई नहीं आयेगा।

यहाँ के किसी आदमी से पूछिये कि भाई, जब यहाँ इतना खतरा है तो किसी सुरक्षित स्थान में क्यों नहीं चले जाते? जानते हैं वह क्या उत्तर देगा? वह कहेगा—बाहर जाने में खर्च बहुत होता है।

कल्पना कीजिये, मृत्यु और निर्धनता की यह भीषण छाया जिन के सिर पर हर समय मँडराती रहती हो, उन लोगों का जीवन के प्रति दृष्टिकोण क्या होगा? घोर निराशा! जिन्हें मालूम है कि अगले ही क्षण उन में से कोई मृत्यु के मुँह में चला जाने वाला है, उन में जीवन के प्रति आस्था और उत्साह कहाँ से आयेगा?

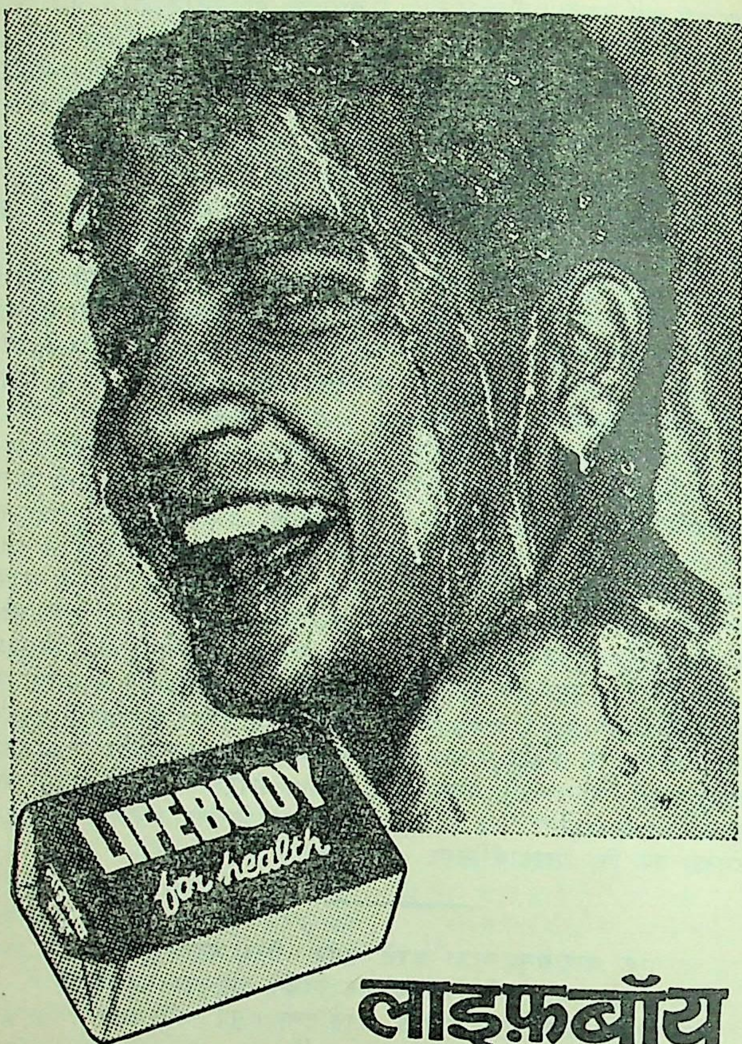
विडंबना यह कि आइटाकैम्ब्रिया-निवासियों का उद्धार करने वाले लोग चुनाव से ठीक पहले दर्शन देने आते हैं। लम्बी-चौड़ी बातें करते हैं, अनेक आश्वासन देते हैं और शाम का अँधेरा घिरने से पहले ही लौट जाते हैं—लौट जाते हैं, क्योंकि मृत्यु से निरंतर जूझते ग्रामीणों को स्नेह देने का समय उन के पास नहीं होता। समय या साहस?

निराश, निर्धन और अभागे, यहाँ के लोग जिंदगी से इतना समझौता तो कर लेते हैं कि जब भी मृत्यु बुलाने आये, जाने को तैयार रहें लेकिन आखिर ये इंसान हैं! भौतिक जगत से निराश हो कर भी आध्यात्मिकता का दामन कैसे छोड़ दें? डाक्टर और दवा का अभाव इन्हें इतना नहीं खलता जितना एक पुजारी या पादरी का अभाव। इन्हें वे दिन याद आते हैं जब इन के गांव में भी एक पादरी था, किंतु वह भी मृत्यु-भय से गाँव छोड़ गया। और जब इन लोगों को अपने संबंधियों और पड़ोसियों की शव-यात्रा में जाना पड़ता है तो इन के अंदर से बरबस ही ये शब्द हूक बन कर ओंठों पर आ जाते हैं, "बिना पादरी के किसी आदमी को दफनाने में कितना अकेलापन महसूस होता है!"

"एक बार समुद्र-यात्रा करते समय मेरा जहाज तूफान में नष्ट हो गया। मैं तैर कर एक निर्जन टापू पर पहुँचा और किसी जहाज की प्रतीक्षा करने लगा। पूरे साल बाद एक जहाज आया, तब मैं लौट सका।"

"दो साल तक तुम उस निर्जन टापू पर कैसे रह लिये?"

"मेरी जेब में मेरे बीमे की पालिसी थी। बस, मैं उसे निकाल कर पढ़ने बैठ गया। दो साल बाद जब जहाज आया तब भी उस में से कुछ धारा-उपधाराएँ पढ़ने को रह गयी थीं।"



लाइफ़बॉय
है जहाँ
तंदुरुस्ती है वहाँ

ताज़गी की तरंग, तंदुरुस्ती की उमंग — यह है लाइफ़बॉय के प्रत्येक स्नान का स्फूर्ति-दायक आनंद ! ... क्योंकि इस में एक श्रेष्ठ साबुन की श्रेष्ठता भी है और अपनी अद्भुत विशेषता भी !

लाइफ़बॉय मैल में छिपे कीटाणुओं को धो डालता है

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

लिंटास–L.49-77 HI

महकते जीवन-फूल

शंकरदेव विद्यालंकार

अपनी ध्येय-निष्ठा और उग्र साहसिकता से मृत्यु तक को ललकारने वाले स्वातंत्र्य-वीर स्वर्गीय विनायक दामोदर सावरकर स्मरण-शक्ति के भी धनी थे ।

उन्हें क्रांतिकारी आंदोलन में दो जन्मों (४० वर्ष) के कठोर कारावास का दंड मिला था । अंडमान के बंदीघर की सुनसान कोठरी में क्रांतिवीर का प्रसुप्त कवित्व जाग उठा । उन्होंने मराठी भाषा में पानीपत के युद्ध के विषय में काव्य-सृजन किया । वहाँ उन के पास लिखने के कोई साधन नहीं थे । अतः बंदीघर की दीवारों पर काँटे से अक्षरों को अंकित कर के उन्होंने सम्पूर्ण कृति की सहस्रों पंक्तियाँ कंठस्थ कर डालीं और दस वर्ष पश्चात अंडमान की काल-कोठरियों से छूटने पर उन्हें कागज पर अंकित कर लिया ।

इस शती के प्रारंभिक वर्षों की बात है । इंगलैंड में विलियम स्टेड नामक एक विश्वविख्यात पत्रकार हो गये हैं । वे सम-सामयिक राजनीति और इतिहास के उद्‌भट विद्वान और आलोचक थे । 'रिव्यू ऑफ रिव्यूज' नामक सचित्र मासिक पत्र के वे संपादक थे । सन १९११ में वे इंगलैंड के शानदार और प्रसिद्ध जहाज 'टाइटेनिक' में अमरीका जा रहे थे । जहाज में अनेक क्षेत्रों के कई लब्धप्रतिष्ठ व्यक्ति यात्रा कर रहे थे । दुर्भाग्यवश एक बर्फीली चट्टान से टकरा जाने के कारण इस जहाज का विनाश हो गया। विलियम स्टेड के पास जीवन-रक्षक-पेटी थी । वे चाहते तो उस के द्वारा अपनी प्राणरक्षा कर सकते थे, पर उन्होंने अपनी पेटी एक महिला को दे दी और स्वयं हाथ जोड़ कर वहाँ जा कर खड़े हो गये जहाँ बैंड अंतिम विदाई का गीत बजा रहा था । अंत में उसी अंजलिबद्ध दशा में वे महासागर में विलीन हो गये ।

लाहौर के मिशन हाई स्कूल की नवीं कक्षा में एक किशोर हिंदू विद्यार्थी पढ़ता था। एक दिन स्कूल के ईसाई मतावलंबी प्रधानाध्यापक ने हिंदू धर्म और संस्कृति के विषय में कुछ भद्दे आक्षेप कर डाले । युवक ने तत्काल उन का प्रतिवाद ही नहीं किया बल्कि साहस के साथ ईसाई धर्म के विषय में कुछ युक्तिसंगत आलोचनाएँ भी कीं । प्रधानाध्यापक युवक के साहस पर स्तंभित रह गये । अपने रोब की खातिर प्रधानाध्यापक ने युवक पर बेंतों

की बौछार की और उसे कक्षा से बाहर निकाल दिया। परंतु आवेश ठंडा पड़ने पर प्रधानाध्यापक ने अपनी भूल अनुभव की और कुछ दिन बाद युवक को पुन: स्कूल में बुला लिया। यही युवक आगे चल कर महात्मा हंसराज के नाम से देश भर में विख्यात हुआ, जिन्होंने पंजाब में दयानंद आर्य महाविद्यालय की स्थापना द्वारा महान शिक्षा-यज्ञ प्रारंभ किया और युवकों के शिक्षण और चरित्र-निर्माण के लिए अपना सारा जीवन लगा दिया।

इंगलैंड का अपने समय का विचक्षण राजनीतिज्ञ और प्रधान मंत्री डिजरायली (१८०४-१८८१) बड़े रंगीन स्वभाव का व्यक्ति था। वृद्धावस्था में एक बार उस ने एक वृद्ध महिला को पत्र लिखा, जिस का वृद्धा ने क्रुद्ध हो कर बड़ा करारा जवाब दिया। डिजरायली नाना प्रकार के रंग-बिरंगे कपड़े पहनता था। अपने केशपाश की एक लट गोंद से चिपकाये रहता था। उस की इस भड़कीली-चटकीली वेशभूषा को देख कर इंगलैंड के विख्यात कवि और लेखक टामस कार्लाइल (१७९५-१८८१) ने उसे बंदर तक कह डाला। परंतु प्रधान मंत्री बनने पर सब से पहला काम उस ने कार्लाइल को सम्मानित करने का ही किया था।

महिला विद्यापीठ पूना के संस्थापक अण्णा साहब कर्वे ने एक महाशय को कुछ रुपये उधार दिये थे। उन्हें समाचार मिला कि वे महाशय बहुत बीमार हैं। यह सुन कर महर्षि कर्वे उन से मिलने गये। उन्हें देखते ही रोगी सज्जन बड़े कष्ट से बोले, "आप के रुपये . . ."

महर्षि कर्वे ने उन्हें बीच में ही टोक दिया। बोले, "कदाचित आप समझ रहे होंगे कि मैं अपने रुपये लेने आया हूँ! मैं तो आप की बीमारी का समाचार सुन कर इसलिए आया हूँ कि कष्ट के इन दिनों में आप को अवश्य ही कुछ द्रव्य की जरूरत होगी।" इस से पूर्व कि वे सज्जन कुछ कहें, कर्वेजी बोले, "लीजिये ये रुपये, किसी प्रकार की चिंता किये बिना इन का उपयोग कीजिये।"

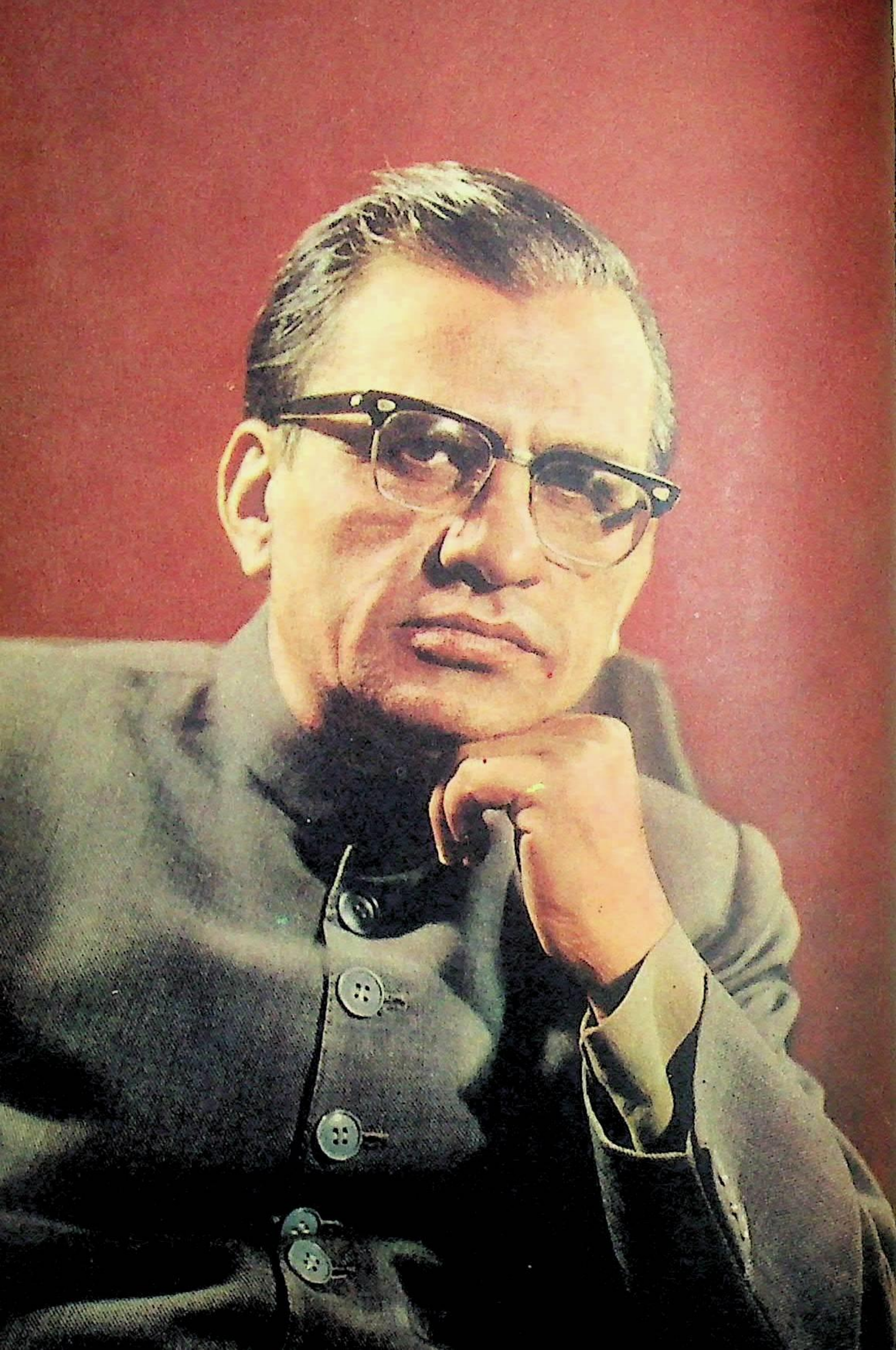
अविभाजित भारत की बात है। जमशेदजी मेहता नामक पारसी सज्जन कराची के एक बड़े समाजसेवी नेता थे। कराची शहर के उत्कर्ष और निर्माण में उन का बड़ा भारी योगदान रहा था।

कराची के सार्वजनिक चिकित्सालय की सहायता के लिए निधि एकत्र करने का निश्चय किया गया। कोष-समिति में जमशेदजी को भी लिया गया। समिति ने निश्चय किया कि जो दाता दस हजार रुपये का दान देंगे, उन के नामों की संगमरमर-पट्टिकाएं चिकित्सालय की दीवार पर लगा दी जायेंगी। अनेक उदार सज्जनों ने अच्छा दान दिया, किंतु जमशेदजी ने दस हजार से कुछ कम रुपये दिये!

यह देख कर एक सज्जन ने आश्चर्यपूर्वक पूछा, "मेहताजी, आप ने ऐसा क्यों किया? ४०-५० रुपये अधिक दे देना आप के लिए क्या कठिन था?"

जमशेदजी भाई नम्रतापूर्वक बोले, "प्रभु ने मुझे जो कुछ दिया है उस का उपयोग लोकसेवा में हो, यही मेरे लिए विशेष संतोष और आनंद की बात है, नाम की पट्टिका लगवाने में नहीं।"





शिकायत है

नगेन्द्र से नगेन्द्र को

श्रीयुक्त डाक्टर साहब !

यह संबोधन इसलिए है कि 'डाक्टर साहब' अब आप की उपाधि न रह कर नाम ही बन गया है। आप के घर के बच्चे आप का सही नाम ही नहीं जानते; अभी उसी दिन तो भाई के पूछने पर कि नाना का नाम क्या है, अतिमा ने आश्वस्त भाव से जवाब दिया था——डाक्टर साहब। आप को स्वयं ही फोन पर कहना पड़ता है कि मैं डाक्टर नगेन्द्र बोल रहा हूँ, क्योंकि नगेन्द्र कहने पर सुननेवाला कभी-कभी पहचानने में देर कर सकता है, या शायद वह न भी करे, पर आप को डर रहता है कि उपाधि-विरहित आप का नाम सुन कर वह आप के प्रति आवश्यक विनयाचार करने में चूक जाये ! पर यह तो केवल प्रस्तावना है, अब सुनिये : मैं आप का चेतन मन हूँ, और, अधिक नहीं तो कम-से-कम पचीस वर्ष से, जब से आप का सामाजिक अहं प्रबुद्ध हुआ है, आप से अर्थात आप के अंतर्मन से (क्योंकि फ्रायड के अनुसार अंतर्मन ही तो व्यक्तित्व का प्रमुख अंश है) परेशान हूँ।

यों तो मुझे आप के लेखक से भी कई-एक शिकायतें हैं, पर मेरी खास परेशानी आप के व्यक्ति से है। आप के स्वभाव की दो प्रमुख विशेषताएँ हैं: अहंकार और भावुकता। सीमा के भीतर ये दोनों गुण ही मानी जा सकती हैं, परंतु सीमा से बाहर जा कर ये दोष बन जाती हैं; और आप के विषय में प्रायः यही हुआ है।

आप के अहंकार का एक स्पष्ट दुष्परिणाम यह है कि आप प्रत्येक कार्य अपनी इच्छा के अनुसार करना चाहते हैं। सामाजिक दृष्टि से यह प्रवृत्ति बहुत काम्य नहीं है, क्योंकि कोई भी व्यक्ति अपनी इच्छा की पूर्ति सदा नहीं कर सकता। समाज वस्तुतः सामंजस्य पर आधृत है, जिस में व्यष्टि की इच्छाओं

का नहीं वरन समष्टि के हितों का विधान ही मुख्य है। इच्छा और हित भी पर्याय नहीं हैं। स्वयं व्यक्ति की ही इच्छा उस के विपरीत पड़ सकती है, फिर समाज में तो अनेक व्यक्तियों के हित समन्वित रहते हैं। अतः कोई व्यक्ति सदा अपनी इच्छा के अनुसार कार्य नहीं कर सकता—व्यवहार में जितनी इच्छाएँ पूरी होती हैं उन से कहीं अधिक अपूर्ण रह जाती हैं या बाधित हो जाती हैं। यह जीवन की अनिवार्य व्यवस्था है जिसे समझ लेने के बाद आवश्यक हो जाता है कि हम अपनी इच्छाओं का विवेक के द्वारा अनुशासन करें—यह मान कर चलें कि प्रत्येक इच्छा की पूर्ति न संभव है और न हितकर। परंतु यह जाग्रत विवेक और पैनी तर्क-बुद्धि आप के अंतर्मन के सामने सर्वथा विफल हो जाते हैं। आप प्रत्येक कार्य अपनी इच्छा के अनुकूल करना ही नहीं चाहते बल्कि प्रत्येक कार्य का अपनी इच्छा के अनुसार होना भी चाहते हैं, यानी आप चाहते हैं कि हर काम वैसे ही हो जैसे आप ठीक समझते हैं। आप के प्रति अन्याय न हो जाये, इसलिए एक बात साफ कर दूँ कि आप स्वार्थ के लिए ऐसा नहीं करते, प्रायः स्वार्थ का त्याग कर के भी आप यह सब चाहते हैं। अहंकार का स्वार्थ से विशेष सौहार्द नहीं है, अहंकार में स्वार्थ की उपेक्षा ही नहीं प्रायः विस्मृति भी निहित रहती है। फिर भी, इस के दुष्परिणाम तो स्पष्ट ही हैं और वे मुझे अकसर भोगने पड़ते हैं। ऐसी घटनाएँ प्रायः हो जाती हैं जो वस्तुदृष्टि से अत्यंत सामान्य होने पर भी आप के लिए अनावश्यक तूल ग्रहण कर लेती हैं। आप को जाड़ा औसत आदमी से अधिक लगता है, इसलिए आप चाहते हैं कि आप के घर के बच्चे ज्यादा कपड़े पहनें। दो-चार बार धमकाने से आप की आज्ञा का पालन हो जाता है, पर बच्चे तो अपनी मर्जी और सुविधा के अनुसार कपड़े पहनते हैं। आप का चित्त यह देख कर अत्यंत खिन्न हो उठता है कि घर के वयस्क व्यक्ति और नौकर बच्चों के सुख-स्वास्थ्य के प्रति कितने उदासीन हैं—सभी अपने स्वार्थ में लीन हैं—हमारे बच्चे वास्तव में कितने दुखी रहते हैं। आप का मन एक विचित्र आत्मकरुणा से भर जाता है। अंतरंग वृत्त के भीतर आप अपने प्रियजन और परिजन से यह अपेक्षा करते हैं कि आप की पसंद ही उन की पसंद हो जब कि उन में से अधिकांश को आप की रुचि पर विश्वास नहीं है। आप का प्रिय लाल रंग अधिकतर लोगों को नापसंद है। आप चाहते हैं कि कमरे के सोफे, कालीन लाल रंग के हों और यदि कोई हलके रंग के परदे या कालीन खरीद कर लाता है तो लगता है कि रुपया बेकार गया। परंतु आप का उपदेश व्यर्थ जाता है और आप की कल्पना तुरंत दौड़ने लगती है—दो-चार महीनों में ये भदरंग हो जायेंगे, फिर हजार रुपये का खर्चा सिर पड़ेगा और घर की अर्थ-व्यवस्था अकारण ही गड़बड़ हो जायेगी। आप की सही बात नहीं मानी गयी, इस पर आप को क्रोध आता है और बाद में चल कर इस से हानि होगी—यह सोच कर आप के मन पर भार पड़ता है। उधर, जिस के संदर्भ में यह सब हो रहा है वह प्रसन्न है अपनी रुचि की सफलता पर।

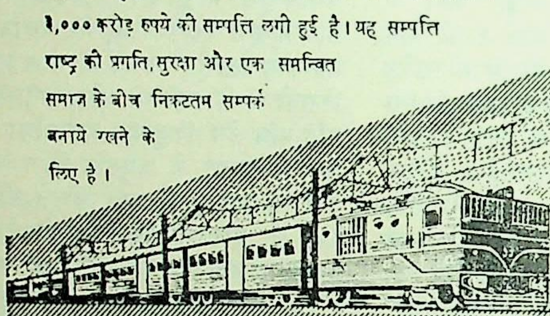
सार्वजनिक जीवन के वृहत्तर परिवेश में भी स्थिति में विशेष परिवर्तन नहीं आता। सौभाग्य या दुर्भाग्य से आप

का सार्वजनिक जीवन भी काफी सक्रिय है। आवश्यकता से अधिक संस्थाओं से आप का बहुविध संबंध है और अपने वय:क्रम तथा परिवेश के औसत आदमी से कहीं अधिक आप व्यस्त हैं। इन संस्थाओं की गोष्ठियों में, विशेषकर निर्वाचन-समितियों में, स्वभावत: आप की सम्मति का आदर होता है—कदाचित आप के स्पष्ट विचार और निर्भीक अभिव्यक्ति के कारण। आप की सफाई में फिर यह कह दूँ कि अपने वय:क्रम और परिवेश के औसत आदमी की अपेक्षा आप के मन में इन संस्थाओं के प्रति काफी कम लोभ की भावना है और इस में भी संदेह नहीं कि आप यथासंभव अपने प्रति ईमान-दार रहने और दूसरे के प्रति न्याय करने का ही प्रयत्न करते हैं। लेकिन समिति का कार्य आरंभ होते ही आप सहजक्रम से यह भूल जाते हैं कि जनाब को सलाह देने के लिए बुलाया गया है, निर्णय देने के लिए नहीं—सलाहकार की भूमिका से आप अनायास ही निर्णायक के आसन पर जा बैठते हैं। ऐसा करने में मन और बुद्धि दोनों पर अनावश्यक भार पड़ता है और कभी-कभी (यद्यपि सौभाग्य से ऐसा कम ही होता है) विपरीत निर्णय होने पर आप को अकारण क्लेश भी होता है। दुर्घटना यह होती है कि अलक्ष्यक्रम से संपूर्ण विवेक-बल को विफल करता हुआ, आप का अहंकार परिस्थिति के साथ संलिप्त हो जाता है और कोई भी ऐसा प्रश्न, जिस के साथ आप का दूर का भी संबंध नहीं है, जनाब के लिए व्यक्तिगत मानापमान का प्रश्न बन जाता है। जाहिर है कि सार्वजनिक जीवन के लिए इस प्रकार का दृष्टिकोण एकदम गलत है। आयु के साथ आप का कार्य-क्षेत्र और दायित्व भी निरंतर बढ़ते जा रहे हैं, परंतु दुर्भाग्य से आप की इस मनोवृत्ति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हो रहा। आप को याद होगा कि अभी कुछ समय पूर्व आप ने अपने एक वयोवृद्ध मित्र के सामने यह समस्या रखी थी, जिस का उन्होंने बड़ा ही सुंदर उत्तर दिया था। उन का कहना था कि जब समस्या सामने होती है तब तो हम पूरे बुद्धि-बल से उस के साथ जूझते हैं, पर बाद में मन की रासें एकदम छोड़ देते हैं, जैसे साइकिल-सवार शुरू में पूरे जोर से पैंडल मार कर बाद में कुछ देर के लिए पैर चलाना एक दम छोड़ देता है। उन की यह सीख आप को कितनी भली लगी थी और चाहा था कि गाँठ बाँध लें। किंतु जब-जब मौका आया, आप ने आदत के अनुसार पैंडल तो पूरे जोर से घुमाये, पर उन्हें छोड़ने की बात आप को याद न रही, आप के पैरों का जोर तभी कम हुआ जब या तो मंजिल पार हो गयी या साइकिल की चेन ही टूट गयी। मंजिल पार हो जाने पर उल्लास की अपेक्षा थकान का अनुभव अधिक हुआ और चेन टूटने पर तो ग्लानि अनि-वार्य ही थी।

अहंकारी व्यक्ति प्राय: आत्मलिप्त और अभावुक होता है। परंतु आप में अहंकार के साथ राग-तत्व का भी प्राबल्य है। अहंकार में भी अपनी एक पीड़ा निहित रहती है, पर वह आत्मनिष्ठ होती है। अहंकारी पुरुष जहाँ आत्मनिर्भर होता है, वहाँ रागी व्यक्ति अपने सुख-दुख में दूसरों पर अत्यधिक निर्भर करता है। परेशानी तब होती है जब अहंकार आप को किसी स्वजन के प्रति कठोर होने के लिए प्रेरित करता है और भावना की ऊष्मा उस काठिन्य को भीतर ही भीतर द्रवित कर देती है।

प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल

रेलें दिन रात लगातार चलती रहती हैं। प्रतिदिन लगभग १०,००० गाड़ियां देश के एक कोने से दूसरे कोने तक लगातार चलती रहती हैं और इसमें कुल १२,००० इंजन, ३२,००० सवारी डिब्बे और ३,५५,००० से अधिक माल डिब्बे उपयोग में लाये जा रहे हैं। भारतीय रेलें आज सम्पूर्ण भारत की वृहत्तम राष्ट्रीय परिसम्पत्तियों में से एक हैं। इस के दूर दूर तक फैले हुए मार्गों, स्टेशनों, कारखानों और चलस्टॉक में ३,००० करोड़ रुपये की सम्पत्ति लगी हुई है। यह सम्पत्ति राष्ट्र की प्रगति, सुरक्षा और एक समन्वित समाज के बीच निकटतम सम्पर्क बनाये रखने के लिए है।



यात्रा करने वालों की
दैनिक
संख्या
५५ लाख

माल यातायात

१९५०-५१ में माल यातायात ९ करोड़ ३० लाख मीटरिक टन था जो बढ़कर १९६५-६६ में २० करोड़ ४० लाख मीटरिक टन हो गया है। प्रमुख क्षेत्रों में रेलों की माल यातायात क्षमता मांग से अधिक बढ़ गयी है।

यात्री यातायात

यात्रियों की संख्या १९५०-५१ में १२८ करोड़ ४० लाख थी जो धीरे धीरे बढ़कर १९६५-६६ में लगभग २१० करोड़ हो गयी है।

रक्षा

राष्ट्रीय रेलों ने संकट काल में आशातीत सहायता प्रदान की है। १९६२ और १९६५ में दोनों ही अवसरों पर उन्होंने रक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं को शीघ्र और हर प्रकार से पूरा किया।

भारतीय रेलें

११३ वर्षों से राष्ट्रीय  **सेवा में रत**

IRF. 42 H-66

यह आप के लिए अग्निपरीक्षा की घड़ी होती है और दुर्भाग्य से ऐसी स्थितियाँ आप के नैतिक जीवन में अनायास--प्राय: अकारण ही--उपस्थित होती रहती हैं। विडंबना यह है कि इस द्वंद्वमयी स्थिति की आप के स्वीकृत जीवन-दर्शन आनंद-वाद के साथ किसी तरह भी संगति नहीं बैठती: इसे समाहित कर लेने की आतुरता आप के मन में बराबर रहती है, क्योंकि आप का यह विश्वास अटूट है कि द्वंद्व विकृति मात्र है अत: क्षणिक और असत है। इस प्रकार, आप के मन के भीतर एक ओर अहंकार और राग का अंतर्द्वंद्व चलता है, दूसरी ओर इस अंतर्द्वंद्व को अविलंब ही समाहित करने की अधीरता भी इतनी ही तीव्र हो जाती है।

बात यहीं समाप्त हो जाती, तब भी गनीमत थी। पर आप के साथ एक और मुसीबत है और वह यह कि आप दूसरों के सामने अपने मनोविकारों की मुक्त अभिव्यक्ति से बचने का दुष्प्रयास करते हैं। आप की विनोद-वृत्ति काफी प्रबुद्ध है, पर दूसरों के सामने खुल कर हँसने में आप को बाधा पड़ती है। आप अपने विषाद को ही नहीं उल्लास को भी व्यक्त करने में हेठी समझने लगे हैं। कारण शायद यह है कि आप का सामाजिक वृत्त बहुत छोटा हो गया है। उस में कुछ लोग आप से बड़े हैं, जिन के साथ आप का मन इसलिए संलग्न है कि उसे विनम्र होने का सुख मिलता है; पर अधिकांश आप से छोटे हैं, जिन के सामने अपने मन के विकारों को--चाहे वे सुखमय हों या दुखमय--अनावृत करना आप को प्राय: सह्य नहीं होता। आप के बराबर के लोग, जिन के साथ (वय:क्रम की) ऊँचाई और नीचाई का व्यक्त या अव्यक्त अनुभव न हो, आप के जीवन-वृत्त से धीरे-धीरे हटते चले जा रहे हैं। समता के अभाव में एक प्रकार का अभ्यास-लब्ध गांभीर्य आप ने समय से बहुत पहले ही ओढ़ लिया है। मन के असंयम को संयम के उपचार में अथवा आंतरिक द्वंद्व को बाह्य अद्वंद्व की मुद्रा में बाँधना अपने आप में कृच्छ्र साधना है--और इस का परिणाम होता है चेतना का अनवरत श्रम, जिस की छाया आप की मुखाकृति पर स्थायी रूप से अंकित होती जा रही है।

इस प्रकार, मेरे अभियोग प्राय: आप के व्यक्ति से ही संबद्ध हैं। आप का लेखक व्यक्ति से कहीं अधिक समझदार है। कारण यह है कि भावों या विचारों का जितना भी उद्वेग होता है उसे आप का व्यक्ति पहले ही झेल लेता है और शब्दों में रूपायित होने तक यह उद्वेलन बहुत कुछ शांत-सा ही हो जाता है। फलत: आप का लेखक आप के स्वभाव के अधिकांश दोषों से मुक्त हो जाता है। उस में न तो अहंकार और भावुकता का अंदर्द्वंद्व मिलता है और न इस अंतर्द्वंद्व को समाहित करने की कृच्छ्र साधना। व्यावहारिक जीवन में प्रतिपक्षी के विरुद्ध जो सहज आक्रोश आप के मन में रहता है वह भी यहाँ अभिव्यक्ति की सौंदर्य-रक्षा के लिए संयमित हो जाता है--क्योंकि, आप का यह निर्भ्रांत मत है कि अभिव्यक्ति भाव या विचार का उद्गार नहीं वरन उद्गीथ-रूप ही होती है। साहित्य-कर्म के प्रति यह शुभ्र धारणा अनगढ़ विचार तथा असंयत आक्रोश के फूहड़पन से आप के लेखन की रक्षा करती है।

फिर भी, निर्दोष तो आप का लेखक भी नहीं है--हो ही कैसे सकता है? अभी कुछ समय पूर्व एक समादृत बंधु ने

आप के नये ग्रंथ 'रस-सिद्धान्त' के पहले ही परिच्छेद में न जाने कितने ऐसे प्रयोगों की गणना कर शिकायत की थी कि आप अपने लेखन में 'ही' शब्द का प्रयोग बहुत ज्यादा करते हैं। उन के विचार से 'ही' का अतिशय प्रयोग इस बात का द्योतक है कि आप अपने मत के विकल्पों को एकदम अग्राह्य मान कर चलते हैं। सभी कुछ ऐसा ही नहीं है जैसा कि आप मानते या सोचते हैं --बहुत कुछ वैसा भी हो सकता है और है। बात लटकेदार जरूर थी, पर उस में सार तो है ही। आप ने मित्र से हँस कर कहा था—पंडितजी, आप के 'भी' से हमारा 'ही' शायद अच्छा है। उन का तर्क था कि 'भी' जहाँ विचार की उदारता का द्योतक है, वहाँ 'ही' में असहिष्णुता की गंध आती है। आप कदाचित यह कहना चाहेंगे कि 'भी' के अतिरिक्त प्रयोग में आत्मविश्वास की कमी या तथ्य की निभ्रांत अनुभूति तथा निर्भीक अभिव्यक्ति का आलस्य निहित रहता है। बात आप की भी गलत नहीं है : 'भी' के सावधान प्रयोग से, हो सकता है कि, आप की शैली का ओज क्षीण हो जाये और उस की कमी भाव के अलंकार तथा वाणी के उच्छ्वास से पूरी करनी पड़े—जो शायद आप की चिंतन-पद्धति के अनुकूल न हो। परंतु मेरी सलाह फिर भी यही है कि विचार की उदारता अपने आप में बड़ा गुण है और, आत्म-संकल्प को शिथिल किये बिना, उस का अर्जन कर लेना लाभकर ही हो सकता है।

यदि आप के मर्म पर आघात न हो तो एक और दोष की ओर भी संकेत कर दूं। आप अपने विवेचन में पाठक के बुद्धि-विवेक का कभी-कभी अवमूल्यन करने लगते हैं। आप का आग्रही स्वभाव अपने विचार को पाठक के घट में उतारने के लिए इतना अधिक सतर्क रहता है कि आप किसी प्रकार का खतरा मोल लेना नहीं चाहते। बात कुछ हद तक तो ठीक है, पर यह क्यों भूल जाते हैं कि आप का पाठक भी तो प्रबुद्ध है ! और, यदि आप की बात वह न भी माने तो क्या आफत आ जायेगी ? आखिर, उस के भी तो अपने विचार और विश्वास हैं, जो आप के विचारों से लाभान्वित हुए बिना भी पल्लवित होना चाहते हैं। इधर, अध्यापक-वृत्ति ने इस आदत को और भी खराब कर दिया है : आप जाने-अनजाने अपने विवेचन-क्रम में झट-से अध्यापक के मंच पर आ बैठते हैं; पाठक आप की कल्पना में प्रबुद्ध और तार्किक श्रोता न रह कर प्राय: विनीत और जिज्ञासु विद्यार्थी बन जाता है।

अभी कुछ और भी तीर मेरे तरकश में हैं। पर उन का प्रयोग मैं आज नहीं करूँगा। कारण दो हैं : एक तो आप के विरोधी मेरे अभियोगों को 'प्रामाणिक' मान कर इन का दुरुपयोग कर सकते हैं और दूसरे आप स्वयं भी तैश में आ कर मेरे पत्र को रद्दी की टोकरी में फेंक सकते हैं।

अप्रिय कथन के लिए क्षमा करेंगे।

अभिन्न,
नगेन्द्र

●

प्राथमिक पाठशाला में पढ़ने के लिए आये एक बच्चे का मन पहले ही दिन वहाँ नहीं लगा और वह रोने लगा। अध्यापक ने रोने का कारण पूछा तो उस ने कहा, "पहले ही दिन से मेरा मन यहाँ नहीं लग रहा है, पाँच साल तक कैसे पढ़ूंगा इस स्कूल में ?"

"बस !" अध्यापक ने उत्तर दिया, "मुझे देखो, मुझे तो यहाँ जिंदगी भर पढ़ाना है।"

रामनाथ सुमन

छायावाद-युगीन काशी

संगीत की रस-धारा

भाव-प्रवण होने के कारण बचपन से ही संगीत की ओर मेरा झुकाव था। यह झुकाव मुझे स्वयं तो संगीतकार कभी न बना सका--न गला वैसा था, न एक स्थान पर बैठ कर साधना करने का अवसर ही मिलना संभव था। कशमकश और भाग-दौड़ की जिंदगी थी, परंतु अच्छे गायन-वादन एवं नृत्य का प्रेम सदा बना रहा। काव्य में जो भाव अमूर्त था वह संगीत में मूर्त हो उठता था और उसे सुन कर हृदय एक दिव्य रहस्यमय आनंद से भर जाता था।

काशी जहाँ भारत का शास्त्र-पीठ रही है वहाँ वह विविध कलाओं का भी एक प्रसिद्ध केंद्र रही है। अन्य कला-क्षेत्रों की भाँति संगीत के क्षेत्र में भी इस का एक अपना स्थान रहा है। नृत्य और संगीत दोनों क्षेत्रों में काशी की पर्याप्त देन है। यहाँ दिलराम मिश्र, सेवक, प्रसिद्धूजी, मनोहर मिश्र तथा शिवा-पशुपतिजी-जैसे महान कंठशिल्पी हो चुके हैं। यहाँ गायकी की अपनी एक परंपरा है, कई घराने ऐसे मिलते हैं, शताब्दियों से संगीत ही जिन का जीवन रहा है।

हमारे जमाने में काशी जैसे कवियों साहित्यकारों, कृतविद्य समीक्षकों तथा विद्याप्राण अध्यापकों से भरी-पुरी थी, वैसे ही संगीत के विविध क्षेत्रों में साधना-प्रिय कलाकारों से भी पूर्ण थी। ध्रुपद और ख्याल भी गाये जाते थे, परंतु ठुमरी, पूर्वी की बहार थी। शिवेंद्रनाथ वसु-जैसे वीणाकार, मौजुद्दीन खाँ तथा बड़े रामदास -जैसे गायक, बिस्मिल्लाह और नंदलाल (शहनाई), पं. सुरसहाय मिश्र एवं उन के भाई हनुमानप्रसाद (सारंगी), गोपीनाथ गोस्वामी (वायलिन), शुकदेव मिश्र (सुकरे महाराज) जैसे कत्थक नृत्य के आचार्य, राजेश्वरी-विद्याधरी-बड़ी मोती-जैसी गायिकाएँ, भैरोंप्रसाद,कंठे महाराज, बीरू मिश्र, अनोखेलाल-जैसे तबलावादक और भोलानाथजी पाठक-जैसे मृदंगाचार्य, मतलब मधु के छत्ते की भाँति काशी रसग्राही और रसस्रावी संगीतकारों से भरी थी।

मौजुद्दीन खाँ

स्मृति-पट पर सब से प्राणोज्ज्वल

रेखा है मौजुद्दीन खाँ की। बचपन में जब मैं कबीरचौरा (काशी) के मिडिल स्कूल में पढ़ता था और जब उस मिडिल स्कूल ने विद्या के क्षेत्र में एक नाम कमा लिया था तथा मास्टरों की सख्ती के लिए भी प्रसिद्ध हो गया था (लड़के नारा लगाते थे 'हापुड़ का पापड़, मिडिल स्कूल का झापड़'–इसी से कुछ कयास कर लीजिये) तब कबीराचौरा महल्ला कत्थक उस्तादों का केंद्र था। बाद में प्रसिद्धि प्राप्त करने वाले कितने ही कत्थकों के बच्चे मेरे आगे-पीछे के सहपाठी थे। इन के साथ खेलते-खाते इन के घर की भी सैर हो जाती थी। ये लोग उस समय भड्डुर या भड़ेरिया कहे जाते थे। इन के साथ जा कर मैं देखता था कि इन के घरवाले बड़े लोग कितना रियाज करते हैं। चार-चार, छह-छह घंटे एक बैठकी में बीत जाते थे।

हमारे मिडिल स्कूल के पास ही बनारस के प्रसिद्ध रईस लल्लनजी और छक्कनजी का प्रसिद्ध गणेशबाग था। आजकल इस में लड़कियों का सरकारी इंटर कालिज है और इमारत की हालत खस्ता है, पर इस बाग का एक जमाना था। एक ओर गुलाब के फूल खिलखिलाते थे, जूही और चमेली की कलियाँ लताओं में मुसकरा-मुसकरा कर रह जाती थीं, जैसे नवोढाएँ अधखुले घूँघटों में आँख मारती और मुसकराती हों, दूसरी ओर बाग की बड़ी बैठक से प्रसिद्ध संगीतकारों की मादक तानें वातावरण में रसोन्मद कंपन उत्पन्न करती थीं। मौजुद्दीन खाँ इस दरबार के प्रधान रत्न थे। रात की पढ़ाई (उन दिनों मिडिल कक्षाओं को अध्यापकगण रात में भी पढ़ाते थे) छोड़ कर केवल दो बार मुझे मौजुद्दीन खाँ का गाना सुनने का मौका मिला, एक गणेशबाग में, दूसरी बार स्कूल के निकट ही औघड़नाथ की तकिया के वार्षिक समारोह में। लंबा कद, गोरा रंग, भरा बदन, सूरत और सीरत दोनों में उन का अपना आकर्षण था। मौजुद्दीन खाँ साहब का घर भी मेरे घर के पास ही छत्तातले था। उस जमाने में मैं बालक ही था और संगीत की बारीकियाँ समझने की वह उम्र भी न थी। ख्याल की गायकी मैं क्या समझता, किंतु औघड़नाथ की तकिया में गायी उन की पीलू राग की ठुमरी 'डगमग हालै मोरी नैया रे कन्हैया बिनु' आज भी रह-रह कर मेरे स्मृति-पट पर उभर आती है। उस दिन उन्होंने इसे इस तरह गाया कि श्रोता झूम-झूम उठे। सुरीलेपन के साथ आवाज गजब की थी। मुरकी, स्वरों पर ठहराव तथा बोल ऐसे आकर्षक थे कि बहुत ही कम सुनने में आता है। दूसरी ठुमरी गणेशबाग में उन के मुँह से सुनी थी–'बाजूबंदा खुलि खुलि जाय।' सिंध भैरवी राग की यह ठुमरी मैं ने रसूलन बाई और सिद्धेश्वरी देवी से भी सुनी है,



किंतु खाँ साहब की बात ही और थी। एक-एक बोल और पुकार पर लोग सिर धुनने लगते थे। फिर तो मेरे होश सँभालते-सँभालते १९१९ ई० में उन का देहांत ही हो गया।

इन के पिता गुलाम हुसेन खाँ पटियाला के रहने वाले थे, किंतु १८८० ई० के लगभग सपरिवार काशी चले आये और शेख सलीम के फाटक में एक किराये का मकान ले कर रहने लगे। उस समय मौजुद्दीन खाँ मुश्किल से पाँच वर्ष के रहे होंगे। पिता स्वयं गवैया थे और सितार-वादन में उन्हें कमाल हासिल था। माँ जेबुन्निसा बेगम भी बड़ा अच्छा गाती थीं। परंतु यह घराना ख्याल और ध्रुपद की गायकी का था। मौजुद्दीन खाँ ख्याल गायकी के ही कलाकार थे, परंतु सुनते हैं कि आजमगढ़ के जगदीप मिश्र (जो काशी चले आये थे और कबीराचौरा में ही अहिराना के पास रहने लगे थे) के आग्रह एवं प्रभाव से ये ठुमरी के बनारसी स्कूल की ओर खिच गये। उन दिनों जगदीपजी की नृत्य और गायन दोनों मे प्रसिद्धि थी। मैं ने उन को नाचते-गाते नहीं देखा-सुना, किंतु जिन्होंने देखा-सुना था वे उन की खूब प्रशंसा करते थे। गला इतना सुरीला और इतने दर्द के साथ गाते थे कि मोहिनी छा जाती थी।

बड़े रामदास

बड़े रामदास ने भी उन दिनों बड़ा नाम कमाया था। इन के पिता श्री शिवनंदन मिश्र अच्छे गवैया थे और उन पर काशी के विद्वान महात्मा भास्करानंदजी की बड़ी कृपा थी। उन्हीं के आशीर्वाद से शिवनंदनजी को पुत्र-लाभ हुआ। पुत्र का नामकरण-संस्कार भी भास्करानंदजी ने किया था। बड़े रामदास को बचपन से ही संगीत का शौक हुआ। विवाह के बाद ससुर जयकरणजी की देखरेख में इन्होंने दीर्घकाल तक संगीत-साधना की। जयकरणजी ध्रुपद-धम्मार पदों के कोश थे। कहते हैं, उन्हें डेढ़ हजार ध्रुपद-धम्मार याद थे। चार-पाँच सौ तो बड़े रामदास ने भी उन से प्राप्त किये। अभ्यास के समय दस-दस, बारह-बारह घंटे की बैठकी होती थी। रामदास की स्वर-माधुरी काशी पर छा गयी थी। काशी क्या, नेपाल, पटियाला, रामपुर आदि दरबारों में भी अपने गायन के कारण रामदास ने काफी नाम कमाया। कुछ समय तक नेपाल में राजगायक भी रहे, परंतु भगवान विश्वनाथ का आकर्षण इन के मन से कभी नहीं गया। मैं ने इन के अनेक गाने सुने हैं। उन दिनों सभी प्रकार की गायकी इन में प्रत्यक्ष हुई, किंतु ख्याल गायकी की प्रधानता थी। बड़ी लोच थी गले में। लोच के साथ वैसा ही शास्त्रज्ञान भी था। बड़े धर्मभीरु थे, इसलिए उत्तर-जीवन पवित्रतर होता गया, विश्वनाथ की उपासना का स्वर उदात्त होता गया। यह गायक ही नहीं, अच्छे शिक्षक भी थे और नियमित रूप से शिष्यों को सिखाते मैं ने देखा है। अभी १०–१२ वर्ष पूर्व भी मैं ने इन के दर्शन किये थे। उस समय वे अस्सी के लगभग रहे होंगे, पर वही दमखम था। इधर का मुझे पता नहीं कि पंडितजी का शरीर है या नहीं। इन के पुत्र हरिशंकरजी भी खूब गाते हैं।

नंदलाल

शहनाई-वादकों में नंदलाल और बिस्मिल्लाह खाँ दोनों ने प्रसिद्धि प्राप्त की। मेरी तरुणाई के दिनों में दोनों

उभर रहे थे। नंदलालजी लगभग मेरी ही उम्र के थे और बिस्मिल्लाह छोटे थे। नंदलालजी के पिता सुद्धूरामजी भी अच्छे शहनाई-वादक थे। नंदलालजी ने दिल्ली के उस्ताद छोटे खाँ से शहनाई की और बड़े रामदास के पास ख्याल और ठुमरी की शिक्षा पायी थी। खूब मस्त हो कर बजाते थे। काशीनरेश के दरबार में थे और शायद अब भी वहाँ से संबद्ध होंगे। इन की भैरवी और मुल्तानी की धुनें मैं ने बार-बार सुनी हैं, वैसे पूरिया और चैती मेरे अधिक प्रिय हैं। इन्होंने काशी का बड़ा नाम किया।

बिस्मिल्लाह खाँ

शहनाई-वादकों में बिस्मिल्लाह खाँ का नाम आज भारत के कोने-कोने में फैल गया है। अब तो वे बूढ़े हो चले हैं, यद्यपि अब भी खूब बजाते हैं। किंतु उस जमाने में वे बाढ़ वाली नदी के समान थे। जवानी का आलम था और कला भी जवानी पर थी। संपूर्ण प्राणशक्ति के साथ बजाते थे। उस में कलेजे की पुकार होती थी। उन दिनों पैसा कलाकार का उपास्य न था, कला एवं गुण-प्रदर्शन की आकांक्षा ही उस की मुख्य प्रेरणा होती थी। अब तो बिस्मिल्लाह रुपयों से तुलते हैं, किंतु मेरे यौवन-काल में दस रुपये में जो अमृत-प्रवाह करते थे उस की तुलना नहीं थी। सरायगोवर्द्धन के मेरे आवास से थोड़ी ही दूर पर वे रहते थे और मुझे अनेक बार उन की कला का दर्शन होता रहता था। १९३० ई० में मेरे विवाह में हम लोगों के साथ, नाम मात्र का पारिश्रमिक ले कर, वे जबलपुर गये थे और वहाँ तीन दिन तक उन्होंने जो बजाया उस से सारे नगर में उन की धूम मच गयी। श्रोताओं पर उन्होंने जादू कर दिया था। उस समय वे बाईस साल के किशोर थे और फेफड़े में जोर भी खूब था।

उस जमाने में शहनाई का रिवाज भी खूब था, मंदिरों में प्रातः शहनाई में भैरवी बजती थी, विवाह तथा प्रत्येक मंगल अवसर पर शहनाई बिठायी जाती थी। वह हमारे मांगलिक जीवन का एक एक अंग बन गयी थी। अब तो भोंपू में सिनेमा के सस्ते गानों के रिकार्ड सुना कर सारे महल्ले के कान फोड़ने और नींद हराम कर देने का रिवाज इस तेजी से बढ़ रहा है कि देख कर आश्चर्य होता है। मृदुलता और सुघड़ता का स्थान शोरगुल वाले बाजों ने ले लिया है और अच्छा शहनाई-वादन अब शायद ही सुनायी पड़ता है। हमारे जीवन से रसार्द्रता लुप्त होती जा रही है और कलाएँ, साहित्य तथा संगीत गद्यात्मक होते जाते हैं।

बिस्मिल्लाह के पूर्वज भोजपुर दरबार के शहनाई-वादक थे। इन के पिता पैगंबरबख्श अच्छे संगीतकार भी थे। बिस्मिल्लाह का जन्म भोजपुर में ही १९०८ ई० में हुआ था। छुटपन में ही तीनों मामा (विलायत हुसेन, सादिक हुसेन तथा अलीबख्श) इन पर ध्यान देने लगे थे। अलीबख्श से शहनाई और गाने की शिक्षा विशेष रूप से मिली। वे जलसों में इन्हें साथ ले जाते थे, इसलिए अल्पावस्था में ही यह भी बजाने लगे। बाद में कुछ समय तक लखनऊ जा कर इन्होंने उस्ताद मुहम्मद हुसेन खाँ से ख्याल गायकी की भी शिक्षा प्राप्त की। बचपन से ही अच्छा रियाज करने के कारण बहुत जल्द इन्हें सफलता मिली। १६ वर्ष की उम्र में ६-६ घंटे रियाज करते थे। १७-१८ वर्ष की अवस्था में

तो यह महफिलों की शोभा बन गये।

यद्यपि यह ख्याल, ठुमरी, पूर्वी, चैती सभी कुछ बहुत अच्छा बजाते हैं, किंतु भोजपुरी एवं काशी की मिट्टी की सुगंध इन की कला में व्याप्त होने के कारण ठुमरी, पूर्वी एवं भोजपुरी ग्राम-गीतों के बोल–विशेषत: करुण एवं शृंगार के–इन की शहनाई में मानो साकार हो-हो उठते हैं। भैरव, भैरवी, कल्याण एवं पूरिया पर इन्हें कमाल हासिल है। इन्होंने शिष्यों की एक अच्छी मंडली तैयार कर ली है। पाश्चात्य शिक्षाप्राप्त सभ्य समाज में शहनाई की धाक जमाने का बहुत कुछ श्रेय बिस्मिल्लाह को है।

पशुपति मिश्र

सुरबहार भी धीरे-धीरे समाप्त होता जा रहा है। अब क्वचित ही देखने में आता है। सितार चला जा रहा है, यही गनीमत है। सुरबहार एवं सितार का जिक्र छिड़ते ही मुझे बनारस के पं० पशुपतिसेवक मिश्र की याद आ जाती है। दोनों तंत्रवाद्य इस तरह बजाते थे मानो लय इन के हाथ का खिलौना हो। लय का गहन ज्ञान इन्हें था। द्रुतलय पर जो क्षमता प्राप्त थी, वैसी मैं ने किसी दूसरे वाद्य-कार में नहीं देखी। बजाते-बजाते किसी भी लय के नये तोड़े बना कर फरमाइश के अनुसार किसी मात्रा से शुरू करने की अपूर्व शक्ति उन में थी।

इन के पितामह प्रसिद्ध महाराज नेपाल दरबार के संगीतकार थे। ख्याल ध्रुपद के उस्ताद माने जाते थे। पिता रामसेवक भी नेपाल के राजकीय संगीत विद्यालय के अध्यक्ष थे। तबला-विज्ञान नाम की पुस्तक भी इन की है। पशुपतिजी का जन्म १८८१ ई० में हुआ था और बाल्य-काल में पिता से कंठ-संगीत की ही शिक्षा पायी थी, किंतु यौवन-काल में इन की रुचि तंत्रवाद्यों की ओर हो गयी और उस में ही इन्होंने विशेष दक्षता प्राप्त की। ये अकड़वाले आदमी थे और बड़ी फीस लिये बिना कहीं आते-जाते न थे, इसलिए राजा-रईसों की महफिलों तक ही रह गये, लोकप्रिय नहीं हुए। परंतु जिसे भी इन का सुरबहार या सितार सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है वह उन्हें कभी भूल नहीं सकता। इन के छोटे भाई शिवसेवक भी बहुत अच्छे सितारिये थे और इन्हीं से शिक्षा प्राप्त की थी। मुरकी और तोड़ा में इन को कमाल हासिल था। इन के पास ध्रुपद, होली, दादरा, ख्याल और टप्पा का प्रभूत संग्रह था। किंतु इन का अधिकांश समय कलकत्ता में ही बीता, इसलिए केवल एक ही बार इन के उस्तादी हाथ का आनंद मैं ले सका। ●

एक नौसिखिया संगीतकार ने महान संगीतज्ञ मोजार्ट के पास आ कर पूछा कि मैं अपनी प्रतिभा का विकास कैसे करूँ ? मोजार्ट ने उत्तर दिया, "पहले आसान-सी धुनें बनाओ, जैसे गीतों की...."

"लेकिन आप ने तो बचपन में ही 'सिम्फनी' (स्वर-रचना) रच डाली थी !"

मोजार्ट ने कहा, "लेकिन मैं तुम्हारी तरह अपनी प्रतिभा के विकास का उपाय किसी से पूछने नहीं गया था।"

जेठ की दुपहरी

जेठ की दुपहरी में
पिघल रहा काँच

झूम रहे लपट के बगूले
अंगों में चिपचिपा पसीना
मात्र याद पानी का पीना
बया-झोंझ बेरी में झूले

धूप की मसहरी से
झाँक रही आँच

हाँफ रही छप्पर के नीचे
बैठी गौरैया की जोड़ी
कुत्तों ने नम जमीन गोड़ी
पड़े जीभ खोल आँख मीचे

किलकिला गिलहरी भी
आँच रही बाँच

तालों को लगा रोग सूखा
नदिया में भैंसें उतरातीं
गरमी से छाँहें अकुलातीं
रहना बेहतर आधा भूखा

'टिटी' स्वर टिटिहरी का
भर रहा कुलाँच

——उमेश——

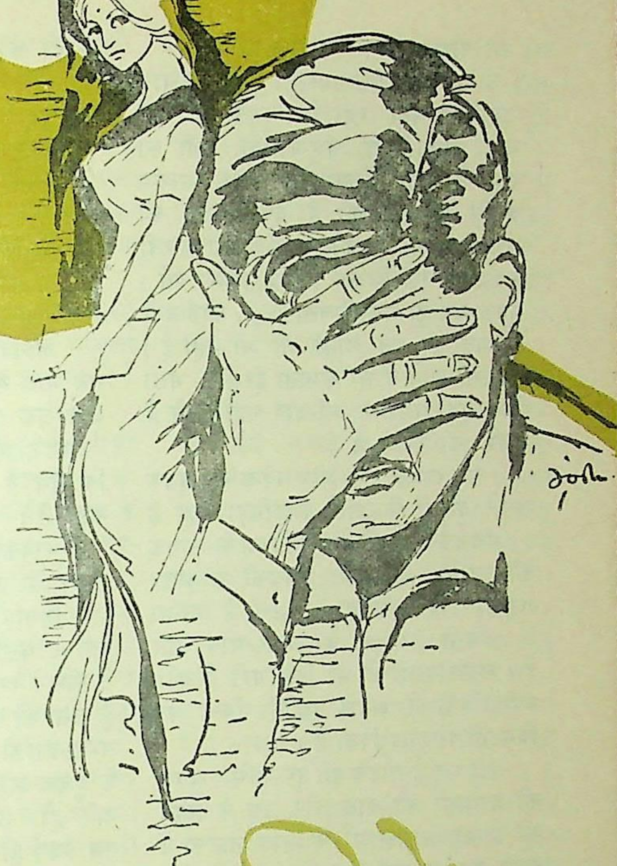
अशोक कंडवाल

यहाँ आये कई सप्ताह बीत गये हैं। सुधांशु नहीं चाहता था कि मैं यहाँ आऊँ, खोद-खोद कर कारण भी पूछना चाहा था उस ने, पर मैं बता नहीं पाया। बताने योग्य कोई बात होती तब न। फिर भी वह मान गया। बहुत बार उस ने इसी तरह मेरी इच्छा-अनिच्छाओं को स्वीकार किया है और अब तो प्रतिवाद भी नहीं करता। मन मसोस कर स्वीकार कर लेता है। जानता है, मैं अब और कितने दिन जी सकूँगा। यहाँ का सब प्रबंध उसी का किया-कराया है, नहीं तो क्या इतना सरल था यहाँ पर स्थान प्राप्त कर लेना?

वैसे यह जगह मुझे बहुत अच्छी लगी है। कौन जाने मृत्योपरांत स्वर्ग-दर्शन हो या न हो किंतु यह पूर्वाभास तो है ही। वैसे भी सुधांशु ने कोई कमी नहीं रखी है। प्रत्येक डाक्टर और नर्स को हर चौथे-पाँचवे दिन पत्र लिखता है, मेरे स्वास्थ्य और सुख-सुविधाओं का विवरण माँगता है। डाक्टर हीरेन मुखर्जी मेडिकल कालिज के उस के सहपाठी हैं, डाक्टर यामिनी मिश्र से भी न जाने कब का संबंध है, और सिस्टर आनंदमयी कहती हैं, "मैं कानपुर में बहुत दिनों तक सुधांशु भट्ट के साथ काम कर चुकी हूँ।" फिर भी न जाने क्यों अच्छा नहीं लगता। समय-असमय सुधांशु की बहुत याद आती है। सोचता हूँ वहीं रहता तो सुधांशु की सूरत देख कर ही जी लेता, यहाँ तो जाने कैसा-कैसा हो जाता है मन!

मैं अकसर कुंठित-सा हो उठता हूँ। इतनी भावुकता भी किस काम की कि अपना ही सर्वनाश कर बैठा। सुधांशु के पास था तो इतनी बातें सोचने का अवसर ही न मिल पाता था। वह कहता, "जरा हाथ इधर करना आशु दा, ग्लूकोज का इंजेक्शन लाया हूँ?" परंतु मैं जानता था वह नींद का इंजेक्शन होता था। तब मुझे इतनी उलटी-सीधी बातें सोचने का अवसर ही न मिलता था, परंतु यहाँ पर वैसी प्रवंचनाएँ नहीं हैं। बेचारे मुखर्जी महाशय या यामिनी मिश्र क्या जानें सुधांशु किस प्रकार लड़ रहा था मेरी मृत्यु से! नींद ही नहीं आती यहाँ पर तो। आँखें बरबस बंद कर भी लूँ पर नाटक-जैसे दृश्य चलते रहते हैं स्मृति-पटल पर। पट—परिवर्तन और संगीत, सभी कुछ चलता रहता है।

एक बहुत बड़े नगर का बड़ा-सा चौराहा। चौराहे पर साइकिलों की एक भव्य दुकान, उसी दुकान के काउंटर पर खड़ा एक प्रियदर्शन युवक। वय यही कोई बाईस-तेईस, सुन्दर-स्वस्थ शरीर, कांति-मान चेहरा, ऊँची नासिका और बड़ी-बड़ी आँखें, जिन में हजार-हजार सपनों की बरातें। उन्हीं बरातों की दुलहन—मध्यम-सा कद, इकहरा शरीर, खादी की सफेद साड़ी और सादी चप्पलें। अस्त-व्यस्त ढंग से गूंथी एक वेणी, गोद में सिमटी हुई



स्मृतियों के मायामृग

पाठशाला की कापियों और दृष्टि पथ की ओर। नौकरी के आरंभ का ही एक दिवस. . .युवक असमंजस में रह गया था। युवती ने अपनी हंसनी-सी ग्रीवा तनिक मोड़ते हुए बोझिल पलकों को उठा कर देखा था युवक की ओर, कुछ क्षण। जाने कैसे थे वे क्षण! जाने क्या कुछ उलट-पलट गया था उस दिन, उन क्षणों में। किंतु चेतना लौटने पर संदेह का एक अजगर फन फैलाये बैठा था युवक के मन में। काउंटर के ठीक पीछे दीवार-घड़ी थी और युवती शायद समय देखना चाहती थी, क्योंकि

उसे पाठशाला की बस पकड़नी थी।

एक वर्ष बीत गया है। युवक इस बीच उदासीन नहीं रहा है। युवती के घर-बार, माता-पिता, बंधु-बांधवों, सभी का उस ने पता किया है। एक मध्यम वर्गीय परिवार की है युवती, घर की अर्थ–व्यवस्था चलाने में सहायता करती है। इंटर तक शिक्षा। उम्र उन्नीस वर्ष। युवक मन ही मन सोचता है... कोई बड़ी हैसियत तो इन लोगों की भी नहीं है। सवा सौ रुपये मैं भी कमाता ही हूँ... भला किस युवा पुत्री के माँ-बाप नहीं रहते हैं लड़के की खोज में !

सब लज्जा एक ओर धकेल कर युवक अपने बुजुर्गों के आगे गिड़गिड़ा रहा है ... बिलकुल किसी सस्ती फिल्म के नायक की भाँति—मैं उस... लड़की से ब्याह करूँगा... अभी करूँगा ... उसी से करूँगा ... किसी प्रकार वे लोग मान जाते हैं। लड़कीवालों ने भी 'हाँ' भरी है और ज्योतिषियों ने अगले महीने मँगनी का दिन भी निकाल दिया है।

तो यह है नाटक की पृष्ठभूमि। युवक की प्रसन्नता की बात और उस के हृदय की इच्छा-आकांक्षाओं के भाव नाटक में स्पष्ट रूप से नहीं दिखाये जा सकते... बस इतना सच है कि इन दिनों वह इस धरती पर नहीं है। आकाश पर उड़ा जा रहा है। निर्द्वंद्व .... निर्बाध ... परंतु सहसा एक दिन एक अंतर्द्वंद्व जन्म लेता है युवक के मन में। असल में उस ने कई दिन से, विभिन्न कोणों से यह देखने-परखने की चेष्टा की है कि कहीं भी कोई प्रसन्नता की किरण युवती के मुखमंडल पर दीख जाये, परंतु नहीं, लगता है वहाँ गहन निस्तब्धता में डूबा अँधियारा आ जुटा है। स्पष्ट है कि मँगनी की यह सारी भूमिका युवती को कोई प्रसन्नता नहीं दे सकी।

ओह ! नाटक में व्यवधान उपस्थित हो गया। सिस्टर आनंदमयी आ रही हैं। पूछती हैं, "क्यों, नींद नहीं आ रही है? कुछ दूँ? दूध... फल... टॉफी...?"

मैं कहता हूँ, "आनंदमयी दी, तुम यह जो सौम्य मुसकराहट दे देती हो, यही सब भूख-प्यास हर लेती है।"

आनंदमयी हँस पड़ती हैं। फिर लज्जानत भाव से सिर झुका लेती हैं। बड़ी देर बाद एक उच्छ्वास के साथ कहती हैं, "डाक्टर भट्ट ने झूठ थोड़े ही लिखा था कि तुम में आवश्यकता से अधिक भावुकता है।"

भावुकता ? हाँ, इसी भावुकता को नाटक के उस टूटे क्रम में जोड़ लें...

विवाह का प्रसंग उपस्थित होने पर क्यों न प्रसन्न हो सकी युवती ? गंभीरता से सोचने पर युवक को लगता है, वह कारण है उस की कम शिक्षा-दीक्षा और कम सम्मानवाली नौकरी। इतने साधारण कोटि के युवक को पति-रूप में पा कर संतुष्ट नहीं हो सकेगी वह ... तब ? तब सब व्यर्थ ही है। उसे अधिकार भी क्या है किसी के सपनों में बाधक बनने का ?

और युवक एक पत्र लिखता है युवती को। भूमिका में ही लिख दिया है, "यह कोई प्रेमपत्र नहीं है। तुम क्षमा करो अथवा नहीं, यह भी तुम्हें अधिकार है। अच्छा लगे तो उत्तर देना, उत्तर न दो तो भी कोई हानि न होगी।" आगे मन के उसी अंतर्द्वन्द्व को दोहरा कर उस ने अपनी कम शिक्षा तथा कम रुपये-पैसे की बात लिखी है और पूछा है, "यदि सचमुच ही तुम सोचो कि इन सीमित परिस्थितियों में तुम सुखी न रह सकोगी तो प्रत्युत्तर न देना।

मैं स्वयं ही समझ लूँगा और अगले महीने मँगनी का जो कार्यक्रम बन रहा है, उसे तुड़वा लूँगा ।"

दृश्य अतीव दुखांत हो उठा है अब । परंतु नाटक है न, देखना ही पड़ेगा । एक अप्रिय घटना है सामने । युवक के बड़े-बूढ़े, नाते-रिश्तेदार सभी एक ही किस्म की बातें पूछे जा रहे हैं युवक से ।

"क्या तुम ने पत्र लिखा था उस लड़की को ? . . . क्या इश्क-विश्क का मामला था ? . . . क्या बहुत अधीर हो गये थे ? क्या . . ."

युवती का बहनोई भी ढेर-से ऐसे ही सवाल करता है । वह मार-पीट की धमकी तो देता ही है, साथ ही दुकान के मालिक तक पहुँच कर युवक की प्रणय-लीला की ख्याति भी पहुँचाता है . . . अरे, आप इतने दुखी क्यों हो उठे ! उस युवक की ग्लानि, लज्जा और मृत्यु की बार-बार कामना करने वाले चेहरे की ओर देख कर ? नहीं, नहीं । ठीक ही तो सजा मिली है उस अभद्र को ! भला सोचिये, किसी कुँवारी कन्या को इस प्रकार से पत्र लिखा जाता है ! आज के जमाने का क्या भरोसा है भाई ! सूरत इतनी भोली-भाली और कारनामे . . . कभी-कभी पुरानी स्मृतियाँ आती हैं तो खीझ भी आती है, हँसी भी ।

परंतु उस दिन हँसी एकाएक ही कहीं अंतर्धान हो गयी थी । नाटक में ले आया हूँ आप को । नायक की बात कह रहा हूँ । कैसा परेशान घूम रहा है वह? चेहरे का रंग इस तरह जैसे आँधी में आसमान धुँधला जाता है। 'ऐटलस' माँगने पर 'हिंद' साइकिल दिखाता है ग्राहकों को और 'ब्रेक' का मूल्य पूछने पर 'हैंडिल' के पैसे बताता है। ऐसे कहीं व्यवसाय चलता है ? पर वह यही करता है। उस दिन संध्या समय सब कुछ मालिक के हाथ पर रख कर कहा था उस ने–"जी, मुझे पैसे दे दीजिये और छुट्टी भी ।"

"क्यों ? लेकिन मैं ने तो तुम्हें कभी कुछ नहीं कहा। अपने लड़के की तरह मान कर कुछ कहा भी हो तो . . ."

"नहीं जी, अब यहाँ रहा ही नहीं जाता मुझ से––किसी भी मूल्य और प्रलोभन पर नहीं !"

और सच ही उस दिन के बाद वह काउंटर सूना हो गया था । यह रहा नाटक का पूर्वार्ध । अच्छा तो क्या, निम्न स्तर का कहें तो अधिक उपयुक्त होगा । खैर छोड़िये नाटक को, सच तो यह है कि मैं एक तरह से खूब आनंद में हूँ । यह तो पहले ही कह चुका हूँ कि यह जगह मुझे बहुत भायी है । साढ़े सात हजार फुट की ऊँचाई पर है यह सैनिटोरियम । चारों ओर ढलानों पर चीड़ और देवदारु के घने और घुमावदार वन । बीच-बीच में सेब और नाशपाती के बगीचे । मेरा जन्म पहाड़ों का ही है, इसीलिए मुझे इस धरती से बहुत मोह है। सोचता हूँ अच्छा ही है, बहुत दिनों तक भटक-भटका कर अपनी माँ-सदृश भूमि की गोद में आ लेटा हूँ । मृत्योपरांत इसी मिट्टी में मिल जाने की लालसा भी कुछ कम आनंददायी नहीं है, फिर भी बड़ा अजीब-सा लग रहा है मुझे। सोचता हूँ, आज मृत्यु-द्वार पर बैठ कर भी आनंद और निरानंद की विवेचना में उलझा हुआ हूँ . . .परंतु आप से एक रहस्य की बात कहूँ कि मृत्यु को सम्मुख देख कर व्यक्ति का समस्त दर्शन और आदर्शवाद गायब हो जाता है । उस समय तो अधूरी इच्छाएँ ही मूर्तिमान हो कर आँखों के आगे नर्तन करने लगती हैं। नाटक के

उत्तरार्ध में मेरा ही उदाहरण जोड़ कर देख लें।

उस दिन मेरे चतुर्दिक अंधकार ही अंधकार व्याप्त था। यों सुख आज तक नहीं पाया और इसी प्रकार के ममत्वहीन दिन बिताता रहा हूँ। एक अरसा हुआ जब सिर पर छाँव थी, आँखों में सपने और हृदय में एक छलावा । वह सब जब चला गया, फिर भी रोया नहीं, अपितु अधिक दृढ़ हो कर संघर्षों से जूझने का बल-संचय करने लगा था। चाय-बागान की मजदूरी कर ली थी।

चाय-बागान के दिनों का इतिहास उस के मस्तिष्क में घूम रहा था। वहाँ के श्रमिकों में वह कितना लोकप्रिय था! उन की भलाई के कार्यों में उस ने अपने आप को कितना डुबो दिया कि दस वर्षों तक स्वयं के बारे में भी यह न सोच पाया कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, क्या उद्देश्य है मेरा और कहाँ जाना है मुझे ? लेकिन इस सब का हिसाब रखनेवाला आकाश पर भी है, उसी का बुलावा आया है। देर-अबेर ही कर रहा हूँ। यों पसलियों में दर्द बहुत दिनों से था, लेकिन जब टालना कठिन हो चला तो सुधांशु की ढुँढ़ाई करनी पड़ी थी। ममेरा भाई है मेरा, बचपन में बहुत मानता था मुझे। वह तो मुझे देख कर ही रो पड़ा था। उसी दिन एक्सरे आदि ले कर सहयोगियों के संग दौड़-धूप करने के बाद थका-थकाया मेरे पास लौट आया था। कहने लगा था, "सब सत्यानाश कर दिया आशु दा ! "

मैं ने कहा था, "दुखी क्यों होता है? कौन-से बीवी-बच्चे सौंपे जा रहा हूँ मैं तुझे ?"

सुधांशु बड़े-बड़े आँसू ढुलका कर रोया था । इतना बड़ा डाक्टर , बहुत सरलता से लोगों के शरीर की चीर-फाड़ कर देने वाला डाक्टर बच्चों की तरह रो पड़ा था।

उस ने कहा था, "बीवी-बच्चे होते तुम्हारे तो आज यह अवस्था ले कर न आते मेरे पास। आधा शरीर गँवा बैठे हो। पर, अब तुम घड़ी भर के लिए भी यहाँ से न टल सकोगे, अन्यथा मैं स्वयं ही नौकरी छोड़ कर तुम्हारे संग आ बैठूँगा !"

मैं किसी प्रकार उसे समझा-बुझा कर दो दिन की मोहलत ले गया था उस से।

बाद में वह विशाल आयोजन हुआ था—एक बड़ी सभा और बहुत-से लोग। फूल-मालाओं से ढँक गया था मैं। मेरी जय-जयकार के गगन-भेदी नारों ने तो मुझे जैसे बहरा ही कर दिया था। उसी दिन सुना था लोगों से कि मेरा जीवन त्याग, तपस्या और गौरव से कितना गरिमामय था। लोगों की कितनी निष्ठा थी मुझ में। कितनी शुभ-कामनाएँ मिली थीं मुझे, साथ ही कितने आँसू और सिसकियाँ थीं उस विदाई में।

सोचता हूँ, इतनी संपदा का स्वामी हो कर भी आज मृत्यु के द्वार पर मलिन-मन क्यों बैठा हूँ मैं ? मेरा वह गरिमामय जीवन मुझे ही क्यों शांति नहीं दे पा रहा है और मुझे उस जिंदगी पर पश्चात्ताप क्यों है ? आज मुझे यह सब आनंद और सुख-सुविधाएँ असह्य पीड़ा क्यों दे रही हैं ? क्यों शूल चुभ रहे हैं मेरी छाती पर, क्यों यह असह्य प्यास मेरा कंठ सुखा रही है ? क्यों भाग आया हूँ मैं सुधांशु की स्नेह-वाटिका से ?

यहाँ न आता तो क्या होता ! एक स्पेशल वार्ड दिलवा दिया है सुधांशु ने। उस में सभी सुख-सुविधाएँ भी जुटा दी

हैं। अपना सारा ध्यान मेरी ओर ही केन्द्रित किये हुए था वह। प्रातः की चाय से ले कर रात्रि का भोजन तक हम साथ ही लेते। बीच-बीच में अन्य डाक्टरों, नर्सों और ढेरों मिलने-जुलनेवालों को ले आता सुधांशु। कभी-कभी कई पत्र-पत्रिकाएँ भी वह लाता। मेरा पहला स्वास्थ्य वास्तव में लौटने लगा था, तभी एक दिन वह कुछ चिंतित-सा हो कर आया और बोला, "छोटे अस्पताल से एक केस आया है। किसी मास्टर को 'एपेंडिसाइटिस' का सीरियस आपरेशन होगा, लेकिन यहाँ कहीं एक सीट भी नहीं है।"

मैं ने कहा, "बुरा न मानो तो मेरा इतना बड़ा यह कमरा तो है।"

वह बोला, "नहीं, नहीं, कैसी बात करते हैं ?"

मैं हँसा, "सुधा, तू गधा है। अरे, मैं एक मजदूर ही तो हूँ। तू ने इतने ऊँचे पर मुझे बिठला दिया है, लेकिन यह बात तो मेरे लिए भी कष्टदायक होगी कि वह मास्टर उपेक्षित रह जाये।"

सुधांशु न जाने क्या सोच कर मान गया। दूसरे दिन जब मैं रात भर की नींद से उठा तो पड़ोस में एक और बिस्तरा लग गया था। दुबला-पतला शरीर, सुकुमार यौवन। मैं ने मुसकरा कर अभिवादन किया तो युवक ने कुछ झिझक-भरी मुसकराहट में जवाब दिया और हम शीघ्र ही मित्र बन गये। युवक विवाहित था और एक बच्ची का पिता भी। पिछले कई वर्षों के आनंदपूर्ण गार्हस्थ्य-जीवन के अनेक रसमय चित्र शब्दों में खींचते नहीं थकता था वह। अगले रविवार को उस की पत्नी और बच्ची आने वाली थी। उसी दिन की प्रतीक्षातुर बातें वह करता रहता। न जाने मैं स्वयं उस के बारे में इतनी उत्सुकता क्यों जतलाने लगा था!

रविवार को मैं देर से जगा। नींद टूटी तो सुना, वह युवक कह रहा था, "जरा भाई साहब उठ जायें तो तुम्हारा परिचय कराऊँ। यहाँ के बड़े डाक्टर के भाई हैं। इन्हीं के कारण मैं यहाँ जगह पा सका हूँ। और घर-जैसा वातावरण भी मिल गया है। अब तुम्हें तनिक भी चिंता नहीं करना चाहिये!"

मैं अधिक देर लेटा नहीं रह सका। करवट ले कर उठ बैठा। कुछ क्षण तो लगा शायद आँखें ही विक्षिप्त हो उठी हैं, पर नहीं, चेतना बार-बार कह गयी—यही सत्य है। यही, जो मैं देख रहा हूँ।

"भाई साहब! यह मेरी पत्नी शर्मिला है, . . ." वह व्यक्ति कह रहा था।

आह! वही आँखें, वही मुख, वही नासिका और वही हंसनी-सी ग्रीवा, सब कुछ वही। दस वर्ष पूर्व की वही छलना. . .

और मैं वहाँ से पुनः भाग आया हूँ। कारण इस से अधिक कुछ नहीं कि मेरी भावुकता वहाँ से भगा लायी है मुझे। उस दिन साइकिल की दुकान से न भागता तब भी कुछ न बिगड़ता, सुधांशु के अस्पताल से न भागता तब भी कुछ न बिगड़ता। कुछ दिन शायद और भी जीता, परंतु . . . इस तरह मेरे दिन व्यतीत हो रहे हैं। पट-परिवर्तन और संगीत सभी कुछ चलता रहता है। एक सुंदर, सुशील पत्नी और एक स्वस्थ, सुंदर, हँसमुख बालिका का चित्र बार-बार यादों के रंगमंच पर उतरता है, बिछुड़ जाता है, फिर उतरता है, फिर बिछुड़ जाता है। स्मृतियों के मायामृग किसी छलावे से कम नहीं हैं! ●



शफी अकील

कहते हैं लुकमान से किसी ने पूछा था, "मालीखूलिया (उन्माद) की कितनी किस्में हैं ?"

जवाब में उस ने पहले अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरा, फिर मूंछों को ताव दिया और उस के बाद प्रश्नकर्ता से कहा, "निन्यानबे !"

अब यह तो मालूम नहीं कि यह कहने वाले कौन हैं और लुकमान से किस ने पूछा था ? फिर यह कि लुकमान की दाढ़ी-मूँछें भी थीं या नहीं,किंतु इतना अवश्य है कि अगर लुकमान इस युग में होता और उस के सामने भारत और पाकिस्तान की क्रिकेट-टीमों के बीच टेस्ट-मैच हो रहा होता तो वह निश्चय ही मालीखूलिया की निन्यानबे की संख्या में एक और की वृद्धि कर के पूरी सौ कर देता ... और यह सौवाँ नम्बर होता 'क्रिकेट-खूलिया' का—'क्रिकेट-खूलिया', (क्रिकेट-उन्माद) जिस में आजकल देश का बच्चा-बच्चा फँसा है। बच्चे तो एक ओर, घरों में बड़ी-बूढ़ियाँ तक इसी की मरीज दिखायी देती हैं। आलम यह है कि स्कूल में मास्टर लड़कों से पाठ बाद में सुनता है, पहले पूछता है, "स्कोर कितना है ?"

पति घर में कदम रखता ही है कि पत्नी की आवाज आती है, "मैं ने कहा, रास्ते से कहीं स्कोर ही पता कर लिया होता !"

हद तो यह है कि बस में सवार हो जाओ तो कंडक्टर टिकट बाद में देता है, पहले पूछता है, "बाबू जी ! कितने

लौट गयी याद

आ-आ कर लौट गयी याद
कई बार
इतना तो था न कभी
प्यार समझदार
फाइल के पन्नों में
बंदी कर दिल-दिमाग
जब घर पर आये
देखी मनहूस शक्ल दर्पण में
केवल मुसकाये
कोशिश कर सोये तो
दिखे कई सपने बीमार
आ-आ कर लौट गयी याद
कई बार
अरसे से
प्राणों के गमले में
खिले नहीं हैं गुलाब
जैसे कालिज के जमाने में
पढ़ी हुई
भूल गये हों किताब
निर्मम हो जाती है कोमलता
समयानुसार
आ-आ कर लौट गयी याद
कई बार
इतना तो था न कभी
प्यार समझदार

—शेरजंग गर्ग—

आउट हो गये? कौन खेल रहा है?"

संयोग से कहीं जल्दी जाना होता है और रिक्शावाले से कहा जाता है, "भई जरा जल्दी चलाओ," तो जवाब में वह रिक्शा की रफ्तार तेज करने के बजाय अपनी रफ्तार तेज कर के पूछता है, "स्कोर कितना कर आये हैं? कौन खेल रहा था? बालिंग कौन कर रहा है?"

और यह बात इस अंदाज से पूछी जाती है जैसे हम अभी-अभी मैच देख कर ही तो आ रहे थे और स्कोर करना मानो हमारे बस की बात है।

इस सिलसिले में हमारा दुर्भाग्य यह है कि हमें क्रिकेट से कतई दिलचस्पी नहीं। दूसरे शब्दों में इस बात को यों कह लीजिये कि हमें "क्रिकेट-खूलिया' का रोग नहीं है, लेकिन यह 'क्रिकेट-खूलिया' न होना भी अपनी जगह कई बार खासा हानिकर सिद्ध होता है, विशेषतया उस समय जब कि कोई आदमी आप से क्रिकेट के विषय में बात करने पर तुला हुआ हो और आप उस से बचना चाहें। हमारे साथ भी कुछ इस किस्म की घटना पेश आयी। हुआ यह कि हम चुपचाप बैठे काम कर रहे थे कि इतने में एक छोटा-सा बच्चा आया। हम ने प्रश्नवाचक दृष्टि से उस की ओर देखा तो वह तनिक मिनमिना कर बोला, "हमें दीदी ने भेजा है।"

"दीदी ने भेजा है?"

हमारी ऊपर की साँस ऊपर और नीचे की नीचे रह गयी। उस की दीदी ने उसे क्यों भेजा है? भला दीदी को हम से क्या काम? फिर खयाल आया, शायद किसी और के धोखे में हमारे पास चला आया है। अत: पूछा, "तुम्हारी दीदी ने तुम्हें किस के पास भेजा है?"

जवाब में उस ने उसी अंदाज में मिनमिना कर कहा, "आप के पास ?"

"हमारे पास . . . दीदी ने भेजा है ?"

अब तो हमारे हाथ-पाँव फूलने लगे। और इस के साथ ही वह सभी पढ़ी हुई कहानियाँ और उपन्यास मस्तिष्क में घूमने लगे जिन में नायिका अपने प्रेम-पत्र किसी बच्चे के हाथ नायक तक पहुँचाती है। यकीन कीजिये, उस समय हमें उस बच्चे पर बहुत प्यार आ रहा था। अगर एक ओर हमारे हाथ-पाँव फूल रहे थे तो दूसरी ओर दिल बल्लियों उछल रहा था। हम खुश थे कि खुदा ने हमारी भी सुन ली। हम ने बड़े गौर से लड़के के हाथों की ओर देखा, पर उस के हाथ खाली थे और कोई पत्र या परचा दिखायी नहीं दे रहा था। हम ने सोचा, शायद जेब में हो। इसलिए बड़े प्यार से और नरमी से उसे पास बुलाया और पूछा, "क्या कहा है दीदी ने ?"

खयाल था कि उस के जवाब में वह झट पत्र निकाल कर हाथ में दे देगा, लेकिन उस समय हमारी हालत वाकई देखने योग्य थी जब उस ने उसी प्रकार मिनमिनाते हुए कहा, "उन्होंने स्कोर पूछा है। बता दीजिये !"

यह सुन कर खून के घूंट पी कर रह गये। संयोगवश इस से कुछ क्षण पूर्व ही एक महाशय हमें स्कोर बता कर गये थे। हम ने उसे वही स्कोर बता दिया और पुनः काम में लग गये, मगर वह जो कहते हैं न कि मुसीबत कभी अकेले नहीं आती, वह लड़का भी कुछ मिनट बाद फिर आ मौजूद हुआ। हम ने अब जरा कठोरता से पूछा, "क्या बात है।"

जवाब में बोला, "दीदी ने भेजा है ?"

"हाँ, हाँ . . . मालूम है दीदी ने भेजा



है . . . क्या बात है ?" हम ने कुछ बोर होते हुए पूछा तो वह बोला, "पूछा है इस समय हनीफ खेल रहा है न ?"

जी तो चाहा कि दीदी के साथ-साथ दो-चार हनीफ को भी खरी-खोटी सुना दूँ, मगर कुछ सोच कर चुप रह गया और जल कर यों ही कह दिया, "हनीफ आउट हो गया है। अब भाग जाओ तुम यहाँ से !"

वह लड़का इतना सुनने के बाद चला गया और हम ने संतोष की साँस ली, लेकिन साहब दीदी भी 'क्रिकेट-खूलिया' की मरीज थीं। आसानी से कैसे मान जातीं। अभी कुछ ही मिनट बीते होंगे कि वह लड़का फिर मौजूद था। अब तो ताव आया हमें।

"अब क्या पूछा है दीदी ने ?" हम ने क्रोध को संयत करते हुए उस लड़के की ओर देखा।

"पूछा है . . . हनीफ कितने रन बना कर आउट हुआ है ?"

और लीजिये . . . हम ने तो मुसीबत से जान छुड़वाने के लिए हनीफ को आउट किया था और मुसीबत थी कि दीदी के रूप में अभी तक मौजूद थी। जी में आ रहा था कि कुरसी उठा कर उस लड़के के सिर पर दे मारें ताकि यह फिर न आ सके। मगर बाद में खयाल आया

कि हम जालिम नहीं हैं। लिहाजा उसे डाँट कर भगा दिया और स्वयं भी दफ्तर भाग गये।

खैर हमारे साथ जो हुआ सो हुआ, मगर एक होटलवाले ने तो हद ही कर दी। हम एक दोस्त के साथ उस होटल में बैठे चाय पी रहे थे और रेडियो था कि पूरी रफ्तार और आवाज से दहाड़े चला जा रहा था। इतने में होटल के मालिक ने पुकार कर एक नौकर से पूछा, "अरे देसाई आउट हुआ या नहीं ?"

देसाई चूँकि अभी आउट नहीं हुआ था, इसलिए नौकर ने जवाब दिया, "नहीं ... अभी खेल रहा है।"

बस उस का इतना कहना था कि होटल के मालिक ने दहाड़ कर कहा, "अबे! अगर आउट नहीं हुआ तो रेडियो बंद क्यों नहीं कर देता ?"

मानो उस के खयाल में अगर रेडियो बंद कर दिया जाता तो देसाई फौरन आउट हो जाता।

दिलचस्प चीज यह है कि एक वर्ग ऐसा है जो 'क्रिकेटखूलिया' के मरीजों की सेवा करने पर तुला हुआ है। ये लोग अपने रेडियो घरों में से निकाल कर बाहर रख देते हैं ताकि 'भगवान की जनता' उस से पूरा-पूरा फायदा उठा कर 'पारलौकिक पुण्य' प्राप्त कर सके। कुछ 'जनसेवक' ऐसे नजर आयेंगे जिन्होंने अपने-अपने घरों और दुकानों के बाहर बड़े-बड़े ब्लैक-बोर्ड लगा रखे हैं और वे स्वयं चाक ले कर उस पर स्कोर लिखते रहते हैं। यह सब कुछ इसलिए किया जाता है ताकि अमीर और गरीब में कोई फर्क न रह जाये। इस सिलसिले में हम ने सब से दिलचस्प दृश्य कराची की एक 'बूर्जुवा बस्ती' में देखा। वहाँ जनता के एक 'सेवक' ने अपने घर के बाहर एक बड़ा-सा ब्लैक-बोर्ड लगा रखा है और दो अल्पवयस्क लड़कियाँ चाक से बोर्ड पर स्कोर लिखती रहती हैं। यह 'प्रगतिशील सेवा' लोगों को इस कदर पसंद आयी है कि जब देखो वहाँ लोग जमा दिखायी देते हैं।

हमारे यहाँ इन दिनों 'क्रिकेट-खूलिया' जिस रफ्तार से फैल रहा है, उसे देखते हुए यह बात आसानी से कही जा सकती है कि वह दिन दूर नहीं जब देश में हर तरफ क्रिकेट होगी और हम होंगे। लोग दफ्तरों में काम के बजाय क्रिकेट खेला करेंगे। स्कूलों और कालिजों में पढ़ाई के बजाय क्रिकेट होगी और औरतें घरों में झाड़ू, बरतन साफ करने के बजाय स्कोर किया करेंगी। हर जगह और हर तरफ 'ब्राबोर्न' (स्टेडियम) और ओवल (इंगलैंड में क्रिकेट खेलने की पिच) का समाँ होगा और जिधर देखिये विकेट उड़ते-उखड़ते नजर आयेंगे। उस समय अगर लुकमान कब्र से उठ कर आ गया और उस ने 'माली-खूलिया' की निन्यानबे किस्मों में एक 'क्रिकेट-खूलिया' की वृद्धि भी कर दी तो भी उस की कोई नहीं सुनेगा, अलबत्ता यह हो सकता है कि वह स्वयं 'रन-आउट' हो जाये।

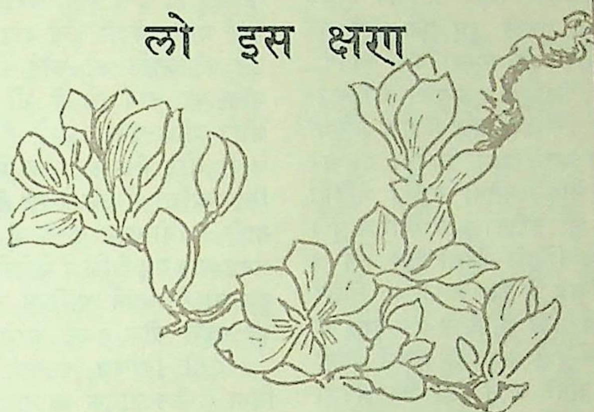
—अनु० सुरजीत

●

पत्नी : क्यों जी, इस बार हम अपनी शादी की सालगिरह कैसे मनायें ?

पति : मेरा खयाल है, एक मिनट चुप रह लेंगे।

लो इस क्षण



लो इस क्षण रीत गयी अनरीती प्यास

अँधियारी माटी में फूल खिले श्वेत बरन
जुगनू-से उड़ते हैं जीवन के बीते क्षण
मदिरा-सा तरल हुआ मेरा इतिहास
मन का हलकापन है तैरती कपास
लो इस क्षण रीत गयी अनरीती प्यास

एक उमर जल पर जलयानों में बीत गयी
लहरों से हारी तूफानों से जीत गयी
बीत गया मेरा बिन-माँगा बनवास
वंशी में डूब गये पवन उनंचास
लो इस क्षण रीत गयी अनरीती प्यास

पतझर में बंदी हैं रंग-भवन के सपने
आतप से तप-तप कर मेघ लगे हैं झरने
अंत समय जीत गया मेरा विश्वास
वृंदावन कुंज-गली रचा गया रास
लो इस क्षण रीत गयी अनरीती प्यास

— मोहन सिंहल —

कि हम जालिम नहीं हैं। लिहाजा उसे डाँट कर भगा दिया और स्वयं भी दफ्तर भाग गये।

खैर हमारे साथ जो हुआ सो हुआ, मगर एक होटलवाले ने तो हद ही कर दी। हम एक दोस्त के साथ उस होटल में बैठे चाय पी रहे थे और रेडियो था कि पूरी रफ्तार और आवाज से दहाड़े चला जा रहा था। इतने में होटल के मालिक ने पुकार कर एक नौकर से पूछा, "अरे देसाई आउट हुआ या नहीं?"

देसाई चूँकि अभी आउट नहीं हुआ था, इसलिए नौकर ने जवाब दिया, "नहीं ... अभी खेल रहा है।"

बस उस का इतना कहना था कि होटल के मालिक ने दहाड़ कर कहा, "अबे! अगर आउट नहीं हुआ तो रेडियो बंद क्यों नहीं कर देता?"

मानो उस के खयाल में अगर रेडियो बंद कर दिया जाता तो देसाई फौरन आउट हो जाता।

दिलचस्प चीज यह है कि एक वर्ग ऐसा है जो 'क्रिकेटखूलिया' के मरीजों की सेवा करने पर तुला हुआ है। ये लोग अपने रेडियो घरों में से निकाल कर बाहर रख देते हैं ताकि 'भगवान की जनता' उस से पूरा-पूरा फायदा उठा कर 'पारलौकिक पुण्य' प्राप्त कर सके। कुछ 'जनसेवक' ऐसे नजर आयेंगे जिन्होंने अपने-अपने घरों और दुकानों के बाहर बड़े-बड़े ब्लैक-बोर्ड लगा रखे हैं और वे स्वयं चाक ले कर उस पर स्कोर लिखते रहते हैं। यह सब कुछ इसलिए किया जाता है ताकि अमीर और गरीब में कोई फर्क न रह जाये। इस सिलसिले में हम ने सब से दिलचस्प दृश्य कराची की एक 'बूर्जुवा बस्ती' में देखा। वहाँ जनता के एक 'सेवक' ने अपने घर के बाहर एक बड़ा-सा ब्लैक-वोर्ड लगा रखा है और दो अल्पवयस्क लड़कियाँ चाक से बोर्ड पर स्कोर लिखती रहती हैं। यह 'प्रगतिशील सेवा' लोगों को इस कदर पसंद आयी है कि जब देखो वहाँ लोग जमा दिखायी देते हैं।

हमारे यहाँ इन दिनों 'क्रिकेट-खूलिया' जिस रफ्तार से फैल रहा है, उसे देखते हुए यह बात आसानी से कही जा सकती है कि वह दिन दूर नहीं जब देश में हर तरफ क्रिकेट होगी और हम होंगे। लोग दफ्तरों में काम के बजाय क्रिकेट खेला करेंगे। स्कूलों और कालिजों में पढ़ाई के बजाय क्रिकेट होगी और औरतें घरों में झाड़ू, बरतन साफ करने के बजाय स्कोर किया करेंगी। हर जगह और हर तरफ 'ब्राबोर्न' (स्टेडियम) और ओवल (इंगलैंड में क्रिकेट खेलने की पिच) का समाँ होगा और जिधर देखिये विकेट उड़ते-उखड़ते नजर आयेंगे। उस समय अगर लुकमान कब्र से उठ कर आ गया और उस ने 'माली-खूलिया' की निन्यानबे किस्मों में एक 'क्रिकेट-खूलिया' की वृद्धि भी कर दी तो भी उस की कोई नहीं सुनेगा, अलबत्ता यह हो सकता है कि वह स्वयं 'रन-आउट' हो जाये।

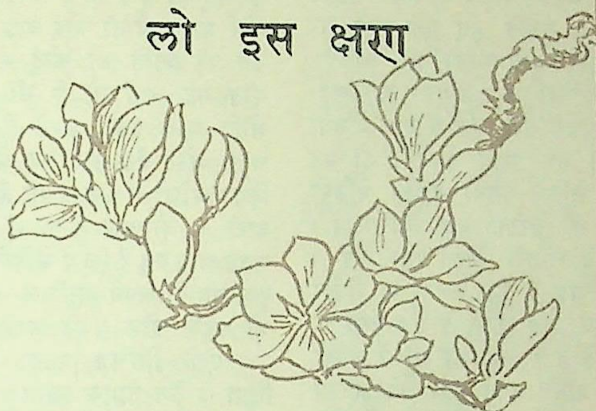
—अनु० सुरजीत

●

पत्नी : क्यों जी, इस बार हम अपनी शादी की सालगिरह कैसे मनायें?

पति : मेरा खयाल है, एक मिनट चुप रह लेंगे।

लो इस क्षण



लो इस क्षण रीत गयी अनरीती प्यास

अँधियारी माटी में फूल खिले श्वेत बरन
जुगनू-से उड़ते हैं जीवन के बीते क्षण
मदिरा-सा तरल हुआ मेरा इतिहास
मन का हलकापन है तैरती कपास
लो इस क्षण रीत गयी अनरीती प्यास

एक उमर जल पर जलयानों में बीत गयी
लहरों से हारी तूफानों से जीत गयी
बीत गया मेरा बिन-माँगा बनवास
वंशी में डूब गये पवन उनंचास
लो इस क्षण रीत गयी अनरीती प्यास

पतझर में बंदी हैं रंग-भवन के सपने
आतप से तप-तप कर मेघ लगे हैं झरने
अंत समय जीत गया मेरा विश्वास
वृंदावन कुंज-गली रचा गया रास
लो इस क्षण रीत गयी अनरीती प्यास

— मोहन सिंहल —

कि हम जालिम नहीं हैं। लिहाजा उसे डाँट कर भगा दिया और स्वयं भी दफ्तर भाग गये।

खैर हमारे साथ जो हुआ सो हुआ, मगर एक होटलवाले ने तो हद ही कर दी। हम एक दोस्त के साथ उस होटल में बैठे चाय पी रहे थे और रेडियो था कि पूरी रफ्तार और आवाज से दहाड़े चला जा रहा था। इतने में होटल के मालिक ने पुकार कर एक नौकर से पूछा, "अरे देसाई आउट हुआ या नहीं ?"

देसाई चूँकि अभी आउट नहीं हुआ था, इसलिए नौकर ने जवाब दिया, "नहीं ...अभी खेल रहा है।"

बस उस का इतना कहना था कि होटल के मालिक ने दहाड़ कर कहा, "अबे ! अगर आउट नहीं हुआ तो रेडियो बंद क्यों नहीं कर देता ?"

मानो उस के खयाल में अगर रेडियो बंद कर दिया जाता तो देसाई फौरन आउट हो जाता।

दिलचस्प चीज यह है कि एक वर्ग ऐसा है जो 'क्रिकेटखूलिया' के मरीजों की सेवा करने पर तुला हुआ है। ये लोग अपने रेडियो घरों में से निकाल कर बाहर रख देते हैं ताकि 'भगवान की जनता' उस से पूरा-पूरा फायदा उठा कर 'पारलौकिक पुण्य' प्राप्त कर सके। कुछ 'जनसेवक' ऐसे नजर आयेंगे जिन्होंने अपने-अपने घरों और दुकानों के बाहर बड़े-बड़े ब्लैक-बोर्ड लगा रखे हैं और वे स्वयं चाक ले कर उस पर स्कोर लिखते रहते हैं। यह सब कुछ इसलिए किया जाता है ताकि अमीर और गरीब में कोई फर्क न रह जाये। इस सिलसिले में हम ने सब से दिलचस्प दृश्य कराची की एक 'बूर्जुवा बस्ती' में देखा। वहाँ जनता के एक 'सेवक' ने अपने घर के बाहर एक बड़ा-सा ब्लैक-बोर्ड लगा रखा है और दो अल्पवयस्क लड़कियाँ चाक से बोर्ड पर स्कोर लिखती रहती हैं। यह 'प्रगतिशील सेवा' लोगों को इस कदर पसंद आयी है कि जब देखो वहाँ लोग जमा दिखायी देते हैं।

हमारे यहाँ इन दिनों 'क्रिकेट-खूलिया' जिस रफ्तार से फैल रहा है, उसे देखते हुए यह बात आसानी से कही जा सकती है कि वह दिन दूर नहीं जब देश में हर तरफ क्रिकेट होगी और हम होंगे। लोग दफ्तरों में काम के बजाय क्रिकेट खेला करेंगे। स्कूलों और कालिजों में पढ़ाई के बजाय क्रिकेट होगी और औरतें घरों में झाड़ू, बरतन साफ करने के बजाय स्कोर किया करेंगी। हर जगह और हर तरफ 'ब्राबोर्न' (स्टेडियम) और ओवल (इंगलैंड में क्रिकेट खेलने की पिच) का समाँ होगा और जिधर देखिये विकेट उड़ते-उखड़ते नजर आयेंगे। उस समय अगर लुकमान कब्र से उठ कर आ गया और उस ने 'माली-खूलिया' की निन्यानबे किस्मों में एक 'क्रिकेट-खूलिया' की वृद्धि भी कर दी तो भी उस की कोई नहीं सुनेगा, अलबत्ता यह हो सकता है कि वह स्वयं 'रन-आउट' हो जाये।

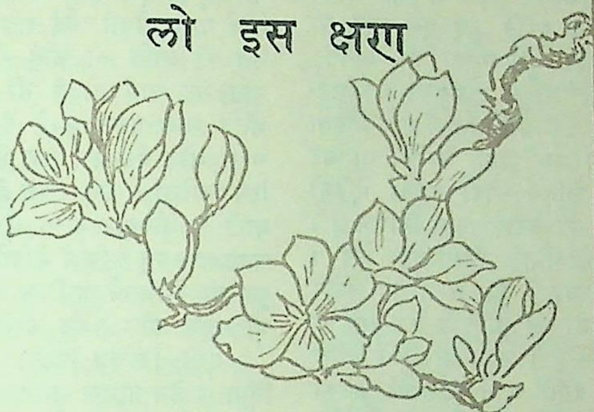
—अनु० सुरजीत

●

पत्नी : क्यों जी, इस बार हम अपनी शादी की सालगिरह कैसे मनायें ?

पति : मेरा खयाल है, एक मिनट चुप रह लेंगे।

लो इस क्षण



लो इस क्षण रीत गयी अनरीती प्यास

अँधियारी माटी में फूल खिले श्वेत बरन
जुगनू-से उड़ते हैं जीवन के बीते क्षण
मदिरा-सा तरल हुआ मेरा इतिहास
मन का हलकापन है तैरती कपास
लो इस क्षण रीत गयी अनरीती प्यास

एक उमर जल पर जलयानों में बीत गयी
लहरों से हारी तूफानों से जीत गयी
बीत गया मेरा बिन-माँगा बनवास
वंशी में डूब गये पवन उनंचास
लो इस क्षण रीत गयी अनरीती प्यास

पतझर में बंदी हैं रंग-भवन के सपने
आतप से तप-तप कर मेघ लगे हैं झरने
अंत समय जीत गया मेरा विश्वास
वृंदावन कुंज-गली रचा गया रास
लो इस क्षण रीत गयी अनरीती प्यास

— मोहन सिहल —

पाल रेनाल्ड

कल्पना कीजिये, दो भयंकर भेड़िये किस प्रकार लड़ेंगे ! आप सोचते होंगे कि वे गुर्राते हुए एक-दूसरे पर झपटेंगे और गुत्थमगुत्था हो जायेंगे; मुँह और पंजों से एक-दूसरे को लहू-लुहान कर देंगे और अंत में एक भेड़िया परास्त हो कर भाग जायेगा या मर जायेगा । लेकिन लोबो नामक भेड़ियों की लड़ाई का तरीका बड़ा विचित्र है । सुनेंगे तो दाँतों-तले अँगुली दबा लेंगे ।

होता यह है कि लड़ने को तैयार दोनों भेड़िये बड़ी शांति से एक-दूसरे के सामने आते हैं । शत्रु को आँखों में ही तोल कर दोनों अपने सिर को झटका देते हैं और सारा खाया-पिया उलट देते हैं । अब दोनों के पेट खाली हैं और युद्ध शुरू होने वाला है । दोनों आगे बढ़ते हैं। एक-दूसरे के पास सट कर खड़े हो जाते हैं । दोनों के मुँह खुलते हैं और एक-दूसरे के शरीर से माँस के बड़े-बड़े ग्रास ले कर खाने लगते हैं । सहनशीलता

यदि मनुष्य भेड़िया बन सकता है तो भेड़िया भी कतिपय मनुष्योचित गुण क्यों नहीं ग्रहण कर सकता ! प्रस्तुत हैं लोबो जाति के अमरीकी खूंख्वार भेड़िये के बारे में कुछ रोचक बातें

देखिये कि दोनों का शरीर खाया जा रहा है, लेकिन दोनों शांत खड़े हैं——अवि-चल, निर्भीक । जान की बाजी लगी हुई है । विजेता वह होगा जो शत्रु को पहले खा जायेगा !

कितना अद्‌भुत और रोमांचकारी है यह शांतिपूर्ण युद्ध ! किन्तु इस से यह मत समझ लीजिये कि लोबो एक-दूसरे के शत्रु ही होते हैं । पारस्परिक युद्ध में कोई मर जाये तो कोई बात नहीं, लेकिन उन की जाति का कोई भेड़िया अपनी मौत मर जाये तो ये भी मनुष्यों की भाँति शोक प्रकट करते हैं । मृतक के चारों ओर बैठ कर सब भेड़िये उदास, स्थिर आँखों से उसे देखते हैं और बारी-बारी से चीत्कार करते हैं । आश्चर्य-जनक बात यह है कि ये भेड़िये अगर पालतू हुए तो ये अपने मालिक की मृत्यु पर भी गहरा शोक प्रकट करते हैं ।

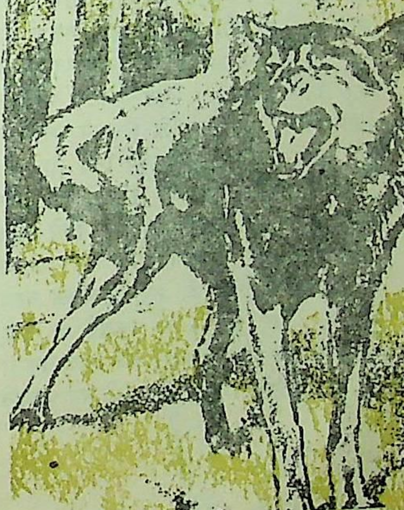
ऐसी विचित्र घटना पेनसिलवा-निया के केन नामक स्थान पर हुई थी । डाक्टर मैकक्लियरी ने लोबो जाति के कई भेड़िये पाल रखे थे । डाक्टर मैक-क्लियरी की मृत्यु उन के निवास-स्थान से छह-सात मील दूर एक अस्पताल में हुई थी । तीसरे पहर उन की मृत्यु हुई और उसी समय से भेड़ियों ने चीत्कार करना शुरू कर दिया । न जाने उन्हें कैसे पता चल गया कि उन के स्वामी की मृत्यु हो चुकी है । तीसरे पहर से सारी शाम और सारी रात तक वे उसी तरह विलाप करते रहे ।

'लोबो' वास्तव में भेड़ियों की कोई भिन्न जाति नहीं है । 'लोबो' स्पेनी भाषा का शब्द है, जिस का अर्थ भेड़िया होता है । किंतु दक्षिण-पश्चिमी अमरीका में यह शब्द भूरे रंग के भेड़ियों के लिए प्रचलित हो गया । इस प्रकार के भेड़ियों को 'बफैलो वुल्फ' भी कहा जाता है । कुछ लोग 'टिम्बर वुल्फ' किस्म के भेड़ियों को ही लोबो समझते हैं, लेकिन ये 'टिम्बर वुल्फ' से भिन्न होते हैं । 'टिम्बर वुल्फ'

का वजन कुल सत्तर-अस्सी पौंड होता है, जब कि लोबो उस से लगभग दुगुना भारी होता है। कुछ लोबो तो १७५ और १८० पौंड तक के होते हैं। ये भेड़िये एक बार में २० फुट तक उछल जाते हैं। 'टिम्बर वुल्फ' इन से भयभीत रहते हैं। यदि उन के इलाके में कोई लोबो पहुँच जाये तो वे भाग खड़े होते हैं।

लोबो कितना खूँख्वार होता है, यह बात इसी से विदित होती है कि १९१५ में अमरीकी सरकार को इन का उत्पात रोकने के लिए अनेक प्रयत्न करने पड़े थे और इन्हें मारने के लिए शिकारियों को इनाम देने की घोषणाएँ की गयी थीं। उन दिनों पश्चिमी पशु-पालन-क्षेत्रों में इन भेड़ियों ने तबाही मचा रखी थी। नर और मादा लोबो साथ होते और कोई पशु सामने आ जाता तो मादा लोबो सामने से उस पर आक्रमण करती और पशु की आँखें और नथुने फाड़ डालती। नर लोबो उसी समय पीछे की ओर से उस अभागे पशु पर टूट पड़ता और वह बेचारा थोड़ी ही देर में जान से हाथ धो बैठता। यदि कोई भेड़िया अकेला होता तो वह सीधा उस पशु की गरदन पर झपट पड़ता।

कुछ भेड़िये तो बहुत कुख्यात हो गये थे। 'जैक द रिपर' नामक भेड़िये ने एक ही रात में ६४ भेड़ें मार डाली थीं। 'कोलोरेडो का कसाई' नामक भेड़िया ९०, ००० डालर की कीमत के पशुओं को मार चुका था। प्रति वर्ष इन भेड़ियों के उत्पात बढ़ते गये और १९२३ में तो तीन पैरों वाली एक मादा लोबो ने वर्ष भर में ही १२, ००० डालर की कीमत के पशुओं का सफाया कर दिया। यह मादा लोबो एक बार फंदे में फँस गयी



थी, लेकिन बच निकली । उसी समय उस की एक टाँग टूट गयी थी । अधिकांश लोबो खाने के लिए ही पशुओं को मारते थे, लेकिन कुछ भेड़िये केवल मनोरंजन के लिए या बदले की भावना से भी पशुओं को मार डालते थे । यदि कोई पशुपालक किसी भेड़िये को मार देता तो उस का साथी आ कर उस पशुपालक के पशुओं को अपने साथी की मृत्यु का बदला लेने के लिए चीर-फाड़ डालता । यह बदले की ही भावना तो थी कि वह अनेक पशुओं को मारने के बावजूद उन के मांस का एक ग्रास भी नहीं खाता था !

इस प्रकार इन भेड़ियों ने चारों ओर एक अजीब आतंक फैला रखा था। लोग परेशान थे। पशुपालकों को निरंतर हानि हो रही थी। सरकार भी चिंतित थी। परिणाम यह हुआ कि जिस प्रकार कुख्यात डाकुओं या हत्यारों को पकड़ने या मारने के लिए बड़े-बड़े पुरस्कारों की घोषणा की जाती है, उसी प्रकार इन खूंख्वार भेड़ियों को मारने के लिए भी पुरस्कार घोषित किये गये। सब से खूंख्वार भेड़िये को मारने के लिए १०,००० डालर का इनाम रखा गया था। लगभग ४०० पेशेवर शिकारियों को सरकार ने भेड़ियों को समाप्त करने का काम सौंपा। जिस प्रकार भयंकर अपराधियों के पैरों के निशान प्लास्टर पर उभार कर जासूसों को दिये जाते हैं, उसी तरह विनाशकारी भेड़ियों की सूची और पदचिह्न शिकारियों को दिये गये।

मुकाबला आसान नहीं था। लोबो भयंकर और हिंस्र ही नहीं, सूझबूझ वाले भी थे। उन्हें मारने या पकड़ने के लिए उसी साहस और चतुराई की आवश्यकता थी, जो किसी भयंकर अपराधी को पकड़ने के लिए जासूस में होनी चाहिये। इन भेड़ियों को मारने के लिए जाने वाले शिकारी अपने साथ बड़े-बड़े शिकारी कुत्ते, बंदूकें और फंदे ले जाते थे, जिन में इन चालाक भेड़ियों को फँसाया जा सके। इस के अतिरिक्त ये शिकारी अपने साथ जहर मिला मांस भी रखते थे कि कोई लोबो आये और उस विषाक्त मांस को खा कर मर जाये !

कुत्तों के लिए इन भेड़ियों का पीछा करना बड़ा खतरनाक सिद्ध होता था। लोबो पीछा करते कुत्तों को चकमा देने में बड़ा कुशल होता है । मान लीजिये शिकारियों ने जंगल में एक लोबो देखा और अपने कुत्ते उस के पीछे छोड़ दिये । लोबो, यह जानते हुए भी कि वह कुत्तों को कुछ नहीं समझता, भाग खड़ा होता है। आगे-आगे लोबो और पीछे-पीछे शिकारी कुत्ते। दोनों पूरी ताकत और तेजी से भागे जा रहे हैं कि लोबो एकदम पलटता है और कुत्तों को चीर-फाड़ डालता है।

एक बार टेडी रूजवेल्ट नामक एक व्यक्ति के कई पशुओं को इन लोबो भेड़ियों ने मार डाला। वह नौ खूंख्वार शिकारी कुत्ते खरीद लाया। एक दिन उसे एक बड़ा लोबो दिखायी दिया तो उस ने अपने कुत्ते छोड़ दिये। कुत्ते सारे दिन लोबो का पीछा करते रहे, पर उसे पकड़ नहीं पाये। लोबो ने पीछे मुड़ कर नहीं देखा। बस भागता ही रहा और कुत्ते उस के पीछे पड़े रहे। जब शाम हो गयी तो रूजवेल्ट ने शिकारी कुत्तों को वापस बुलाया। उस ने रात काटने के लिए जंगल में ही कैंप बनाया । रात को वही लोबो अँधेरे में छिपता हुआ आया और नौ के नौ कुत्तों का सफाया कर गया !

कुत्तों के द्वारा पीछा किया जाने पर

लोबो शक्ति और साहस से ही नहीं, अपनी बुद्धि से भी काम लेते हैं। अगर कुत्ते नर और मादा लोबो के एक जोड़े के पीछे पड़े हुए हैं तो वे दोनों इस तरह कन्नी काटते हैं कि कभी नर की जगह मादा दिखायी देती है और कभी मादा की जगह नर। कुत्ते इस चालाकी को समझ नहीं पाते और भ्रमित हो जाते हैं।

कुत्ते उन की गंध के सहारे ही पीछा करते हैं, यह बात लोबो जानता है, इसलिए उन से बचने का एक सफल उपाय यह होता है कि वह जंगल से गुजरती रेल की पटरियों पर थोड़ी दूर भागता है और फिर नीचे उतर कर जंगल में कहीं छिप जाता है। कुत्ते उस की गंध का पीछा करते हुए रेल की पटरियों तक आते हैं, लेकिन वहाँ उन्हें लोबो की गंध से भी तेज राल-बैरोजा की लकड़ी और जले हुए कोयलों की गंध मिलती है, जिस में लोबो के शरीर की गंध खो जाती है और कुत्ते हतबुद्धि-से, मुँह उठा कर हवा में कुछ सूंघते-से खड़े रह जाते हैं। एक भेड़िया तो कुत्तों के एक दल को भ्रमित करने के लिए ओक्लाहामा के आइनोला नगर की एक मुख्य सड़क पर चला आया। नागरिक भौचक्के हो कर उसे देखते रह गये!

लड़ाई बराबरी की नहीं थी। कुत्तों को जीतना तो कोई मुश्किल काम नहीं था, लेकिन बंदूक की गोलियों से कोई कैसे बचे! और बंदूकें उन के हाथों में थीं जो लोबो-वंश को ही समाप्त करने पर तुले थे।

परिणाम यह हुआ कि १९२० के आसपास इन भेड़ियों का वंश समाप्त-प्राय हो चला। यह सोच कर कि कहीं यह जाति समूल नष्ट न हो जाये केन निवासी डाक्टर मैकक्लियरी ने 'यू. एस. बायोलोजिकल सर्वे' को लिखा कि वे कुछ भेड़िये पालना चाहते हैं, अतः उन्हें कुछ लोबो-शिशु दे दिये जायें। १९२१ में उन्हें पहला भेड़िया मिला। उस के बाद बीस और आये, जिन में से एक मादा उस कुख्यात तीन टाँगोंवाली मादा लोबो की संतान थी जिस का खून आज भी केन निवासी जैक लिच के पालतू भेड़ियों की रगों में दौड़ रहा है।

डाक्टर मैकक्लियरी इन भेड़ियों के प्रति कैसे आकर्षित हुए, यह भी एक विचित्र घटना है। १८८७ की बात है। उन दिनों मैकक्लियरी प्रिंसटन में पढ़ने वाले १९ वर्षीय विद्यार्थी थे। गरमी के दिनों में वे यूकोन के जंगली इलाके में



ग्रिजली भालुओं का शिकार करने गये थे। भालू तो उन्हें एक भी नहीं मिला, किंतु एक रात जब वे शिविराग्नि के पास बैठे थे, अँधेरे से निकल कर एक लोबो बाहर आया और आग की रोशनी में उन के सामने बैठ गया। मैकक्लियरी चकित रह गये। उन्होंने मांस के कुछ टुकड़े उस की ओर फेंके। भेड़िया नम्रतापूर्वक उन टुकड़ों को खा कर चला गया। मैकक्लियरी की आँखों में भेड़िये का यह स्नेहपूर्ण चित्र हमेशा के लिए खिंच गया। कुछ दिन बाद मैकक्लियरी घर लौटे। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि वे फिर यूकोन आयेंगे, किंतु हर प्रतिज्ञा पूरी कहाँ हो पाती है! मैकक्लियरी फिलाडेलफिया के जेफर्सन मेडिकल कालिज में भरती हो गये और पढ़ाई समाप्त कर केन में रह कर डाक्टरी करने लगे। ३३ वर्ष बीत गये और डाक्टर मैकक्लियरी अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं कर पाये, किंतु वे इस दृश्य को कभी नहीं भूल सके कि रात के समय जंगल में वे आग के पास बैठे हैं और उन से कुछ हाथ दूर एक बड़ा भेड़िया बैठा हुआ है। शायद इसीलिए वे भेड़ियों के बारे में जानने को बहुत उत्सुक रहते थे और जब उन्होंने देखा कि लोबो भेड़ियों का वंश ही नष्ट हो रहा है तो उन्होंने भेड़िये पालने का विचार किया।

डाक्टर मैकक्लियरी को भेड़ियों से अपार स्नेह था, किंतु उन की पत्नी इन वन्य पशुओं से घृणा करती थीं। गृह-कलह आरम्भ हुआ। डाक्टर के सामने चुनाव का प्रश्न आया—पत्नी के साथ रहना है तो भेड़ियों को त्यागना होगा और भेड़ियों के साथ रहना है तो पत्नी को। और कुछ दिन बाद उन्होंने पत्नी से संबंध-विच्छेद कर लिया। ९४ वर्ष की आयु तक—यानी मृत्युपर्यन्त—वे भेड़ियों के बीच रहे, उन्हें प्यार-स्नेह देते रहे और उन से स्नेह पाते रहे।

आसन्न मृत्यु के दिनों में डाक्टर मैकक्लियरी ने जैक लिंच नामक एक उत्साही पशु-प्रेमी को अपने भेड़ियों के पालन-पोषण का भार सौंप दिया। जैक लिंच और उस की पत्नी दोनों जी-जान से इन अंतिम लोबो-वंश धरों की सेवा और सुरक्षा करते हैं। जैक लिंच बड़े गर्व से कहता है कि उसी के पास ये भूरे भेड़िये हैं, और इस नस्ल के भेड़िये अन्यत्र कहीं नहीं पाये जाते। इन्हें पालना आसान नहीं है। इन्हें खिलाने-पिलाने और स्वस्थ रखने में काफी खर्च होता है और यह खर्च निर्भर करता है उन दर्शकों पर जो लोबो-वंश की अंतिम संतान को देखने आते हैं। इस समय उस के पास तीन लोबो-शिशु हैं जिन्हें उस ने बड़े यत्न से पाला-पोसा है।

आरम्भ में जैक की अनुभवहीनता से बड़ी हानि हुई। होता यह था कि मादा लोबो बच्चे देती, किंतु उन्हें मार डालती। जैक ने इस का कारण जानने की चेष्टा की। कारण यह था कि प्रसूता लोबो को प्रसूतिकाल में भी दर्शक देखने आते रहते थे। इस से वह उत्तेजित हो जाती थी और बच्चों के लिए उस का दूध नहीं उतरता था। बच्चे भूखे रहते और दुर्बल होने लगते। उन की माँ का जातीय स्वाभिमान जाग उठता। शायद वह मन में सोचती—दुबले होने से तो इन का मर जाना अच्छा! और वह स्वयं उन्हें मार डालती।

यह देख कर जैक ने अगली बार प्रसव होने पर बच्चों को माँ के पास से

हटा लिया और अपने शयनकक्ष में उन का पालन-पोषण शुरू किया। जक की पत्नी उन्हें बच्चों की तरह दुलारती और ड्रापर से दूध पिलाती, लेकिन बच्चों की माँ को यह सब क्या मालूम! वह बच्चों के अभाव में क्षुब्ध हो उठी। बच्चे जब कुछ बड़े हो गये तो जैक और उस की पत्नी ने बच्चों को उस की माँ के पास छोड़ दिया। पूरे दो दिन तक वह मादा लोबो अपने बच्चों को मुँह में दबाये इधर-उधर घूमती रही, तब जा कर कहीं उस ने आधे मन से जैक और उस की पत्नी को क्षमा किया!

लोबो के विषय में एक आश्चर्यजनक बात यह है कि वह अकारण कभी किसी मनुष्य पर आक्रमण नहीं करता। जो व्यक्ति हमेशा उस के पास रहता हो, उस से कुछ छोटी-मोटी भूलें हो जाना स्वाभाविक है। इन छोटी भूलों पर लोबो नाराज जरूर होता है, लेकिन उस की नाराजगी दूर भी बड़ी जल्दी हो जाती है। एक दिन डाक्टर मैकक्लियरी पर एक लोबो किसी कारण से टूट पड़ा। डाक्टर ने बचाव के लिए उस की गरदन पर एक जोर का घूंसा जमाया। लोबो इस आकस्मिक व्यवहार से इतना चकित हुआ कि डाक्टर को देखता ही रह गया और डाक्टर वहाँ से खिसक आये। एक और लोबो इसी तरह किसी बात पर नाराज हुआ और उस ने डाक्टर को एक कोने में घेर लिया। डाक्टर को बच निकलने का कोई उपाय न सूझा तो वे चुपचाप खड़े हो गये और जमीन पर आड़ी-तिरछी रेखाएँ खींचने लगे। नाराज लोबो को यह देख कर बड़ा मजा आया और वह भूल गया कि वह नाराज था और उन पर झपटना चाहता था।

कुछ मामलों में लोबो सिद्धांतवादी भी होते हैं और रोमांटिक भी। विवाह के मामले में वे एक पति या एक पत्नी के सिद्धांत में विश्वास करते हैं। अपने साथी की मृत्यु के बाद वे शेष जीवन एकाकी रह कर ही बिता देते हैं, लेकिन इस तरह नहीं कि विरह-वेदना में घुल कर प्राण दे दें। उन्हें जीवन से प्रेम होता है। पारस्परिक प्रेम के अतिरिक्त वे मनुष्य से भी प्रेम करते हैं और प्रकृति से भी। चाँदनी रात में वे सब मिल कर बैठते हैं और समवेत स्वर में चिल्ला-चिल्ला कर अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हैं। भोजन में उन्हें गोमांस बहुत पसंद होता है। इस के अलावा बेर, अंगूर, खरबूजा, नाशपाती आदि भी बड़े चाव से खाते हैं।

डाक्टर मैकक्लियरी के जीवन-काल में ही इन भूरे भेड़ियों पर एक फिल्म बनी थी—'दि लीजेंड लोबो', जिस के निर्माता थे वाल्ट डिस्ने। इस फिल्म में डाक्टर मैकक्लियरी के लोबो भी थे, किंतु अधिकांश स्थानों पर 'टिम्बर वुल्फ' से काम चलाया गया था, जिसे साधना जरा आसान होता है। ●

एक युवक को उस की प्रेमिका ने लिखा : "प्रियतम, मैं यह पत्र तुम्हें यह समझाने के लिए लिख रही हूँ कि मैं ने पिछले पत्र में यों ही मजाक में यह लिख दिया था कि मेरा मतलब यह नहीं है कि मैं ने अपना फैसला न बदलने के फैसले पर फिर से विचार करने का फैसला कर लिया है, लेकिन इस बार मेरा मतलब यही है।"

गये दिन रही यादें

तुषारकांति घोष

स्कूल छोड़ कर जब मैं कालिज में भरती हुआ उस समय हम लोग अँगरेजी शिक्षा को, विशेषत: अँगरेजी वार्तालाप को, बड़े गर्व की बात समझते थे। किसी अँगरेज से बातें कर पाना तो बड़ी बहादुरी का काम समझा जाता था। इसी बात को ले कर हम एक-दूसरे के आगे अहंकार करते। यही कारण था कि किसी अँगरेज से बातचीत करने का सुयोग हम कभी नहीं छोड़ते थे। वह व्यक्ति कोई क्यों न हो—सिपाही, रेल का गार्ड, टिकट-कलेक्टर आदि। किसी अँगरेज से बातें करने का सब से आसान तरीका था उस से यह पूछ लेना कि उस की घड़ी में क्या बजा है। उस ने यदि बता दिया तब तो ठीक, पर मुश्किल तब आती जब वह और कुछ कह देता, जैसे—मैं ने अपनी घड़ी मरम्मत के लिए दे दी है अथवा मेरी घड़ी ठीक नहीं चल रही है। सब बातें हम लोग बिलकुल नहीं समझ पाते थे, कारण, उन के और हमारे उच्चारणों में कोई मेल नहीं था। हम लोग कोई बात अँगरेजी में कहते तो 'गोरा' लोग प्राय: बोलते—'बेग योर पार्डन', अर्थात फिर से कहिये। ऐसे मौकों पर हम सोचते कि अजीब हैं ये ! अपनी भाषा भी नहीं समझते। असल बात यह थी कि हमारे शिक्षक हमें व्याकरण और शुद्ध अँगरेजी अवश्य सिखाते थे, पर वे स्वयं ही अँगरेजी भाषा का ठीक उच्चारण नहीं जानते थे। यही कारण था कि हम शुद्ध अँगरेजी लिख तो लेते, मगर ठीक बोल नहीं पाते थे।

प्राय: ऐसा होता कि अपने अँगरेजी-ज्ञान का प्रदर्शन करने में हमें झेंपना पड़ता। एक घटना याद आती है। उस समय इंटर में भरती हुआ ही था। एक अँगरेज हास्य-अभिनेता कलकत्ता आया और, जहाँ तक मुझे याद है, उस ने पिक्चर-हाउस में अभिनय आरम्भ किया—उस का नाम ही 'पिक्चर-हाउस' था। एक दिन उस ने पत्रिका-कार्यालय में एक प्रथम श्रेणी का पास भेजा। और बार जब कोई पास आता तो उस पर कब्जा करने की घर में बच्चों को बड़ी जल्दी रहती, पर इस पास पर किसी का वैसा लालच न रहा। यह कोई नाटक-सिनेमा तो था नहीं जो सब देखने जाते—यह था एक व्यक्ति का अभिनय। इसे सुनना और समझना पड़ता। मैं बोला, "पास मुझे दो, मैं जाऊँगा। मैं तुम लोगों की तरह थोड़े ही हूँ। मैं अँग-

रेजों की बात अच्छी तरह समझता हूँ।" किसी ने आपत्ति नहीं की और मैं पास ले कर पिक्चर-हाउस चल पड़ा।

पहुँच कर देखा, भारी भीड़ थी! चारों ओर साहब और मेम! यहाँ-वहाँ दो-चार अपने देशी लोग भी थे, पर फर्स्ट क्लास तो साहब-मेमों से ही भरा पड़ा था। मेरी सीट उन लोगों के ठीक बीच में थी। मैं गंभीर मुद्रा में वहां बैठ गया। थोड़ी ही देर बाद अभिनय शुरू हो गया।

देखा कि एक साहब स्टेज पर आ कर हाथ-पैर चला-चला कर जाने क्या कह रहे हैं और सभी लोग गंभीर हो सुन रहे हैं। सहसा उस ने जाने क्या बात कही कि सब 'हो-हो' कर हँस पड़े। यह कहना काफी है कि मैं नहीं हँसा, कारण--मैं एक भी बात नहीं समझ पाया। फिर देखा कि वे साहब बोले चले जा रहे हैं और सब लोग ध्यान से सुन रहे हैं। एकाएक फिर हँसी का दौर! मैं बड़ी परेशानी में, क्योंकि वहाँ मैं ही एक ऐसा था जो हँस नहीं रहा था। सोचने लगा--अब किया क्या जाये! बहादुरी दिखाने गया क्यों? मेरे लिए और भी परेशानी यह थी कि मेरे पास एक मेम बैठी थी। मैं हँस नहीं रहा, यह बात वह बीच-बीच में आँख की कोर से देख लेती। पर बुद्धि हो तो क्या नहीं हो सकता? थोड़ी ही देर में मेरी मुश्किल आसान हो गयी। यद्यपि मैं अनेक प्रयत्न करने पर भी अभिनेता की एक बात भी नहीं समझ पाया, तथापि उस की भाव-भंगिमा बहुत कुछ समझ गया-- ठीक उसी तरह जैसे एक बहरा आदमी दूसरे व्यक्ति के ओंठों को हिलता देख बहुत-कुछ समझ जाता है। मैं ने गौर से देखा कि वह अभिनेता बात कहते-कहते एका-एक रुक कर थोड़ा-सा मुँह बना लेता है और सब लोग हँस पड़ते हैं। मैं ने मन में कहा--'तुम लोग समझते हो कि मैं अँग-रेजी नहीं समझता, या मुझ में हँसी की बात समझने की क्षमता नहीं है! अब की बार देखो।' तत्पश्चात मैं खूब गौर से देखने लगा। देखा कि वह पहले की तरह बोले चला जा रहा है। फिर उस ने रुक कर उसी प्रकार मुँह बनाया और तुरंत मैं जोर से हँस पड़ा। पर यह क्या! मेरे साथ कोई भी तो नहीं हँसा, अपितु सभी मेरी ओर मुड़-मुड़ कर देखने लगे। समझ में आया कि मैं बेवकूफ बन गया--गलत जगह हँस गया। मेरा चेहरा तमतमा गया और कान झनझनाने लगे। किसी तरह इंटरवल हुआ और मैं घर भागा!

बहुत दिन पहले 'पत्रिका' कार्यालय में एक मैनेजर थे--वृद्ध आदमी, खूब अनुभवी। अपने अनुभव की सहायता से ही वे सब 'मैनेज' करते। उस समय कार्या-लय बहुत छोटा था। वे अँगरेजी बहुत कम जानते थे, पर उन का व्यवहार ऐसा होता मानो अँगरेजी अच्छी तरह जानते हों। कार्यालय में कोई अँगरेज आता तो वे बातचीत शुरू कर देते। हम लोग उन का खूब आदर करते। जैसे ही कोई अँगरेज आता, हम उसे उन के पास ले जाते। यहाँ यह बता देना उचित होगा कि पत्रिका-कार्यालय और हमारा घर दोनों एक जगह थे, इसीलिए हम सभी बालक यह देख पाते कि कार्यालय में क्या हो रहा है।

शायद १९१७ में हमारे कार्यालय में पहला टेलीफोन लिया गया था। वह एक कमरे में रहता था। जिसे जब आवश्यकता होती, वह वहाँ आ कर फोन करता। घंटी बजते ही हम लोग भाग कर फोन

उठा लेते। फोन पर बातें करने में हमें बड़ा मजा आता।

एक दिन घंटी बजते ही मैं ने दौड़ कर फोन उठा लिया। उस तरफ से जाने कौन साहबी गले से कह रहा था, "हलो, पत्रिका ?" मैं 'वेट' कह दौड़ कर मैनेजर साहब को बुला लाया। उन्होंने फोन कान से लगा कर बातचीत शुरू कर दी। मैं एक ओर की ही बातें सुन पाया।

मैनेजर साहब कहते हैं, "हलो, हू यू ? (अपने सीने पर अँगुली मारते हुए) आइ ? आइ हू ? यू नाट नो ? आइ दि मैनेजर, अमृत बाजार पत्रिका, व्हिच सर्कुलेशन ग्रेटेस्ट इन (अँगुली पर गिनते हुए) इंडिया, बर्मा, सीलोन।" फिर उन्होंने रुक-रुक कर कई बार 'यस, यस' कहा और फोन रख दिया। मैं ने पूछा, "साहब क्या कहता है ?" उन्होंने धीरे से सिर हिलाते हुए उत्तर दिया, "कुछ समझ में नहीं आया। पर उसे पता नहीं लगने दिया। इसीलिए तो उस की हर बात पर मैं 'यस' करता रहा।" मैं ने पूछा, "आप सर्कुलेशन के बारे में क्या कह रहे थे ?" उन्होंने कहा, "वह मेरा परिचय पूछ रहा था। तभी मैं ने पेपर के सर्कुलेशन की बात बता दी; इस के बिना क्या लोग विज्ञापन देते हैं !"

मेरे एक बड़े भाई कुछ दिन विज्ञापन-विभाग के इंचार्ज रहे। उन्होंने अँगरेजी लिखना-पढ़ना बहुत नहीं सीखा था, तथापि बुद्धिमान होने के कारण कार्यालय का काम बड़ी अच्छी तरह चला लेते। उन-जैसा खुशमिजाज और मजाकिया आदमी और देखने में नहीं आता। मैं ने बी० ए० पास किया तो वे बोले, "तू मेरे विज्ञापन-विभाग का करेसपांडेंस-क्लर्क बन जा।" मैं ने जब पूछा कि क्या काम करना पड़ेगा तो उन्होंने कहा, "काम-काज कोई विशेष नहीं। विज्ञापन के लिए जो पत्र आयेंगे, मैं उन के उत्तर अँगरेजी में लिखा दूंगा। तू उन्हीं को अपने शब्दों में अँगरेजी में ठीक ढंग से लिख कर भेज दिया करना और एक खाते में उन की नकल रख लिया करना। लिफाफों पर पते लिख कर, टिकटें लगा कर उन्हें डाकखाने में डालना भी होगा। यही तेरा काम है।" मासिक वेतन की बात पूछने पर वे बोले, "फिलहाल १५–२० रुपये से ज्यादा नहीं मिलेंगे, बाद में और मिलेंगे। फिर, अभी-अभी बी० ए० पास ही तो किया है, अभी तो तेरे काम सीखने का ही समय है।"

एक दिन वे बोले, "आज हावड़ा स्टेशन जा कर बड़ी कठिनाई में पड़ गया।"

"क्या बात हुई ?" मैं ने पूछा।

"बात कुछ नहीं, आज सबेरे सुना कि 'ट्रेन' का सर्वनाम 'शी' होता है, 'इट' नहीं। सोचा कि स्टेशन चल कर किसी गार्ड या टिकट-कलेक्टर से थोड़ी बात कर आऊँ।"

"आखिर हुआ क्या ?"

"बात करने का मौका ही नहीं मिला। एक फिरंगी गार्ड से पूछा—ह्वेन विल पैसेंजर शी स्टार्ट ?" वह कुछ भी नहीं समझा। सामने ही पैसेंजर ट्रेन खड़ी थी। अँगुली से उसे दिखाते हुए दो-तीन बार 'शी' कहा। वह फिर भी नहीं समझा। उलटा जवाब दिया—'नानसेंस !' मैं घर चला आया।"

कोई व्यक्ति विज्ञापन के पैसे कम देना चाहता तो वे बहुत नाराज होते और व्यंग्य-भरा उत्तर देते। एक व्यक्ति ने विज्ञापन का रेट कुछ कम कर देने के लिए

लिखा। भाई साहब ने कहा, "तू लिख दे—"इज इट यौर मैटर्नल अंकल्स आबदार ?" (अर्थात, यह क्या तुम्हारे मामा के घर की पंचायत है ?) इसी प्रकार एक और व्यक्ति ने हमारे रेट ज्यादा बताये तो भाई साहब ने लिखाया—"दिस इज नाट फिश मार्केट !" (अर्थात, यह मछली-बाजार नहीं ! यहाँ दुकानदारी नहीं चलेगी।) मैं ने ठीक यही बातें तो चिट्ठियों में नहीं लिखीं, पर हाँ, दूसरे ढंग से उन का वक्तव्य अवश्य लिख दिया।

एक दिन एक फिरंगी साहब हम लोगों का इसी प्रकार का उत्तर पा कर दफ्तर में आ धमका। भाई साहब के साथ बड़े तर्क हुए। वह कहता, "रेट कम करो", भाई साहब कहते, "बिलकुल नहीं।" अंत में भाई साहब बोले, "माई प्लेन वर्ड, थ्रो मनी–रब आयल" (अर्थात, मेरी सीधी-सी बात है, खरचो दाम, बनाओ काम।) अंत में साहब बोला, "तो मेरा विज्ञापन दे दो।"

इधर हुआ यह कि उस का विज्ञापन खो गया, अतः भाई साहब बोले, "यौर ऐडवर्टिजमेंट ? दैट इज पाचार्ड।"

साहब की समझ में कुछ नहीं आया, बोला, "पाचार्ड?"

"यस, पाचार्ड, माई क्लार्क डिड," भाई साहब ने उत्तर दिया।

साहब को उठ कर जाते देख मैं उन के साथ चल पड़ा। कुछ दूर जा कर साहब ने मुझ से पूछा, "महाशय, पाचार्ड का क्या मतलब ? इज इट ए न्यू इंगलिश वर्ड ?"

मैं बोला, "पाचार्ड का मतलब है 'पाचार' हो गया, अर्थात वह खो गया। और उन्होंने जो यह कहा 'माई क्लार्क डिड', उस का अर्थ है उन के 'केरानी' अर्थात मैं ने खो दिया।"

साहब अवाक हो चला गया। यदि चाहते तो भाई साहब इस से अच्छी अँगरेजी बोल सकते थे, पर असल बात यह थी कि वे बड़े ही मजाकिया थे। जहाँ कहीं अँगरेजी बोलने में अटक जाते वहाँ मजाक कर बात खत्म कर देते।

अब पास-कांड की बात बताऊँ। कलकत्ता में 'मदन कंपनी' का सिनेमा - व्यवसाय पर प्रायः एकाधिकार था। एक बार उन लोगों ने अपनी 'कार्नवालिस' टाकीज (इस समय जिस का नाम 'श्री' है) का एक स्थायी पास मेरे चाचा मोती बाबू के नाम भेजा। उस में लिखा था, 'फार मोतीलाल घोषेज फैमिली' (मोतीलाल घोष के परिवार के लिए)। इस पास को ले कर हम लोग सिनेमा देखने 'कार्नवालिस' प्रायः ही जाते। उस का मैनेजर एक पारसी था। बुकिंग आफिस वाले हमें अच्छी तरह पहचानते थे और हम लोगों के पहुँचते ही हमारे बैठने की व्यवस्था कर देते थे। हम साधारणतः दो-तीन प्राणी होते। कभी-कभी चार-पाँच भी हो जाते, पर वे कोई आपत्ति नहीं करते।

मैं ने अपनी पुस्तक 'विचित्र काहिनी' में अपने एक जान-पहचान के भाई की बात लिखी है। वे एक दिन आ कर बोले, "क्यों रे, तुम लोगों के पास एक फेमिली-पास है न, चल एक बार सिनेमा देख आयें।" मैं ने कहा, "चलो।" उन के पास विद्या थी असाधारण और चरित्र था देवता-जैसा, पर उन-जैसे भोले-भंडारी, सांसारिक ज्ञानहीन आदमी बहुत कम ही देखने में आते हैं !

मैं भाई साहब के साथ सिनेमा चल

दिया। रास्ता चलते उन्होंने पूछा, "क्यों रे, फैमिली में कितने आदमी आते हैं?" मैं ने कहा, "यह तो पता नहीं, पर हम चार-पाँच आदमी तक गये हैं और उन लोगों ने कोई आपत्ति नहीं की।" वे कहने लगे, "उन से पूछ देखना, वे कितने आदमियों तक जाने देंगे।" मैं ने कहा, "अच्छा।"

वहाँ पहुँच कर मैं अपने परिचित बुकिंग-क्लर्क से मिला। उस ने हँस कर पूछा, "आज कितने लोग हैं?" मैं बोला, "अभी तो दो हैं, पर एक बात पूछता हूँ—आप इस पास पर कितने लोगों को जाने देंगे?" उस ने उत्तर दिया, "यह तो फैमिली-पास है, इस में कितने लोग क्या! पाँच-सात-दस भी आयें तो हम कुछ नहीं कहेंगे।" यह बात भाई साहब से कही तो वे बोले, "तो आ, इस बुकिंग-आफिस के आगे खड़े हो जायें, कोई परिचित व्यक्ति आयेगा तो उसे सिनेमा दिखायेंगे।" हम दोनों वहाँ खड़े हो गये।

बस, खड़े ही हैं। कोई परिचित व्यक्ति नहीं आ रहा है। समय बीत रहा है और भाई साहब का धैर्य टूटा जा रहा है। अंत में वे बोले, "परिचित नहीं आता तो अपरिचित को ही दिखाओ।" ठीक इसी समय एक मोटा आदमी टिकट लेने आया। भाई साहब उस से बोले, "क्यों महाशय, सिनेमा देखने आये हैं? आप को टिकट नहीं लेनी पड़ेगी। (मेरी ओर इशारा कर) इस के पास खड़े हो जाइये।" वह मेरे पास आ कर खड़ा हो गया। तत्पश्चात हल्दिया रंग की पगड़ी बाँधे एक मारवाड़ी, फिर एक देहाती—उन्हें भी टिकट नहीं लेने दिया और मेरे पास खड़ा कर दिया। बुकिंग-क्लर्क अवाक हो देख रहा है! उस के बाद लुंगी पहने दो मुसलमान आये। भाई साहब उन से बोले, "क्यों मियाँ साहब, सिनेमा देखेंगे? इधर खड़े हो जाइये।"

अब तो बुकिंग-क्लर्क का धैर्य जाता रहा। उस ने जब देखा कि एक भी टिकट की बिक्री नहीं हो रही है, तो वह जा कर मैनेजर को बुला लाया और हम सब को दिखा कर बोला कि ये सब 'फ्री' जाना चाहते हैं। मैनेजर बोला—"क्यों, इन के पास क्या 'पास' है?" "हाँ, यह देखिये", कहते हुए भाई साहब ने उसे पास दे दिया। पास देख कर मैनेजर बोला—"यह तो फैमिली-पास है। ये लोग कौन हैं?"

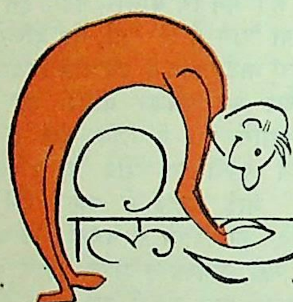
"ये मोतीलाल घोष के परिवार के हैं," भाई साहब ने कहा। मैनेजर थोड़ी देर हम लोगों के चेहरों की ओर देखता रहा, तत्पश्चात बोला, "आप लोग घर जाइये, पास को मैं रखे लेता हूँ।"

और हम लोग? अपनी बात न कहें, सो ही अच्छा। सिनेमा न देख पाये, इतना ही नहीं, ऊपर से पास भी खो दिया। घरवाले क्या कहेंगे! खैर, हम लोग घर चले आये। कुछ दिन बाद उन लोगों ने पास वापस भेज दिया, पर हम ने वैसा काम फिर कभी नहीं किया।

—अनु० ब्रजगोपालदास

"आदमी बिना प्रयत्न किये कुछ नहीं बन सकता।"

"वाह! क्यों नहीं बन सकता! परसों मैं बिना प्रयत्न किये बड़ा भाई बन गया हूँ।"



लिखाड़ी खिलाड़ी

बदलते जमाने के साथ साहित्यकारों को भी बदलना चाहिये । अंतरिक्ष-यात्री को ही लीजिये । पृथ्वी से सैकड़ों मील ऊपर जाने वाले इस यात्री को कितने प्रकार के व्यायाम करने पड़ते हैं ! भीषण वेग से घूमने वाले राकेट में बैठ कर चक्कर लगाने पड़ते हैं, भार-रहित अवस्था में रहने के पाठ सीखने पड़ते हैं, उपवास करना होता है, कृत्रिम भोजन करने की आदत डालनी होती है, आदि ।

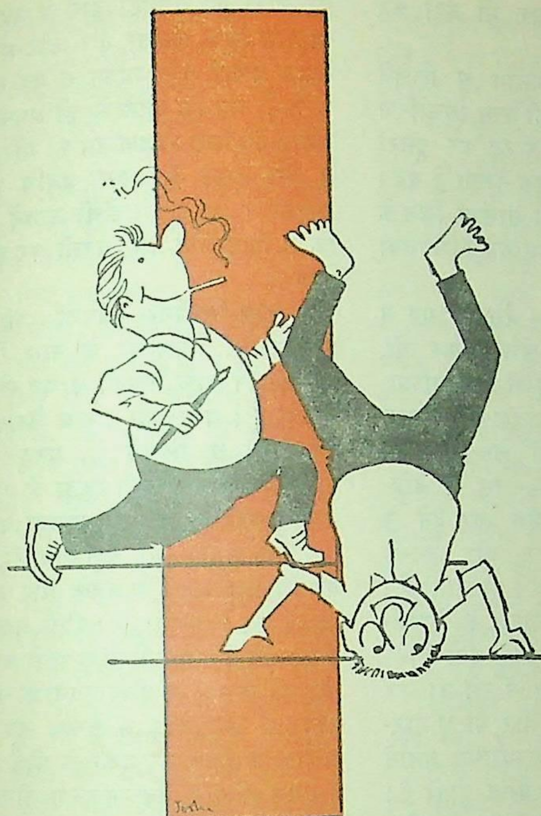
साहित्यकार भी ऐसे अनेक घुमावदार रास्तों से गुजरता है । लेखन प्रारंभ करने की अवस्था में (जब उस की कहीं पूछ नहीं होती) वह भार-रहित स्थिति में होता है । फिर वह किसी साहित्यिक गुट या संप्रदाय का सदस्य बन जाता है या किसी मठाधीश की छत्र-छाया में चला जाता है । तब उसे विशिष्ट गुट के मतानुसार अनेक मुद्राएँ धारण करनी पड़ती हैं, अनेक आसन सीखने पड़ते हैं । खास तौर से जब कोई साहित्यकार सरकारी संरक्षण पा जाता है तब उसे शासकीय नीति एवं योजनाओं का औचित्य तथा श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए उलटे-सीधे फतवे दे कर कुलाँटें खानी पड़ती हैं । 'साहित्य-सेवा' के प्रारंभिक दिनों में उसे भूखे रहने का अभ्यास करना पड़ता है और विदेश-यात्रा में प्रतिनिधि की हैसियत से तरह-तरह का भोजन करने की आदत डालनी होती है ।

फिर भी मेरा निश्चित मत है कि अभी हमारे रचनाकारों ने व्यायाम के महत्व को नहीं समझा, इसीलिए वे कमजोर रहते हैं । कभी-कभी पटकी भी खा जाते हैं । साहित्यकार यदि व्यायाम और खेलों का व्यवस्थित पाठ्यक्रम पूरा करें तो उन्हें निश्चित ही साहस और शक्ति प्राप्त होगी । इसी सदुद्देश्य से इस लेख को लिखने का कष्ट भुगत रहा हूँ । साहित्यकारों के लिए विशेष रूप से उपयोगी कुछ व्यायाम और खेल यहाँ दिये जा रहे हैं:—

बैठकें—नामी साहित्यकारों, समीक्षकों तथा विश्वविद्यालय के उपकुलपतियों के घर जा कर बैठकें मारनी चाहियें । शिष्यवत उन की सेवा करनी चाहिये । उन के सामने और पीठ पीछे भी उन की स्तुति गानी चाहिये । उन की कृपा-दृष्टि से ही संपादक और प्रकाशक आप की

हास्य-व्यंग्य

रमेश मंत्री



सांस्कृतिक मंत्रालयों के अधिकारियों के सामने पूरे १०८ नमस्कार करने चाहियें।

जोर—प्रकाशक की दुकान पर अपनी पांडुलिपि खपाते समय लेखक को यह व्यायाम करना चाहिये और अपने लेखक को सरकारी पुरस्कार दिलाने के लिए प्रकाशकों को भी निर्णय घोषित होने वाले सीजन में यह व्यायाम करना चाहिये। इसी तरह प्रांतीय, जनपदीय, आंचलिक सम्मेलनों का अध्यक्ष-पद प्राप्त करने के लिए भी इस तत्काल फलदायक व्यायाम को ग्रहण करना चाहिये।

कबड्डी—साहित्य-क्षेत्र में यह खेल बड़ा लोकप्रिय है। मगर उस में थोड़ा परिवर्तन जरूरी है। 'कबड्डी . . . कबड्डी' के स्थान पर कहना चाहिये "मैं . . . मैं . . . मैं"। ऐसा कहने पर दम नहीं फूलता। कुछ लेखक तो बिना थके जिंदगी भर "मैं . . . मैं" करते आये हैं। इस खेल में हमारे साहित्यकारों का मुकाबला

रचनाएँ मँगवाने लगेंगे और पी-एच. डी. का प्रसाद प्राप्त होगा। यह एक अनुभव-सिद्ध व्यायाम है।

(सूर्य) नमस्कार—सब से सरल और उपयोगी है। नये लेखकों को चाहिये कि वे बड़े लेखकों, सरकारी अधिकारियों, मंत्रियों, उपमंत्रियों, सरकारी पुरस्कार-समिति के सदस्यों तथा नाटक-प्रतियोगिताओं के निर्णायकों को सदैव नमस्कार करें। सरकारी प्रतिनिधि मंडलों में प्रवेश पाने के इच्छुक भी इस का प्रयोग करें।

पश्चिम के साहित्यकार भी नहीं कर सकते।

लुका-छिपी—छद्मनाम से लिखने वालों के लिए इस खेल की खास सिफारिश की जाती है। खुद परदे में रह कर दूसरों पर प्रहार करने का अचूक नुस्खा है यह। खुले आम कुछ करने की सामर्थ्य जिन के पास नहीं है उन के लिए यह विशेषतया उपयुक्त है।

लातें फटकारना— वैसे तो यह न कोई व्यायाम है; न खेल। फिर भी, आलोचकों, समीक्षकों, कुंजी-छाप प्राध्यापकों के लिए इस का समावेश करना परम आवश्यक है। कोई भी लेखक हो—अच्छा-बुरा, नया-पुराना—उस पर बेहिचक लातें फटकारना शुरू कर देने से शीघ्र ही श्रेष्ठ समीक्षक और तटस्थ आलोचक की उपाधि प्राप्त हो जाती है।

खो-खो—सिर्फ हास्यरस के लेखकों के लिए यह खेल है। पेट-पकड़ और खीसें-निपोर हँसाने की ही पंक्ति में खो-खो कर हँसाने की भी क्रीड़ा है। वीर या शृंगार-रस की रचनाओं को हास्यास्पद बनाने की निपुणता भी इस में प्राप्त होती है। कई बार कुछ हास्य-व्यंग्य लेखक मूल अँगरेजी लेखक को 'खो' दे कर उस के स्थान पर स्वयं बैठ जाते हैं। यह खेल इधर काफी लोकप्रिय हुआ है।

मलखंभ (स्तंभ)—दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्र-पत्रिकाओं के स्तंभ-लेखकों के लिए यह व्यायाम है। मलखंभ के खंभे पर ही खिलाड़ी अपना करतब दिखा सकता है। उसी प्रकार स्तंभ-लेखक की उछल-कूद भी तभी तक रहती है जब तक स्तंभ चलता है। स्तंभ बंद होने पर बेचारा असहाय हो जाता है।

ऊँची कूद—सरकारी या अन्य पुरस्कारों की घोषणा होने से पहले यह व्यायाम खूब चलता है। छोटे-मोटे नये लेखक बेचारे पूरी शक्ति से यह व्यायाम करते हैं, जब कि पहले से ही अपनी गोटी जमाये बैठे सिद्ध लेखक उन की ओर उपेक्षा से देख हँसते हैं। इस अवधि में कुछ लेखकों ने तो इतनी ऊँची उड़ानें भरी हैं कि वे फिर लौट कर धरती पर ही नहीं आये।

आँख-मिचौनी—अपनी पत्नियों, प्रेमिकाओं, प्रेरणाओं के नाम से रचनाएँ भेजने वाले लेखकों में यह खेल खूब चलता है। यदा-कदा पुरुष लेखक स्वयं स्त्री-नामों से लिखते हैं, परंतु इस में परदा खुल जाने का भय रहता है, इसलिए तजरबेकारों को ही इसे खेलना चाहिये।

पीठ छूना—यह खेल दीवाली, होली, गणतंत्र विशेषांकों के पहले और बाद में विशेष रूप से चलता है। दोनों अवस्थाओं में एक भेद है। विशेषांकों के पहले संपादकगण बड़े लेखकों के पीछे रचनाओं के लिए दौड़ते हैं और बाद में लेखक खुद पारिश्रमिक के लिए संपादकों के पीछे भागते हैं। इस खेल से रक्त-संचरण ठीक होता रहता है।

दंड—अश्लील साहित्य लिखने के फलस्वरूप कचहरी में यह व्यायाम करना पड़ता है। लेकिन इस के फायदे भी बहुत हैं। अनेक पत्र-पत्रिकाओं से रचनाओं के लिए पत्र आने लगते हैं। छात्र-छात्राओं की तरफ से आटोग्राफ और फोटोग्राफ की माँग होने लगती है।

संगीत-कुरसी—सरकारी समितियों, पाठ्य-पुस्तक समितियों तथा विश्वविद्यालय की सभाओं में जाने वालों के लिए यह खेल बड़ा गुणकारी है। जहाँ कहीं एक भी कुरसी खाली दिखी कि वे

उस पर जम कर बैठ जाते हैं। यही इस का रहस्य है। कुछ स्वनामधन्य साहित्यिक तो एकसाथ दस-दस समितियों की कुरसियाँ अड़ाये रहते हैं। सरकारी अधिकारियों तथा उप-कुलपतियों के संगीत पर ही यह खेल चलता है और उन्हीं की ताल पर दौड़ना भी पड़ता है। बहुधा रिटायर होने वाले लेखक सरकारी समितियों में जाने के लिए इस खेल का सहारा लेते हैं।

धूल-फाँक, कीचड़-फेंक—यह नये कवियों तथा नये कहानीकारों का सब से अधिक प्रिय खेल है। कतिपय समीक्षक (प्रयोगवादी, प्रयागवादी, प्रगतिवादी) भी इस में रुचि रखते हैं। मनचाहा लिखना, अशोभनीय बातों का प्रयोग, छिछले वक्तव्य, राजनीतिक स्टंट-छाप फतवे देना इस खेल के अंग हैं। कुछ लेखक तो जन्म भर धूल फाँकते और कीचड़ फेंकते हैं।

तीन टाँग की दौड़—जिन बड़े लेखकों के प्रिय शिष्य अथवा प्रिया शिष्या (एँ) रहती हैं, वे यह खेल खेलते हैं। जहाँ कहीं वे जाते हैं, उन के शिष्य अथवा शिष्याएँ उन की टाँगों में बँधे साथ-साथ जाते हैं। उन की खास शर्त यह रहती है—मेरी रचना तभी मिलेगी जब मेरे शिष्य अथवा शिष्या की रचना भी साथ में छापी जाये। लेकिन कुछ संपादक उन से भी पहुँचे हुए होते हैं। वे शिष्या की रचना छाप कर आचार्य का निबंध लौटा देते हैं।

शीर्षासन—नये कवियों, नये कथाकारों (आंचलिक, सचेतन सहित) के लिए एकमात्र आसन। इस के करने से यह प्रतीति होती है कि सिर्फ हम ही सीधा और सही देखते हैं, बाकी सारी दुनिया के लोग (पाठक) उलटा और गलत देख रहे हैं। इस आसन से रक्त का प्रवाह दिमाग की तरफ मुड़ जाता है। कभी-कभी तो दिमाग में रक्त के सिवा और कुछ भी नहीं बचता।

प्राणायाम—संपादक द्वारा लेख प्रकाशित करने के बाद या प्रकाशक द्वारा किताब छापने के बाद पारिश्रमिक तथा रायल्टी की राह देखने वालों को यह व्यायाम अवश्य करना चाहिये। पारिश्रमिक मिलने में जितनी देर लगे उतनी ही देर तक प्राणायाम करना चाहिये।

उपर्युक्त खेल, व्यायाम, आसनादि सेकवियों, कहानी-लेखकों, समीक्षकों की शारीरिक, बौद्धिक तथा आर्थिक प्रगति के द्वार खुल जायेंगे और उन्हें इस परम सत्य का ज्ञान भी हो जायेगा कि व्यायाम ही जीवन है।

—अनु० दिनकर सोनवलकर

गोल्फ एक ऐसा खेल है जिस में डेढ़ इंच व्यास की गेंद को ८,००० मील व्यास की गेंद पर रखा जाता है। खिलाड़ी का काम यह है कि छोटी गेंद को निशाना बनाये, बड़ी को नहीं।

विवाह के बाद वधू की विदा के समय कन्या-पक्ष की एक लड़की को जोर-जोर से रोते देख कर एक महिला ने पूछा, "क्यों री, तू इतने जोर से क्यों रो रही है ? तेरी विदा थोड़े ही हो रही है।"

"रोना तो इसी बात का है," लड़की ने उत्तर दिया।

आज मेरे पिता श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य सतासी वर्ष के हैं। किंतु आज से लगभग पचास वर्ष पहले से ही, जब वे तीस और चालीस के बीच थे, लोग उन्हें बुजुर्ग ही मानते आये हैं। व्यंग्य-विनोद करते हुए भी पिताजी का स्वभाव सदा गंभीर रहा है।

पिताजी अपने भाइयों में सब से छोटे हैं। छोटी अवस्था से ही उन की आँखें कमजोर थीं। इसी कारण कक्षा में बोर्ड पर जो लिखा रहता था उसे वे ठीक पढ़ नहीं पाते थे। दादाजी उन्हें डाक्टर के पास ले जाने में जरा हिचकिचाते थे। सोचते थे कि अगर कोई ऐब हो तो अभी से क्यों सब को पता चले! फिर भी पिताजी की शिकायतों से तंग आ कर उन्होंने अपने बेटे की आँखें डाक्टर को दिखायीं और अधिक नंबरों की ऐनक पिताजी की आँखों में लग गयी। पिताजी कहते हैं कि चश्मा लगने के बाद उन्हें दुनिया की सूरत ही कुछ और दिखायी दी। पहले पेड़ों के पत्तों को वे हरे ढेर के समान ही देखते थे। ऐनक पहनने के बाद उन्हें पत्ते अलग-अलग दिखायी दिये। पढ़ने-लिखने में उन्हें काफी आराम हो गया। घर से स्कूल जाते समय हनुमानजी का एक मंदिर पड़ता था। मंदिर में भक्तिपूर्वक हनुमानजी के दर्शन करने के बाद ही वे किसी परीक्षा में परचे हल करने बैठते थे। पिताजी कहते हैं कि उस मूर्ति का स्मरण करते ही अब भी उन का मन भक्ति से विभोर हो जाता है।

बारह-तेरह वर्ष की अवस्था में पिताजी हाईस्कूल की परीक्षा में उत्तीर्ण हो गये। सोलह वर्ष की अवस्था में वे ग्रेजुएट बने। दादाजी साधारण स्थिति के ब्राह्मण थे। फिर भी उन्होंने सोचा कि अपने लड़के को उत्तम-से-उत्तम शिक्षा देंगे। वकालत की परीक्षा उन दिनों सर्वोत्तम मानी जाती थी। बीस वर्ष के होने से कुछ पहले ही पिताजी ने वकालत भी पास कर ली। उन्हीं दिनों मेरी दादी का स्वर्गवास हो गया था। पिताजी के किशोर हृदय को इस से बड़ा आघात पहुँचा। उन का मत था कि चिकित्सा ठीक समय पर न हो सकने के कारण दादी नहीं बच सकीं। शीघ्र ही दादाजी ने पिताजी का विवाह सजातीय तथा धार्मिक परिवार की एक कन्या के साथ करा दिया। हमारे जिले के प्रधान नगर

मेरे पिता

सेलम में पिताजी की वकालत सफलतापूर्वक चलने लगी।

किंतु कुछ ही वर्ष बाद माताजी हम पाँच भाई-बहिनों को छोड़ कर, सत्ताईस वर्ष की आयु में इस दुनिया से चल बसीं। पिताजी ने उन की हर प्रकार की चिकित्सा करायी थी। उन्होंने अनथक रूप से उन की सेवा-सुश्रूषा की, फिर भी वे बच न सकीं।

पिताजी को बड़ा आघात पहुँचा। किंतु बाहर से वे कम ही विचलित दिखायी देते थे। उस समय उन की अवस्था पैंतीस वर्ष की थी। वे अच्छा कमाते थे। बहुतों ने आग्रह किया कि वे फिर शादी कर लें, किंतु पिताजी ने साफ इनकार कर दिया। हम भाई-बहिनों के लिए माँ का स्थान भी उन्होंने ही ले लिया। मेरे लिए तो मेरे माता-पिता-आचार्य सभी वही हैं। मैं सब से छोटी थी, अतः मुझ पर उन्हें अधिक ध्यान देना पड़ता था।

लक्ष्मी देवदास गाँधी



१९१९ में पिताजी ने अपने मित्रों की सलाह से सेलम छोड़ कर मद्रास में वकालत करने का विचार किया और अपने वृद्ध पिता तथा हम बच्चों को ले कर मद्रास आ गये। मद्रास में उन्होंने एक बड़ी कोठी किराये पर ली और वकालत शुरू कर दी।

पूज्य बापूजी दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे थे। सारे देश में एक नयी जागृति हो गयी थी। पिताजी राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याओं में रस लेते ही थे। बापूजी और पिताजी में पत्र-व्यवहार चलता था। पिताजी के निमंत्रण पर पूज्य बापूजी मद्रास में हमारे घर मेहमान हो कर ठहरे थे। यह पहला मौका था जब उत्तर भारत से हम लोगों का संपर्क हुआ।

बापूजी के चले जाने के बाद हमारे घर के वातावरण में काफी अंतर हो गया। जब असहयोग आंदोलन शुरू हुआ तो पिताजी ने अपना पेशा छोड़ दिया। मेरे दो बड़े भाई और बहिन बड़ी कक्षाओं और कालिजों में थे। हम सब की पढ़ाई बंद हो गयी। दादाजी बहुत नाराज हुए। पिताजी को 'समझाने' का उन का सारा यत्न विफल रहा।

अब हम बड़े घर से छोटे घर में रहने लगे, उस के बाद उस से भी छोटे घर में। मोटर बिक गयी। रसोई बनाने वाले दो महाराज थे। अब एक को रखा। कुछ दिन बाद उसे भी छुट्टी दे दी। इसी बीच दादाजी का स्वर्गवास हुआ। उन के गुजरने से एक रोज पहले मेरे ताऊजी का भी एक दूसरे शहर में स्वर्गवास हो गया। परिवार को बड़ा कष्ट हुआ।

अब हम आश्रमों में रह कर हाथ से काम करना सीखने लगे।

१९२२ से ले कर १९४१ तक, जब बापूजी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह चलाया, पिताजी कई बार जेल गये। कारावास में उन्होंने काफी अध्ययन किया। कई ग्रंथ लिखे। संस्कृत भी उन्होंने जेल में ही सीखी।

१९४७ के बाद और उस से पहले १९३७–३८ में भी पिताजी बहुत बड़े-बड़े पदों पर रहे हैं। किंतु उन के नित्य-जीवन में कभी कोई अंतर नहीं आया।

जेल से कुछ दिनों के लिए जब वे बाहर आते थे तब अपनी चलायी हुई संस्थाओं की देख-भाल में—रचनात्मक कामों में—लग जाते थे। तब मुझे और मेरे भाई को पढ़ाने का काम स्वयं ले लेते थे। हम लोगों के शादी-विवाह का भी प्रबंध इसी बीच जल्दी-जल्दी में हो जाता था।

पिताजी की आदतें सादा हैं। यदि उन से कोई बात सहन नहीं होती तो वह है अस्वच्छता। उन के कपड़े, बिस्तर तथा नित्य उपयोग की चीजें एकदम साफ और सुव्यवस्थित होनी चाहियें। वे स्वयं सब वस्तुओं को सुव्यवस्थित रखते हैं। कोई नया व्यक्ति भी उन की माँगी चीज आसानी से निकाल कर दे सकता है।

पिताजी को कड़े स्वर में किसी को डाँटते-डपटते मैं ने नहीं देखा। उन में छोटी अवस्था से ही किसी प्रकार का व्यसन नहीं रहा। वे सदा नियमित जीवन बिताते आये हैं। जब वे वकील थे तो टेनिस रोज खेला करते थे। आजकल थोड़ा चल लेते हैं। इस के अलावा उन का कमरा पहली मंजिल पर है। रोज एक-दो बार चढ़ना-उतरना हो ही जाता है। अपने से कम उम्रवालों की तुलना में उन का स्वास्थ्य अच्छा है। दुबले बहुत हैं। शायद यही उन के अच्छे स्वास्थ्य का रहस्य हो।

पिताजी को धर्म पर अटूट श्रद्धा है। उन से बढ़ कर शायद ही कोई आस्तिक आज हमारे देश में हो। फिर भी उन में पूजा-पाठ का आडंबर बिलकुल नहीं है। सभी धर्मों के प्रति उन के हृदय में बहुत आदर है। पिताजी और उन के साथियों को मंदिरों में हरिजन-प्रवेश कराने के लिए बड़े विरोध का सामना करना पड़ा था। अंत में उन्हें सफलता मिली। अब मद्रास में बड़े-बड़े सनातनी पंडित भी पिताजी से बड़ा मित्रतापूर्ण व्यवहार रखते हैं।

पिताजी खाते-पीते बहुत कम हैं। वे चाहते हैं कि हरेक चीज ठीक से बनी हो। जरा भी त्रुटि हो तो वे समझ जाते हैं। खाना बनाने की विधियाँ भी वे खूब जानते हैं। डाक्टरी पढ़े बिना ही वे शरीर और चिकित्सा-शास्त्र अच्छी तरह जानते हैं। लेकिन दूसरों को दवा वे डाक्टरों की सलाह से बताते हैं। स्वयं भी डाक्टर से पूछ कर दवा लेते हैं। डाक्टर उन से बात करते हुए बड़े सचेत रहते हैं।

कोई बीमार हो तो पिताजी उस की शिकायतों को बड़ी सहिष्णुता से सुनते हैं और उस का कष्ट कम करने का उपाय करते हैं। आज भी हम में से कोई बीमार हो जाये तो हमारी सहज इच्छा हो जाती है कि पिताजी पास में हों।

पिताजी की एक कमजोरी है। जब कभी कोई रेलगाड़ी या हवाईजहाज से आता-जाता हो तो कम-से-कम एक घंटा पहले वे स्टेशन या हवाई-अड्डे पहुँच जाते हैं। सार्वजनिक सभाओं में भी, जहाँ वे मुख्य वक्ता होते हैं, कुछ मिनट पहले पहुँच जाते हैं। इस से एकाध बार प्रबंध-कर्ताओं को परेशानी हुई है।

एक बार प्रसिद्ध जरमन राजनीतिज्ञ बिस्मार्क ने एक दुबले-पतले वैज्ञानिक जोसेफ विर्चाव को अचानक द्वंद्व-युद्ध के लिए ललकार दिया। द्वंद्व-युद्ध पिस्तौल से लड़ा जाता था और तलवार से भी। बिस्मार्क दोनों के ही माहिर थे।

वैज्ञानिक ने कुछ सोच कर उत्तर दिया, "द्वंद्व-युद्ध तो मैं आप से करूँगा, लेकिन हथियार के चुनाव की आजादी मुझे देनी होगी।"

"हाँ-हाँ, यह तो तुम्हारा अधिकार है," बिस्मार्क ने राजी होते हुए कहा।

थोड़ी देर में वैज्ञानिक एक पिस्तौल का खोल लिये हुए मैदान में आया। खोलने पर उस में से कबाब के दो टुकड़े निकले। उन्हें देख कर बिस्मार्क ने कहा, "यह सब क्या है?"

वैज्ञानिक ने कहा, "इन में से एक टुकड़ा तो साधारण है, दूसरे में बहुत जहरीले कीटाणु हैं। पहले आप किसी एक टुकड़े में से एक ग्रास खा कर दिखाइये, फिर मैं दिखाऊँगा।"

बिस्मार्क ने तुरंत हार मान ली।

भँवरलाल जल्दी-जल्दी आफिस के कमरे में आता है और पूछता है, "मेरा क्रास तो नहीं लगा है ?" पास बैठा क्लर्क गरदन से ही नकारता है ।

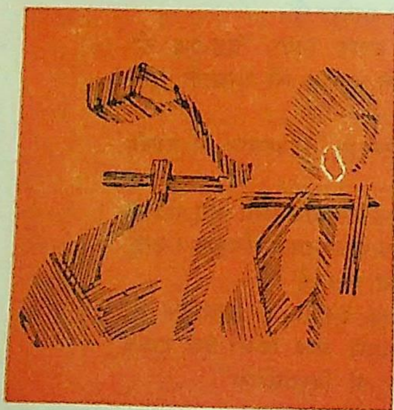
अधिक गरमी के कारण भँवरलाल जोर से सांस छोड़ते हुए कहता है, "आज तो गजब की गरमी है . . ओफ !"

उस के माथे से पसीना टपकने लगा है और बालों से बहते पसीने के कारण उस की टोपी का निचला हिस्सा भीग गया है । कलम निकाल कर वह हाजिरी-रजिस्टर में हस्ताक्षर करता है । फिर अपने लखनवी कुरते में से शरीर के अंदर फूंकता हुआ अपनी कुरसी पर आ बैठता है । टोपी उतार कर वह रूमाल से अपना माथा पोंछता है । फिर एक ठंडी आह भर कर सामने बैठी मिस डेला का अभिवादन करता है, "हलो ! मिस डेला !"

वह भी मुसकरा कर 'हलो' कहती है ।

मुंह का पसीना पोंछते हुए भँवरलाल कहता है, "मिस डेला ! आज तो 'टेरीबल' गरमी है . . . है न ?"

उत्तर में मिस डेला 'हूँ' कहती है ।



फिर भँवरलाल उसे अपनी टोपी दिखाता है, "देखिये, मिस डेला ! आज तो मेरी टोपी भी गीली हो गयी है ।"

मिस डेला क्षण भर टोपी की ओर घूर कर देखती है । फिर कहती है, "हाँ ! है तो ।"

भँवरलाल अपनी नादानी पर पछताता है । आज जाने उसे क्या हो गया कि टोपी का गीलापन दिखाते-दिखाते वह टोपी के अंदर का हिस्सा भी मिस डेला को दिखा बैठा है, जो तेल से बुरी तरह चिकट गया है और जिस में से बदबू आ रही है ।

फिर फीकी मुसकराहट के साथ वह कहता है, "हुँ ! क्या किया जाये, मिस डेला ! खानदान के रिवाज की वजह से ही यह टोपी लगानी पड़ती है, नहीं तो . . . नहीं तो. . . " आगे उसे कुछ नहीं सूझता ।

तब तक मिस डेला अपने काम में व्यस्त हो जाती है । बात का रुख बदलने को भँवरलाल फिर पास बैठे क्लर्क से पूछता है, "मिस्टर वर्मा, आज माथुर नहीं आया क्या ?"

वर्मा कहता है, "क्या पता !"

झुंझला कर भँवरलाल कहता है, "शायद नहीं आयेगा ! आज फर्नेस आइल की रिपोर्ट रेलवे-बोर्ड को जानी थी ।" फिर मिस डेला की तरफ देख कर कहता

ईश्वरचन्दर

(मूल सिंधी से लेखक द्वारा अनूदित)

है, "मिल डेला ! माथुर अपनी अलमारी की चाबी तो नहीं दे गया था आप को ?"

मिस डेला भँवरलाल की ओर मुसकरा कर देखती है, फिर धीमे स्वर में कहती है, "नो !"

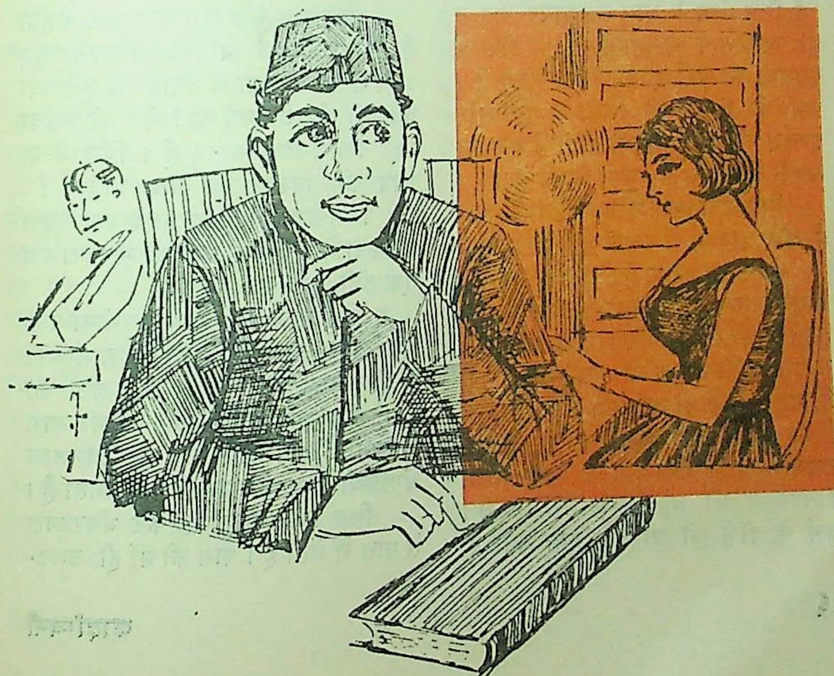
भँवरलाल वर्मा की ओर देखता है, "ओफ ! अब क्या होगा ?"

लापरवाही से वर्मा कहता है, "क्या हो जायेगा ? रिपोर्ट आज नहीं गयी तो कल चली जायेगी ।" लेकिन भँवरलाल को यह उत्तर अच्छा नहीं लगता । उस के मुँह से चीख-सी निकल जाती है, "हुँ ... कल ? ... नहीं, नहीं बाबा ! रिपोर्ट तो आज ही जानी चाहिये ।"

वर्मा कोई उत्तर नहीं देता । वह जानता है कि जब भी कोई क्लर्क नहीं आता तो भँवरलाल ऐसा ही दिखावा करता है । वर्मा अपने काम में लग जाता है । भँवरलाल टोपी को सुखाने के लिए उसे पंखे की ओर बढ़ाता है ।

मिस डेला अब पर्स में से एक छोटा आईना और लिपस्टिक निकालती है । कहीं-कहीं ओंठों पर से लिपस्टिक उड़ गयी है, फिर से लगाती है । भँवरलाल को यह सब अच्छा लगता है । रूमाल से पसीना पोंछता हुआ वह मिस डेला से कहता है, "मिस डेला ! एक-दो मिनट के लिए जरा आईना ..."

मिस डेला के लाल ओंठों पर एक मुसकान फिसल आती है । वह आईना भँवरलाल की ओर बढ़ाती है । आईना देख कर भँवरलाल कहता है, "ओह ! इस टोपी के कारण सारे बाल ही बिगड़ गये हैं ।" वह अँगुलियों से बाल सँवारता है ।



इस बीच माथुर आ गया है। मिस डेला कहती है, "मिस्टर भँवरलाल ! आप मिस्टर माथुर के बारे में पूछ रहे थे न, वह आ गये हैं..."

अब भँवरलाल बात बनाने की कोशिश करता है। सामने लगे कैलेंडर की ओर देख कर कहता है, "अरे ! मुझ से भूल हो गयी। मैं ने समझा कि आज दस तारीख है.. लेकिन आज तो छह तारीख ही है। फर्नेस आइल की रिपोर्ट तो दस तारीख को ही भेजते हैं..."

वर्मा ओंठों ही ओंठों में मुसकराने लगता है और भँवरलाल आईना मिस डेला को लौटा काम करने लगता है।

कुछ देर बाद वह टोपी को हाथ लगा कर देखता है। अभी गीली है। गीले हिस्सों को सुखाने के लिए वह टोपी पर फूंक मारने लगता है। फूंकने की आवाज पर मिस डेला उस की ओर देखती है। फीकी मुसकराहट के साथ भँवरलाल कहता है, "हुँ, मिस डेला ! आप को शायद पता न हो, पर मैं आप को बताता हूँ। एक टोपी में इनसान की पूरी इज्जत छिपी होती है। जब भी किसी को किसी से दया और इज्जत की भीख माँगनी होती है तब वह अपनी टोपी उस के कदमों में रख देता है।

मिस डेला ध्यान से उस की बात सुनती है और आश्चर्य से कहती है, "अच्छा ?"

भँवरलाल कहता है, "हाँ, मिस डेला ! हमारे खानदान में हमेशा ठेकेदार ही पैदा हुए। लाला रंगनाथ मेरे परदादा थे। स्टेशन से इस आफिस तक जो पक्की सड़क बनी है, यह उन्होंने ही बनवायी थी। मजाल है कि कभी पगड़ी के बिना घर से एक कदम भी बाहर रखा हो। मेरे दादा लाला दीनदयाल भी बहुत बड़े ठेकेदार थे। चर्च के पीछे जो शाही पुलिया बनी है, वह उन्हीं ने बनवायी थी। उन को पगड़ी का इतना शौक था कि रोज एक से एक नयी पगड़ी लगाते थे—और अगर पगड़ी पुरानी हो जाती तो वे किसी भी गरीब-मजदूर को नहीं देते थे, उलटा उसे जला डालते थे। कहते थे—पगड़ी हमारी इज्जत है। हम अपनी इज्जत दूसरे के हाथों में कैसे दे सकते हैं !" फिर एक ठंडी आह भर कर भँवरलाल कहता है, "लेकिन अफसोस, मिस डेला ! मेरे पिताजी ने खानदान में पगड़ी का रिवाज खत्म कर टोपी लगाना शुरू कर दिया। साथ-साथ उन में जुए और शराब की भी आदतें पड़ गयीं, जिन के पीछे खानदान का पूरा पैसा तबाह कर वे चल बसे।"

मिस डेला अब ऊबने लगी है। झूठी मुसकराहट के साथ कहती है, "मिस्टर भँवरलाल ! क्यों फालतू ही बीती को याद कर आप अपने जी को कष्ट दे रहे हैं... अच्छा ! अब मैं थोड़ा काम कर लूं !"

भँवरलाल कुछ क्षण सोच कर कहता है, "मिस डेला ! यदि मेरे पिताजी जुए और शराब में पैसा न गँवाते तो मुझे क्या पड़ी थी नौकरी करने की ! वैसे मेरे चाचा यहाँ फिल्म-डिस्ट्रीब्यूटर हैं। मिस डेला, आप को पिक्चर का पास चाहिये ?"

मिस डेला कोई उत्तर न दे कर केवल मुसकराती है। भँवरलाल भी मुसकरा कर एक ठंडी आह भरता है।

दूसरे दिन आते ही माथे से पसीना पोंछ भँवरलाल कहता है, "मिस डेला, मैं आप के लिए पास ले आया हूँ। पाँच जनों का है। आप अपनी 'सिस्टर्स' को भी साथ ले जाना।" टोपी मेज पर रख भँवरलाल अँगुलियों से अपने बाल सँवारने लगता है।

मिस डेला 'थैंक्यू' कह कर भँवरलाल से पास ले लेती है। पास को यों ही उलट-

पलट कर देखती है, फिर पर्स में रख लेती है। पर शायद वह सोचती है कि केवल 'थैंक्यू' कह देना पर्याप्त नहीं है। आभार मानने के लिए कुछ और कहना चाहिये। अतः एक लुभावनी मुसकान के साथ कहती है, "मिस्टर भँवरलाल ! टोपी न पहनने से आप का व्यक्तित्व और भी उभर आता है। अगर आप टोपी न पहनें तो ?"

भँवरलाल को ये शब्द बहुत अच्छे लगते हैं। वह पूछता है, "मिस डेला ! टोपी न लगाने से क्या सचमुच ही . . ."

बात को बीच में ही काट कर मिस डेला कहती है, "यस . . . यस . . . रीयली !"

खुशी में मेज पर एक मुक्का मार कर भँवरलाल कहता है, "मिस डेला ! अगर मेरे पिताजी पगड़ी से टोपी पर पहुँच सकते हैं तो मैं भी टोपी से अब नंगे सिर तक पहुँचने का अधिकार रखता हूँ—क्यों, मिस डेला ?"

मिस डेला मुसकरा कर कहती है, "क्यों नहीं, मिस्टर भँवरलाल ! देखिये न, जमाना कितना आगे बढ़ गया है।"

खुशी में भर कर भँवरलाल कहता है, "मिस डेला ! कल मैं आप को एक और पास ला दूँगा।"

भँवरलाल आज बहुत खुश है। चपरासी को बुला कर कहता है, "कालू ! यहाँ आ ! जा, दो सिगरेट ले आ, एक अपने लिए, एक मेरे लिए !" वह तेज चलते पंखे की ओर देखता है। कुछ देर बाद नफरत-भरी निगाह से टोपी की तरफ देखता है। फिर अँगुलियों से बालों को ठीक करते हुए कहता है, "आज तो बेहद गरमी है !"

दूसरे दिन से भँवरलाल टोपी नहीं लगाता। पहले ही रोज वर्मा उसे टोकता है, "मिस्टर भँवरलाल ! अपने खानदान के रिवाज . . ."

"नहीं-नहीं, मिस्टर वर्मा ! ऐसी कोई बात नहीं। दरअसल बात यह है कि इस साल-जैसी गरमी कभी नहीं हुई। टोपी लगाने से मेरा सिर चकराने लगता है।

लेकिन वर्मा इस उत्तर से संतुष्ट नहीं होता। उसे लगता है कि सिर चकराने का तो केवल बहाना है, असल में बात कुछ और ही है।

जब वर्मा चाय पीने बाहर जाता है, तब भँवरलाल धीरे से मिस डेला से पूछता है, "क्यों मिस डेला ! . . पिक्चर देखी ?"

मुसकरा कर मिस डेला कहती है, "ओ यस ! ब्यूटीफुल पिक्चर !"

भँवरलाल भी मुसकराता है, "अच्छा?" फिर धीमे स्वर में कहता है, "मिस डेला ! आप के कहने पर मैं ने टोपी उतार दी है। क्यों, ठीक है न ?"

मिस डेला स्वीकृति में केवल गरदन हिला देती है।

भँवरलाल को मिस डेला का केवल गरदन हिलाना अच्छा नहीं लगता। वह कुछ और भी सुनना चाहता है। इसलिए कहता है, "मिस डेला ! अब मैं कभी टोपी नहीं लगाऊँगा। चाहे कैसी ही सर्दी क्यों न हो।"

मिस डेला के थोड़ा मुसकराने पर भँवरलाल खुश होता है और जेब में से एक पास निकाल कर कहता है, "लो, मिस डेला, आज एक और पास . . ."

बीच में ही मिस डेला कहती है, "नहीं मिस्टर। मैं क्या करूँगी ? मैं तो कल ही देख आयी।"

भँवरलाल अपनी गलती महसूस करता है, लेकिन बात को बनाने के लिए कहता है, "मिस डेला ! आप ने जो मुझे टोपी उतारने की अच्छी सलाह दी थी, यह तो उस सलाह के लिए . . . वैसे आप चाहें तो

अपनी किसी सहेली को 'ओबलाइज' कर सकती हैं ।" मिस डेला को यह बात जँच जाती है।

फिर तो लगातार कुछ महीनों तक यह एक क्रम-सा बँध जाता है। जब भी कोई नयी पिक्चर आती है, भँवरलाल उस का पास मिस डेला को ला देता है। जब-जब मिस डेला मुसकरा कर भँवरलाल से पास लेती है, तब-तब उस का मन खुशी से बाँसों उछलने लगता है। और अब यह बात एक चर्चा-सी बन गयी है। सब भँवरलाल को टोकते हैं, लेकिन भँवरलाल को इस की कोई परवाह नहीं।

कुछ महीने बाद! भँवरलाल महसूस करने लगा है कि मिस डेला अब माथुर की ओर बढ़ने लगी है। आधे-आधे घंटे तक उस के पास जा कर बैठती है और हँस कर बातें करती है। माथुर भी उस से हँस कर बातें करता है। भँवरलाल को यह सब अच्छा नहीं लगता। वह सोचता है—'मैं मिस डेला से साफ-साफ कह दूँगा कि माथुर से हँस कर बातें न करे, वह ठीक आदमी नहीं। आज से अगर उस से हँस कर बातें कीं तो पिक्चर के पास ला कर नहीं दूँगा।' लेकिन भँवरलाल ऐसा नहीं कर पाता। उसे यह सब बचकाना-सा लगता है। इसलिए मन ही मन वह दर्द पी जाता है।

आखिर, एक दिन भँवरलाल के दिल को धक्का-सा लगता है, जब वर्मा कहता है, "भँवरलाल! कल मैं ने मिस डेला को माथुर के साथ पिक्चर में देखा था।" फिर व्यंग्य से कहता है, "कमाल है! तुम्हारे पास पर माथुर मजे ले रहा है . . . और तुम वैसे के वैसे!"

बात उस के दिल को लगती है। लेकिन वर्मा पर झूठा रोब झाड़ते हुए कहता है, "तुम झूठ बोलते हो . . . डेला ऐसी नहीं है . . . . तुम्हें वहम हुआ है!"

लेकिन वर्मा कहता है, "रोजी की कसम! मैं झूठ नहीं बोलता। तुम भले ही डेला से पूछ देखो। मैं ने तो माथुर को वहीं 'विश' भी किया था।"

भँवरलाल चुप हो जाता है। सोचता है—'सच होगा। वैसे भी मिस डेला माथुर के साथ बहुत हिल-मिल गयी है। फालतू ही उस के साथ 'हीं . . . हीं . . . खी . . . खी' करती रहती है। आज भी शाम के चार बजे चुके हैं, लेकिन सुबह से मिस डेला ने मुझ से बात नहीं की है।"

भँवरलाल को महसूस होता है मानो उस का सिर चकरा रहा हो और दम घुट रहा हो। उस का गला भर आया है। उसे लगता है कि डेला और माथुर के प्रति कुछ और सोचने से शायद उस की आँखों में आँसू आ जायें। इसलिए जल्दी वह कमरे से बाहर चला जाता है।

दूसरे दिन भँवरलाल फिर टोपी लगा कर दफ्तर आता है। वर्मा पूछता है, "अरे यह क्या, भँवरलाल! तुम ने तो फिर से टोपी लगाना शुरू कर दिया!"

वर्मा की बात को बीच में ही काटते हुए भँवरलाल फीकी मुसकान के साथ कहता है, "हुँ! कोई हमेशा के लिए थोड़े ही उतारी थी। गरमियों के दिनों में ही नहीं लगाता था। लेकिन अब तो सर्दी आने वाली है—नहीं?" वर्मा कोई उत्तर नहीं देता। भँवरलाल टोपी उतारता है, उस पर कबूतर के एक नन्हे पंख को चिपका देख कर अँगुली से उसे झाड़ देता है। फिर एक क्षण को तरसती निगाहों से मिस डेला की ओर देखता है और टोपी लगा काम में जुट जाता है।



एक राजनीतिज्ञ चुनाव लड़ने की तैयारी कर रहे थे। लोकप्रिय होने के लिए वे जहाँ भी कुछ लोगों को एकत्र देखते, वहीं पहुँच कर पहले चुटकुले सुनाने लगते, फिर राजनीति की बातों पर आ जाते। एक बार उन्होंने लोगों का एक झुंड देखा तो झट पहुँच गये और चुटकुले सुनाने लगे। श्रोताओं में से जब काफी देर तक कोई नहीं बोला तो उन्होंने झल्ला कर कहा, "आप लोग तो इस तरह चुप्पी साधे हुए हैं जैसे जनाजे में जा रहे हों।"

एक श्रोता ने उत्तर दिया, "जी हां यह जनाजा ही है !"

★



एक प्रदर्शनी में एक चित्रकार और एक कला-समीक्षक मिले। चित्रकार की आँखों पर पट्टी बँधी देख कर समीक्षक ने पूछा, "यह पट्टी क्यों बाँध रखी है ?"

"आँखों का आपरेशन हुआ है," उत्तर मिला।

"भगवान न करे, आँखें खराब हो गयीं तो तुम..."

"मैं समीक्षक बन जाऊंगा।"

★



डाकखाने में एक आदमी आया और बड़े तैश में पोस्ट-मास्टर से बोला, "कुछ दिनों से मेरे पास कुछ धमकी-भरे पत्र आ रहे हैं। मैं इस विषय में कुछ करना चाहता हूँ।"

"जरूर कीजिये !" पोस्ट-मास्टर ने कहा, "डाक के द्वारा किसी को धमकी देना गैरकानूनी बात है। लेकिन आप ऐसे पत्र भेजनेवालों का कुछ अता-पता बता सकते हैं ?"

"क्यों नहीं, इनकम-टैक्सवाले हैं।"

★



वकील के पास जा कर एक महिला ने पूछा, "तलाक के लिए किस आधार का होना जरूरी है ?"

"क्या आप की शादी हो चुकी है ?" वकील ने पूछा।

"जी हाँ," महिला ने कहा।

"बस, इतना ही काफी है," वकील ने उत्तर दिया।



लक्ष्मी बाबू दफ्तर से घर लौटे तो देखा कि उन का चार वर्षीय पुत्र बीड़ी मुंह में लगा कर उसे दियासलाई से जलाने का उपक्रम कर रहा है। झपट कर वे चौके में पहुंचे और पत्नी से बोले, "कुछ पता है भागवान ! तुम्हारा सपूत मुंह में बीड़ी लगा कर उसे दियासलाई से जला रहा है !"

पत्नी को धक्का-सा लगा, फिर अपने को संयत करती हुई बोली, "मैं अभी ठीक करती हूँ उसे। यह भी कोई उम्र है दियासलाई से खेलने की !"

★

एक ज्योतिर्विद अपने भाषण में बता रहे थे कि पूरे ब्रह्मांड की तुलना में अपनी पृथ्वी तो मटर के दाने-जैसी है। भाषण के बाद एक महिला ने उन से पूछा, "जब हमारी पृथ्वी इतनी छोटी है और ब्रह्मांड इतना बड़ा है तो ईश्वर हमारी तरफ कितना ध्यान देता होगा।"

ज्योतिर्विद ने उत्तर दिया, "यह तो इस बात पर निर्भर करता है कि आप कितने बड़े ईश्वर में विश्वास करती हैं।"

★

एक अध्यापक ने अपने एक शरारती छात्र की रिपोर्ट में लिखा, "यह नहीं कि वह क्लास का सब से शरारती लड़का है, दिक्कत यह भी है कि एक दिन भी स्कूल आने से नहीं चूकता।"

★

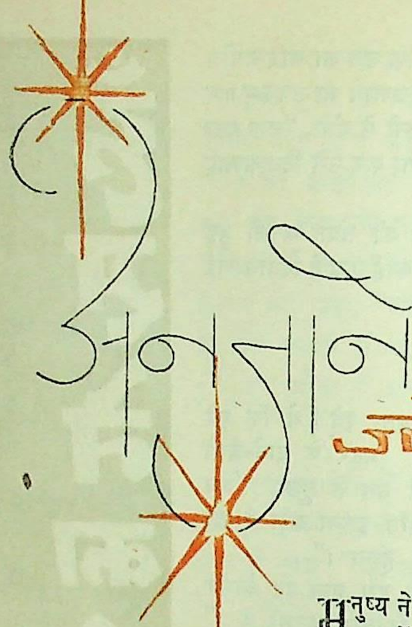
दुकान में एक ग्राहक आया और इधर-उधर देखने लगा। सेल्समैन ने पूछा, "क्या चाहिये आप को ?"

"देखिये, बात यह है कि मेरी पत्नी ने एक झुमका मँगाया है और बाजार में एक झुमका सौ रुपये का मिल रहा है। लेकिन सौ रुपये तो बहुत होते हैं।"

"वाकई सौ रुपये ज्यादा होते हैं। हमारे यहां तो साठ रुपये में मिल सकता है।"

"तो दे दीजिये," ग्राहक ने उत्सुकता से कहा। सेल्समैन "अभी आया" कह कर दूसरे सेल्समैन के पास पहुंचा और बोला, "देखो मैं ने अभी-अभी एक आदमी को साठ रुपये में एक झुमका बेचा है। जरा यह तो बताओ, यह कम्बख्त झुमका होता क्या है ?"

राबर्ट जैक्सन



अनजाने ज्योति-स्रोत

मनुष्य ने आदिकाल से ही स्वयं को अस्तित्व के प्रश्नों से घिरा पाया है । उस के अस्तित्व का स्रोत कहाँ है ? यह प्रश्न समस्त वैज्ञानिक उपलब्धियों के बावजूद अभी तक अनुत्तरित है । मनुष्य जन्म लेता है और स्वयं को एक विराट परिवेश में पाता है । तब उसे अपने ही अस्तित्व के प्रश्न नहीं घेरते, वह अपने परिवेश के बारे में भी जानना चाहता है । आखिर यह पृथ्वी, सूरज, चाँद, सितारे, ग्रह, नक्षत्र कहाँ से आ गये ? यह ब्रह्मांड क्या है ? क्यों है ? इस का आरंभ कैसे हुआ ? इस का अंत कहाँ है ?

आदिकाल से मनुष्य अपने ज्ञान-विज्ञान और विचारों के अनुसार इन प्रश्नों के उत्तर देता रहा है। आगामी पीढ़ियाँ अपने पूर्वजों के उत्तरों को जाँचती ही हैं । अपनी खोजों के द्वारा कभी उन्हें ये उत्तर गलत लगे हैं और कभी इन से नया ज्ञान प्राप्त करने में सहायता मिली है ।

खगोल-विज्ञान की परंपराएँ प्रत्येक सभ्यता और संस्कृति में मिलती हैं । ब्रह्मांड के अस्तित्व के संबंध में अनेक धारणाएँ और सिद्धांत प्रचलित हैं, जिन में से तीन आधुनिक सिद्धांत प्रमुख हैं—अपरिवर्ती

...सर ३सी-४८
रेडियो एवं प्रकाश स्रोत
...अरब प्रकाश-वर्ष
पृथ्वी तक



ब्रह्मांड की उत्पत्ति के तीन सिद्धांत

स्थिति, वृहत विस्फोट और दोलायमान स्थिति या पुनरावृत्ति के सिद्धांत।

अपरिवर्ती स्थिति का सिद्धांत यह है कि ब्रह्मांड का अस्तित्व हमेशा रहा है और यह हमेशा विस्तृत होता रहा है। इस के अनुसार हाइड्रोजन से अनेक ग्रह-नक्षत्रोंवाली व्योमगंगाएँ उत्पन्न होती हैं और आगे बढ़ती हुई निस्सीमता या अनंत में चली जाती हैं। उन का स्थान लेने के लिए नयी व्योमगंगाएँ उत्पन्न होती हैं और ब्रह्मांड एक सतत घनत्व के साथ विस्तृत होता रहता है। इस सिद्धांत के प्रबल समर्थक हैं ब्रिटिश खगोलविद फ्रेड हायल।

किंतु कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के रेडियो खगोलविद मार्टिन रैले-जैसे वैज्ञानिकों का मत है कि ब्रह्मांड की उत्पत्ति १० अरब वर्ष पूर्व घनीभूत पदार्थ में हुए एक वृहत विस्फोट के द्वारा हुई। व्योमगंगाएँ इसी विस्फोट से उत्पन्न पदार्थ-खण्ड हैं। ये व्योमगंगाएँ ब्रह्मांड के विस्तार के कारण एक-दूसरी से निरंतर दूर हटती जाती हैं—उसी तरह जैसे गुब्बारा फुलाने पर गुब्बारे की सतह पर स्थित दो बिंदु दूर हटते जाते हैं। इस सिद्धांत को मानने वाले कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि व्योमगंगाओं का पारस्परिक गुरुत्वाकर्षण इन की बाह्य गति को उलट सकता है और इन के टकराने से ब्रह्मांड समाप्त हो सकता है, किंतु अधिकांश लोगों का मत यही है कि व्योमगंगाएँ अनंत में चली जाती हैं।

पुनरावृत्ति का सिद्धांत निस्सीमता या अनंत में विश्वास नहीं करता। यद्यपि खगोलविद एलन सैंडेज और पालोमर वेधशाला के वैज्ञानिक वृहत विस्फोट की धारणा को सही मानते हैं किंतु उन के अनुसार व्योमगंगाएँ अनंत में विलीन हो जाने की अपेक्षा ८० अरब वर्ष बाद पुनः लौट आती हैं और उन की टकराहट से ब्रह्मांड समाप्त हो जाता है। पुनः नयी व्योमगंगाएँ उत्पन्न होती

हैं और पहले की भाँति यात्रा आरंभ कर देती हैं। पुनरावृत्तिवादियों के अनुसार ब्रह्मांड की उत्पत्ति को अभी १० अरब वर्ष ही बीते हैं। ७० अरब वर्ष बाद सभी व्योमगंगाएँ परस्पर टकरायेंगी और फिर नया चक्र आरंभ होगा।

ये सिद्धांत अब तक ठीक माने जाते रहे हैं किंतु कैलीफोर्निया की माउंट पालोमर वेधशाला के ३६ वर्षीय खगोलविद मार्टेन श्मित ने इन पर भारी प्रश्न-चिह्न लगा दिये हैं। उन्होंने अपनी खोज से इन सिद्धांतों को ही नहीं, नक्षत्र-विज्ञान, भौतिकी और दर्शन को भी संदेह में डाल दिया है। उन की बुद्धिमत्तापूर्ण परिकल्पनाओं और अद्भुत नये सिद्धांतों को ले कर वैज्ञानिकों में तीव्र विवाद उत्पन्न हो गया है। मार्टेन श्मित के परीक्षणों का आधार यह नहीं है कि मनुष्य चंद्रमा पर कैसे पहुँचे, यह भी नहीं कि पृथ्वी के समीपवर्ती ग्रहों पर जीवन है या नहीं, उन की जिज्ञासा तो बहुत दूरगामी है।

ब्रह्मांड के अस्तित्व संबंधी प्रश्न फिर उभर आये हैं—क्या इस ब्रह्मांड का आरंभ सचमुच कहीं से हुआ है? क्या यह ब्रह्मांड वृहत विस्फोट से ही उत्पन्न हुआ है और निरंतर विस्तृत होता जा रहा है? क्या समय और अंतरिक्ष संबंधी अब तक अर्जित ज्ञान के परे भी कुछ शक्ति-स्रोत हैं जिन की कल्पना भी मनुष्य नहीं कर पाया है? और यदि हैं तो उन अज्ञात भौतिक अभिक्रियाओं के सामने कोई भी बोधगम्य न्यूक्लीय विस्फोट बौना नहीं हो जाता?

यह कैसी खोज है? ये अज्ञात शक्ति-स्रोत क्या हैं?

युवा खगोलविद मार्टेन श्मित ने वर्षों तक रात-रात भर जाग कर माउंट पालोमर वेधशाला में स्थित विश्व की सब से बड़ी दूरबीन (२०० इंच की) से इन स्रोतों को देखा है और अनेक परीक्षणों के बाद इन के रहस्यपूर्ण गुणधर्मों का पता लगाया है।

इस दिशा में पहला महत्वपूर्ण कदम १९३१ में अमरीका की बेल टेलीफोन प्रयोगशाला के इंजीनियर कार्ल जांस्की ने उठाया था। एक दिन अकस्मात उन्होंने देखा कि बाह्य अंतरिक्ष से रेडियो-संकेत आ रहे हैं। ये संकेत ब्रह्मांड की खोज के महत्वपूर्ण साधन थे, किंतु उस समय वैज्ञानिक इन का उपयोग राडार-यंत्रों के एंटेना के सही दिशा-निर्देश और इलेक्ट्रोनिक तकनीकों के विकास में ही कर के रह गये।

द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद खगोलविदों का ध्यान इधर गया तो उन्होंने राडार-यंत्रों और दूरबीनों की सहायता से अंतरिक्ष में देखना और एक छोटी-सी घाटी पर तारों का जाल बिछा कर आकाश को छानना शुरू कर दिया। इन रेडियो खगोलविदों ने आकाश की इस छानबीन में कुछ धुँधली आकृतियाँ देखीं जो गाढ़े कुहरे में विद्युत-बल्वों के धूमिल आभास-जैसी प्रतीत होती थीं।

इन आकृतियों को स्पष्ट देखने के लिए राडार-यंत्रों के विशाल एंटेना बनाने शुरू किये ताकि उन अस्पष्ट आकृतियों से आते हुए रेडियो-संकेतों को सरलता से ग्रहण कर सकें। १९४६ में उन्होंने एक नयी तकनीक का आविष्कार किया—रेडियो-तरंगों की बाधा नापने की तकनीक! इस तकनीक में दो एंटेना पर्याप्त दूरी पर लगाये जाते हैं और दोनों के द्वारा एक ही स्रोत से रेडियो-संकेत प्राप्त करने की चेष्टा की जाती है। रेडियो

तरंगें दोनों एंटेनाओं पर थोड़े समय के अंतर से आती हैं, अतः वे एक-दूसरी के मार्ग में कुछ इस प्रकार बाधा उत्पन्न करती हैं कि स्रोत की स्थिति अधिक सही रूप में ज्ञात हो सकती है।

ज्यों-ज्यों रेडियो दूरबीनों की परिशुद्धता बढ़ती गयी, रेडियो-प्रेक्षकों ने प्रकाशीय खगोलविदों के लिए सूक्ष्मतर चीजों को देख पाना संभव कर दिया। १९४९ में खगोलविदों को इन दूरबीनों से सौर-मंडल के बाहर रेडियो-संकेतों का प्रथम दृष्टिगोचर स्रोत मिला जो पृथ्वी की व्योमगंगा के एक भग्न नक्षत्र का अवशेष था। कुछ ही समय बाद उन्होंने पृथ्वी की व्योमगंगा के बाहर प्रथम दृष्टिगोचर ज्योति-स्रोत निर्धारित किया, जो स्वयं एक व्योमगंगा थी—पृथ्वी से ५ करोड़ ज्योतिवर्ष दूर! ज्योतिवर्ष वह दूरी कहलाती है जिसे प्रकाश १,८६,००० मील प्रति सेकंड की गति से एक वर्ष में तय करता है। (लगभग ६० खरब मील)

अगले दशक में रेडियो तथा प्रकाशीय खगोल-विज्ञान ने पारस्परिक सहयोग से लगभग सौ अन्य व्योमगंगाओं का पता लगाया, जिन में रेडियो-विकिरण की अद्भुत क्षमता थी।

फिर भी ब्रह्मांड के रहस्य खुल नहीं पाये। प्रकाशीय खगोलविदों ने देखा कि रेडियो खगोलविदों द्वारा निर्धारित रेडियो-विकिरण के शक्तिशाली स्रोत अज्ञात तारकों के धुंधले संव्यूहन मात्र प्रतीत होते हैं। १९६० में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय तथा ओवेन्स वैली वेधशाला द्वारा प्रदत्त सूक्ष्म आँकड़ों के आधार पर खगोलविदों ने पता लगाया कि एक धूमिल तारे-जैसे स्रोत से शक्तिशाली रेडियो-संकेतों की एक धारा प्रवाहित हो रही है। यह चीज एक नयी उलझन बन गयी।

बाद के कुछ वर्षों में रेडियो-दूरबीनों का और विकास हुआ तो ऐसी ही तीन और धुंधली रहस्यपूर्ण चीजें दिखायी पड़ीं। यद्यपि उन के स्वरूप का ठीक पता नहीं चलता था, पर रेडियो-व्योम के शक्तिशाली स्रोतों के रूप में उन का अस्तित्व झुठलाया नहीं जा सकता था। खगोलविदों ने इन चीजों का नाम 'क्वासी-स्टेलर सोर्सेज' (रेडियो स्रोतीय तारकवत् पिंड) रख दिया, जो संक्षेप में 'कासर' हो गया। ये कासर आज खगोलविदों की खोज का सब से महत्वपूर्ण विषय बने हुए हैं।

कासरों का पता लगाने के लिए खगोलविदों ने अपने अत्यधिक महत्वपूर्ण उपकरण स्पेक्ट्रोग्राफ (वर्णक्रमलेखी) का सहारा लिया। स्पेक्ट्रोग्राफ प्रकाश को एक प्रिज्म या सूक्ष्म रेखांकित कांच की पट्टी से गुजार कर उसे अंशभूत तरंग दूरियों में विभक्त कर देता है। इस प्रकार जो वर्णक्रम प्राप्त होता है उस का फोटो लिया जा सकता है, जिस के आधार पर उस ज्योति-स्रोत के रहस्यों का पता लगाया जाता है।

इंद्रधनुष की भाँति तारकीय वर्णक्रम में भी क्रमशः सात रंग होते हैं—बैंगनी, नीला, आसमानी, हरा, पीला, नारंगी और लाल। एक सिरे का बैंगनी रंग प्रकाश की लघु तरंग दूरियों का सूचक होता है और दूसरे सिरे का लाल रंग प्रकाश की दीर्घ तरंग दूरियों का। इस इंद्रधनुषी वर्णक्रम के ऊपर कुछ गहरी-उजली खड़ी रेखाएँ भी दिखायी पड़ती हैं, जो कुछ विशेष रासायनिक तत्वों की उपस्थिति बताती हैं।

पालोमर वेधशाला में खगोलविद

एलन सैंडेज और जीस ग्रीनस्टेन ने एक कासर के धूमिल प्रकाश को स्पेक्ट्रोग्राफ से गुजार कर देखा। बड़े परिश्रम के बाद उन्हें एक धुंधला और अत्यंत सूक्ष्म वर्ण-क्रम प्राप्त हुआ जिस में सफेद और काले रंग के अलावा और कोई रंग नहीं आ सका। लेकिन इस वर्णक्रम को माइक्रोस्कोप से देखने पर उन्हें कुछ विचित्र वर्णक्रम-रेखाएँ दिखायी दीं, जो पहले कभी नहीं देखी गयी थीं। इन रेखाओं के आधार पर ग्रीनस्टेन ने यह परिकल्पना प्रस्तुत की कि कासर किन्हीं भग्न नक्षत्रों के अवशेष हैं जो अत्यंत घनीभूत और उत्तप्त हैं तथा उन में कुछ अपरिचित किंतु बहुत उत्तेजित तत्व हैं।

१९६२ में आस्ट्रेलिया के पार्केस नामक स्थान पर सिरिल हजार्ड के नेतृत्व में खगोलविदों ने एक नया परीक्षण किया। उन्होंने २१० फुट के एंटेना वाले राडार को ३ सी २७३ नामक ज्योति-स्रोत (कैम्ब्रिज की रेडियो-स्रोतों की तीसरी सूची का २७३वाँ स्रोत) पर केंद्रित किया। इस स्रोत से आते हुए रेडियो-संकेत चंद्रमा के बीच में आ जाने से रुक जाते थे और चंद्रमा के हटते ही पुनः आने लगते थे। अतः उन्होंने चंद्रमा द्वारा उत्पन्न इस बाधा का समय नोट किया और चूंकि चंद्रमा की स्थिति समय-गणना के आधार पर कभी भी मालूम की जा सकती है, इसलिए उस भ्रांतिजनक रेडियो-स्रोत की सही स्थिति मालूम करने में इस विधि से बड़ी सहायता मिली।

जब यह जानकारी मार्टेन श्मित के पास पहुँची तो इस के आधार पर वे ३ सी २७३ के चित्र उतारने में सफल हो गये। इन चित्रों से पता चला कि यह स्रोत एक गोल, धब्बेदार, तारे-जैसी चीज है जिस से एक धूमिल ज्योति-धारा निकल रही है। श्मित ने इस कासर का एक बढ़िया वर्णक्रम प्राप्त किया, किंतु अपने साथी सैंडेज और ग्रीनस्टेन की भाँति वे भी उन अपरिचित वर्णक्रम रेखाओं को देख कर उलझन में पड़ गये। लगभग छह सप्ताह तक वे इन रेखाओं का निरीक्षण करते रहे। अंत में पता लगा कि इन में से तीन रेखाएँ हाइड्रोजन-रेखाओं से मिलती-जुलती हैं। लेकिन वर्णक्रम में हाइड्रोजन की रेखाएँ नीले रंग के ऊपर होने की अपेक्षा लाल रंग पर दिखायी दे रही थीं। श्मित को यह देख कर धक्का-सा लगा। वे सोचते रह गये—क्या ये हाइड्रोजन की रेखाएँ ही हैं जो दीर्घ तरंग-दूरियों में चली गयी हैं ?

तारकीय वर्णक्रम के अवरक्त प्रदेश का अर्थ होता है दीर्घतर तरंग-दूरी। १९२९ में खगोलविद एडविन हबल ने एक सिद्धांत प्रतिपादित किया था कि कोई नक्षत्र या व्योमगंगा पृथ्वी से दूर जा रही होती है तो उस के प्रकाश की तरंग-दूरी बढ़ती जाती है। फलस्वरूप वर्णक्रम के लाल रंग में वृद्धि होती जाती है। इस क्रिया को रेड-शिफ्ट या रक्तांतरण कहते हैं।

इस सिद्धांत के आधार पर श्मित ने हिसाब लगा कर देखा कि ३ सी २७३ नामक कासर लगभग २८,००० मील प्रति सेकंड की गति से पृथ्वी से दूर भाग रहा है। उन्होंने इस कासर की दूरी १.५ अरब ज्योतिवर्ष आँकी। श्मित की इस गणना ने और नयी समस्याएँ खड़ी कर दीं, क्योंकि इतनी दूरी से तो करोड़ों नक्षत्रों वाली कोई अत्यंत उज्ज्वल व्योमगंगा भी बहुत धुंधली दिखायी देगी, जब कि यह कासर केवल ६ इंच की दूरबीन से

देखा जा सकता है !

मजे की बात यह कि सब से अधिक शक्तिशाली हाइड्रोजन-रेखाएँ इस कासर के वर्णक्रम से गायब मालूम होती थीं। किंतु यदि श्मित का सिद्धांत सही था तो ये रेखाएँ अवरक्त प्रदेश में मौजूद होनी चाहिये थीं। इस हिसाब से तो यह कासर अकल्पनीय दूरी पर था और संभावना के प्रतिकूल अधिक तीव्रता से चल रहा था। इस पर भी यह इतना उजला दिखता था जितना इस दूरी से नहीं दिखना चाहिये !

मार्टेन श्मित की इस व्याख्या के बाद खगोलविद ग्रीनस्टेन ने ३ सी ४८ कासर का वर्णक्रम प्राप्त किया तो पता चला कि यह तो ३ सी २७३ से भी तेज दौड़ रहा है। हबल के नियम के अनुसार यह कासर पृथ्वी से कोई ४ अरब ज्योतिवर्ष दूर था !

कासरों की इस तीव्र गति की जानकारी से खगोलविदों में बड़ी उत्तेजना फैली। कारण स्पष्ट था। खगोलविद जब अंतरिक्ष में देखते हैं तो वे वर्तमान में नहीं अतीत में देख रहे होते हैं। माना कि प्रकाश की गति बहुत तेज होती है, लेकिन उसे पृथ्वी तक आने में समय तो लगता ही है। जब हम सूर्य को देखते हैं तो हमें उस का ८ मिनट पहले वाला रूप दिखायी देता है, निकटतम तारे को देखते हैं तो उस का चार वर्ष पहले का रूप दिखायी देता है और पृथ्वी की निकटतम व्योमगंगा का वह रूप दिखायी देता है जो आज से २०,००,००० वर्ष पूर्व था। इस का मतलब है कि जब खगोलविद कासरों को देखते हैं तो वे अरबों वर्ष पहले देख रहे होते हैं। यह विस्तृत दृष्टि ब्रह्मांड संबंधी सिद्धांतों को परखने का सब से अच्छा साधन है।

कासरों की खोज न भौतिकविदों को एक भारी चुनौती दी है। आखिर ये छोटे-छोटे कासर इतना प्रकाश कैसे फेंकते हैं कि अरबों ज्योतिवर्षों की दूरी से दिखायी देते रहें ? यह शक्ति आती कहाँ से है ? प्रारंभिक परीक्षणों से पता चला था कि एक कासर १,००,००० ज्योतिवर्ष व्यास की एक सामान्य व्योमगंगा के पाँचवें भाग से ले कर सौवें भाग तक का हो सकता है। फिर भी यदि कासर और व्योमगंगा दोनों पृथ्वी से समान दूरी पर हों तो अपने हजारों खरब चमकीले तारों के बावजूद व्योमगंगा कासर की अपेक्षा धुंधली दिखायी देती है। कुछ कासर तो इतने छोटे हैं कि उन का व्यास मुश्किल से ९० ज्योतिदिवस होता है। खगोलीय माप के अनुसार तो यह आकार मटर के दाने-जैसा लगता है। फिर भी इतनी प्रखरता--क्यों, कैसे और कहाँ से ?

इस विषय में वैज्ञानिकों की अलग-अलग धारणाएँ हैं। अनेक बौद्धिक अटकलबाजियां चल रही हैं, जिन में से कुछेक शायद सही भी निकल सकती हैं।

फ्रेड हॉयल तथा कैलीफोर्निया इंस्टीट्यूट ऑफ टेकनोलोजी के विलियम फाउलर का सुझाव है कि ये कासर भारी-भरकम महातारक हैं जिन की न्यूक्लीय अग्नि हाइड्रोजन-इंधन की समाप्ति के कारण बुझ चुकी है। इस प्रकार के नक्षत्र अपनी गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण अपने केंद्र की ओर धसकने लगे होंगे और पदार्थ का यह स्थानांतरण ही शायद कासर के तीव्र विकिरण का कारण होगा।

स्वीडन के भौतिकविद हैनेस आल्वेन ने एक अलग ही कल्पना की है। उन का कहना है कि कण और प्रतिकण

(पार्टीकल ऐंड ऐंटी-पार्टीकल) की भाँति पदार्थ और प्रतिपदार्थ (मैटर ऐंड ऐंटी-मैटर) का होना भी संभव है। जब पदार्थ और प्रतिपदार्थ टकराते हैं तो एक-दूसरे को नष्ट कर देते हैं, पर इस क्रिया से भारी मात्रा में शक्ति उत्पन्न होती है। इस आधार पर उन का विचार है कि जब पदार्थ-व्योमगंगाएँ अपदार्थ-व्योमगंगाओं से टकराती होंगी तो कासर-जैसी शक्ति उत्पन्न होती होगी।

कुछ अन्य भौतिकविदों का मत है कि ये कासर थोड़े समय पहले किसी व्योमगंगा में हुए भारी विस्फोट के फलस्वरूप उस से बाहर फिंक गये हैं। पृथ्वी से दूर जाते हुए जब ये प्रकाश की गति प्राप्त कर लेते हैं तो वर्णक्रम में रक्तांतरण दिखायी देना स्वाभाविक है, किंतु ये पृथ्वी से अधिक दूर नहीं होंगे। शायद इन की प्रखरता का यही कारण है।

किंतु मार्टेन श्मित तर्क द्वारा इस कल्पना को गलत ठहराते हैं। उन का कहना है—

"पहली बात तो यह है कि किसी व्योयगंगा में इतनी शक्ति नहीं है कि इतने अधिक घनत्व की चीजों को विस्फोट के द्वारा स्वयं से बाहर फेंक सके। दूसरे, यदि यह विस्फोट हाल ही में हुआ होता और कासर पृथ्वी के निकट होते तो इन में से कोई कासर पृथ्वी की ओर आता हुआ भी दिखायी देता। तब उस का प्रकाश वर्णक्रम के लाल सिरे की ओर जाने की अपेक्षा नीले रंग की ओर जाता दिखायी देता। लेकिन अब किसी कासर का प्रकाश नीले रंग की ओर दिखायी नहीं दिया है।"

मार्टेन श्मित की खोज के बाद अनेक प्रमुख खगोलविद कासर-ज्ञान के लिए रात-रात भर परीक्षण करते रहे हैं। दिसंबर १९६५ में कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के खगोलविद मार्गरेट बर्बिज ने ०१०६-।-०१ नामक रक्तांतरणमय कासर का पता लगाया, जो ज्योति की ८१.२ प्रतिशत गति से चल रहा था। जनवरी, १९६६ में श्मित को एक और रक्तांतरणमय कासर (१११६-।-१२) का पता लगा जो उस से भी बड़ा है और फलतः अधिक घनत्व का है। इस प्रकार अब तक ९० कासरों की खोज की जा चुकी है जिन में से ३० के रक्तांतरण का विश्लेषण किया जा चुका है। श्मित का विचार है कि अभी शायद ऐसे हजारों कासर और मिलेंगे।

यदि हबल का नियम ठीक है तो दूरतम कासर पृथ्वी से ८ अरब ज्योतिवर्ष से भी अधिक दूर होगा। इतनी दूरी की कल्पना करना सहज नहीं है। मार्टेन श्मित का कहना है—

"हम नहीं जानते कि हबल का नियम खगोलीय दूरियों के विषय में लागू होता है या नहीं, लेकिन इतना तय है कि यदि यह ब्रह्मांड १० अरब वर्ष पुराना है तो दूरतम कासर से आता हुआ प्रकाश, जिसे हम लोग आज देख रहे हैं, जब दूरतम कासर से चला होगा तब शायद हमारी पृथ्वी और सौर-मंडल का जन्म भी नहीं हुआ होगा। इसलिए हम निश्चित रुप से कुछ नहीं जानते कि इन ८ अरब ज्योतिवर्षों में इस कासर ने क्या-क्या किया और यह कहाँ-कहाँ गया। हो सकता है इस समय यह एक व्योयगंगा हो या केवल किसी चीज का दहित अवशेष।"

यदि आप को कोई ऐसा आदमी मिले जिस के चेहरे पर मुसकान न हो तो उसे अपनी मुसकान दे दीजिये।

हरिमोहनलाल श्रीवास्तव



पृथ्वीराज और तारा

पृथ्वीराज के नाम से चकित होने की आवश्यकता नहीं, और न ही इस निराशा का कोई कारण है कि आप को कोई घिसी-पिटी कहानी फिर से सुनायी जायेगी। संयोगिता के पृथ्वीराज नहीं, तारा के पृथ्वीराज हमारे चरित-नायक हैं। हमारे ये नायक सीसौदिया वंश के वीर थे जो पृथ्वीराज चौहान या राय पिथौरा-जैसे वीर तो थे ही, कुछ बातों में उन से भी बढ़ कर थे। किंतु इतिहास-कारों का पक्षपात कहिये अथवा हमारा दुर्भाग्य कि इस वीर नायक की चर्चा यथोचित न हो सकी।

द्वारपाल के वेश में छिपे बैठे पृथ्वीराज चौहान स्वयंवर में से संयोगिता को सफलतापूर्वक हरण कर ले गये थे, पर उन के प्रणय ने, जिस के कारण संयोगिता की तुलना यूनान की हेलेन और पृथ्वीराज चौहान की तुलना ट्राय के राजकुमार से की जाती है, देश में फूट के बीज बो दिये। इस के विपरीत पृथ्वीराज सीसौदिया ने अपनी प्रेयसी तारा के पिता की शर्त का पूर्ण पालन करते हुए सच्चे स्वयंवर का स्वरूप नष्ट नहीं होने दिया और तारा का पाणिग्रहण किया।

पृथ्वीराज चौहान एवं पृथ्वीराज सीसौदिया में जहाँ कुछ समानताएँ थीं वहाँ विभिन्नताएँ भी बहुत थीं। वीर राणा कुंभा ने मालवा के मुहम्मद खिलजी को छह महीने तक बंधन में रखा और अपनी विजय के उपलक्ष्य में एक विशाल स्तम्भ की स्थापना की। राणा कुंभा के पुत्र रायमल के तीन पुत्र हुए—साँगा, पृथ्वीराज और जयमल। साँगा या संग्राम-सिंह ने बाबर से संग्राम किया था। अस्सी घावों से युक्त अपने शरीर में पितामह कुंभा का विक्रम सँजोये साँगा ने भारतीय इतिहास में अभूतपूर्व स्थान बना लिया है। दूसरे पुत्र पृथ्वीराज को भी कर्नल टाड के शब्दों में 'भारत का एक अनुपम वीर माना जाता था।' तीसरे पुत्र जयमल की वीरता भी असंदिग्ध थी।

(पार्टीकल एंड ऐंटी-पार्टीकल) की भाँति पदार्थ और प्रतिपदार्थ (मैटर एंड ऐंटी-मैटर) का होना भी संभव है। जब पदार्थ और प्रतिपदार्थ टकराते हैं तो एक-दूसरे को नष्ट कर देते हैं, पर इस क्रिया से भारी मात्रा में शक्ति उत्पन्न होती है। इस आधार पर उन का विचार है कि जब पदार्थ-व्योमगंगाएँ अपदार्थ-व्योमगंगाओं से टकराती होंगी तो कासर-जैसी शक्ति उत्पन्न होती होगी।

कुछ अन्य भौतिकविदों का मत है कि ये कासर थोड़े समय पहले किसी व्योमगंगा में हुए भारी विस्फोट के फल-स्वरूप उस से बाहर फिंक गये हैं। पृथ्वी से दूर जाते हुए जब ये प्रकाश की गति प्राप्त कर लेते हैं तो वर्णक्रम में रक्तां-तरण दिखायी देना स्वाभाविक है, किंतु ये पृथ्वी से अधिक दूर नहीं होंगे। शायद इन की प्रखरता का यही कारण है।

किंतु मार्टेन श्मित तर्क द्वारा इस कल्पना को गलत ठहराते हैं। उन का कहना है—

"पहली बात तो यह है कि किसी व्योमगंगा में इतनी शक्ति नहीं है कि इतने अधिक घनत्व की चीजों को विस्फोट के द्वारा स्वयं से बाहर फेंक सके। दूसरे, यदि यह विस्फोट हाल ही में हुआ होता और कासर पृथ्वी के निकट होते तो इन में से कोई कासर पृथ्वी की ओर आता हुआ भी दिखायी देता। तब उस का प्रकाश वर्णक्रम के लाल सिरे की ओर जाने की अपेक्षा नीले रंग की ओर जाता दिखायी देता। लेकिन अब किसी कासर का प्रकाश नीले रंग की ओर दिखायी नहीं दिया है।"

मार्टेन श्मित की खोज के बाद अनेक प्रमुख खगोलविद कासर-ज्ञान के लिए रात-रात भर परीक्षण करते रहे हैं। दिसंबर १९६५ में कैलीफोर्निया विश्व-विद्यालय के खगोलविद मार्गरेट बर्बिज ने ०१०६-१-०१ नामक रक्तांतरणमय कासर का पता लगाया, जो ज्योति की ८१.२ प्रतिशत गति से चल रहा था। जनवरी, १९६६ में श्मित को एक और रक्तांतरणमय कासर (१११६-१-१२) का पता लगा जो उस से भी बड़ा है और फलतः अधिक घनत्व का है। इस प्रकार अब तक ९० कासरों की खोज की जा चुकी है जिन में से ३० के रक्तांतरण का विश्लेषण किया जा चुका है। श्मित का विचार है कि अभी शायद ऐसे हजारों कासर और मिलेंगे।

यदि हबल का नियम ठीक है तो दूरतम कासर पृथ्वी से ८ अरब ज्योति-वर्ष से भी अधिक दूर होगा। इतनी दूरी की कल्पना करना सहज नहीं है। मार्टेन श्मित का कहना है—

"हम नहीं जानते कि हबल का नियम खगोलीय दूरियों के विषय में लागू होता है या नहीं, लेकिन इतना तय है कि यदि यह ब्रह्मांड १० अरब वर्ष पुराना है तो दूरतम कासर से आता हुआ प्रकाश, जिसे हम लोग आज देख रहे हैं, जब दूरतम कासर से चला होगा तब शायद हमारी पृथ्वी और सौर-मंडल का जन्म भी नहीं हुआ होगा। इसलिए हम निश्चित रुप से कुछ नहीं जानते कि इन ८ अरब ज्योतिवर्षों में इस कासर ने क्या-क्या किया और यह कहाँ-कहाँ गया। हो सकता है इस समय यह एक व्योमगंगा हो या केवल किसी चीज का दहित अवशेष।"

यदि आप को कोई ऐसा आदमी मिले जिस के चेहरे पर मुसकान न हो तो उसे अपनी मुसकान दे दीजिये।

हरिमोहनलाल श्रीवास्तव



पृथ्वीराज और तारा

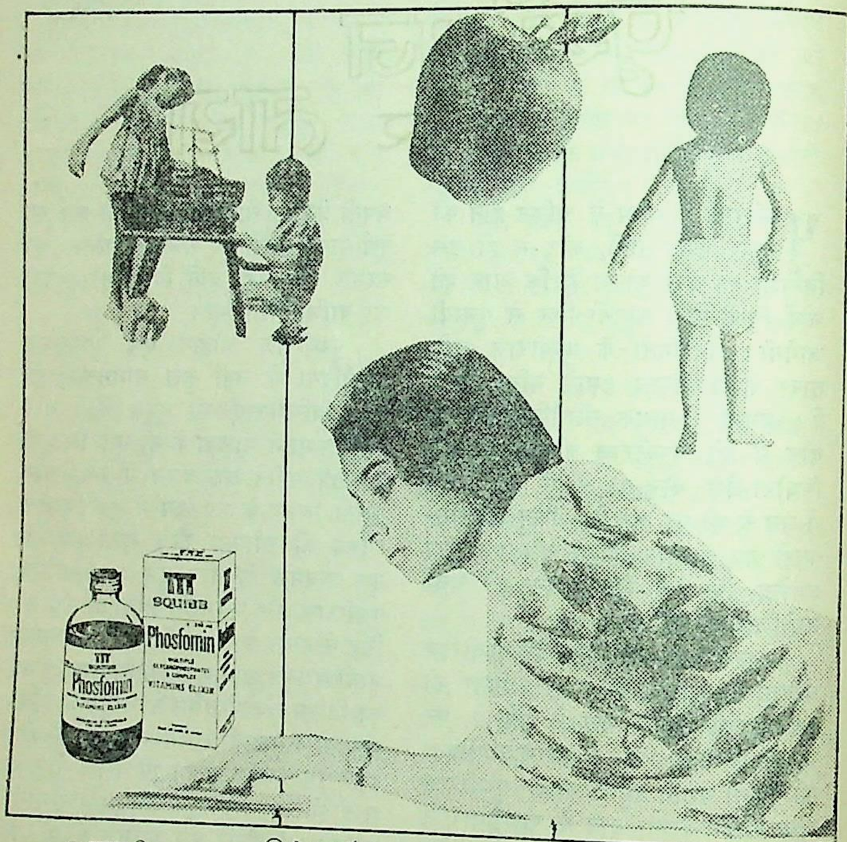
पृथ्वीराज के नाम से चकित होने की आवश्यकता नहीं, और न ही इस निराशा का कोई कारण है कि आप को कोई घिसी-पिटी कहानी फिर से सुनायी जायेगी। संयोगिता के पृथ्वीराज नहीं, तारा के पृथ्वीराज हमारे चरित-नायक हैं। हमारे ये नायक सीसौदिया वंश के वीर थे जो पृथ्वीराज चौहान या राय पिथौरा-जैसे वीर तो थे ही, कुछ बातों में उन से भी बढ़ कर थे। किंतु इतिहास-कारों का पक्षपात कहिये अथवा हमारा दुर्भाग्य कि इस वीर नायक की चर्चा यथोचित न हो सकी।

द्वारपाल के वेश में छिपे बैठे पृथ्वीराज चौहान स्वयंवर में से संयोगिता को सफलतापूर्वक हरण कर ले गये थे, पर उन के प्रणय ने, जिस के कारण संयोगिता की तुलना यूनान की हेलेन और पृथ्वीराज चौहान की तुलना ट्राय के राजकुमार से की जाती है, देश में फूट के बीज बो दिये। इस के विपरीत पृथ्वीराज सीसौदिया ने अपनी प्रेयसी तारा के पिता की शर्त का पूर्ण पालन करते हुए सच्चे स्वयंवर का स्वरूप नष्ट नहीं होने दिया और तारा का पाणिग्रहण किया।

पृथ्वीराज चौहान एवं पृथ्वीराज सीसौदिया में जहाँ कुछ समानताएँ थीं वहाँ विभिन्नताएँ भी बहुत थीं। वीर राणा कुंभा ने मालवा के मुहम्मद खिलजी को छह महीने तक बंधन में रखा और अपनी विजय के उपलक्ष्य में एक विशाल स्तम्भ की स्थापना की। राणा कुंभा के पुत्र रायमल के तीन पुत्र हुए—साँगा, पृथ्वीराज और जयमल। साँगा या संग्राम-सिंह ने बाबर से संग्राम किया था। अस्सी घावों से युक्त अपने शरीर में पितामह कुंभा का विक्रम सँजोये साँगा ने भारतीय इति-हास में अभूतपूर्व स्थान बना लिया है। दूसरे पुत्र पृथ्वीराज को भी कर्नल टाड के शब्दों में 'भारत का एक अनुपम वीर माना जाता था।' तीसरे पुत्र जयमल की वीरता भी असंदिग्ध थी।

सारे परिवार के स्वास्थ्य के लिए—फ़ॉसफ़ोमिन®

फ़ॉसफ़ोमिन-फलों के ज़ायकेवाला, हरे रंग का विटामिन टॉनिक है। इसमें विटामिन 'बी' कॉम्प्लेक्स है, साथ ही कई तरह के ग्लिसियरो-फ़ॉस्फ़ेट भी हैं ...जिनके कारण आपका परिवार शक्तिशाली, प्रफुल्लित और निरोग रहता है। फ़ॉसफ़ोमिन घर में रखिए। फ़ॉसफ़ोमिन के सेवन से थकावट और कमज़ोरी नहीं रहती। फ़ॉसफ़ोमिन लेने से खोयी हुई ताक़त लौट आती है; भूख फिर से लगने लगती है; अधिक काम करने की क्षमता बढ़ती है और शरीर की रोग प्रतिरोध-क्षमता अधिक होती है। सारे परिवार के स्वास्थ्य का रहस्य—फ़ॉसफ़ोमिन।



SQUIBB® III®

® ई. आर. स्क्विब एण्ड सन्स इन्कार्पोरेटेड का रजिस्टर्ड ट्रेडमार्क है। करमचन्द प्रेमचन्द प्राइवेट लि. को इसे उपयोग करने का लायसेन्स प्राप्त है।

SARABHAI CHEMICALS

Shilpi SC 281 A Hin

किंतु ये तीन वीर हिल-मिल कर न रह सके। उत्तराधिकार के लिए परस्पर लड़ने के बजाय यदि तीन दिशाओं में अलग-अलग जा कर दिग्विजय करने की सुमति होती तो निश्चय ही इस प्रायद्वीप का इतिहास कुछ दूसरा होता। टाड ने लिखा है—'यदि ये तीनों भाई मिल कर जननी जन्म-भूमि का हित करते, तो न जाने आज भारत का भाग्य-चक्र किस ओर फिरा होता! परंतु भारत-भूमि के दुर्भाग्य में तो यवनों की अधीनता लिखी थी..."

पृथ्वीराज की प्रणय-गाथा का प्रारंभ अन्हलवाड़ापट्टन के चालुक्य वंश में उत्पन्न राय शूरथान की विपत्ति-कहानी से होता है। किसी का दुर्भाग्य दूसरे के अभ्युदय की सूचना देने का कारण भी बन जाता है! परिस्थितियों से बाध्य हो शूरथान को तोड़ातंक में और फिर बेदनौर में आश्रय लेना पड़ा। परिस्थितिवश उस की पुत्री तारा को बाल्यकाल से ही संघर्ष का पाठ सीखना पड़ा।

परम सुंदरी तारा, जो बलवान सोलंकी कुल की कमलिनी थी, अभाव और चिंता में पल कर बड़ी हुई। बड़े-बूढ़ों की कीर्ति-कहानियाँ सुन-सुन कर सौंदर्य की यह मूर्ति बाँके वीरत्व से भर कर कुछ और भी निखार पा गयी। घुड़सवारी और धनुर्विद्या के अभ्यास में पारंगत हो वह अपने वृद्ध पिता का आशा-केंद्र बन गयी! पुत्र के अभाव में वीरांगना पुत्री ही आकांक्षाओं की प्रतिमूर्ति दिखायी दी। शूरथान ने प्रतिज्ञा की— "यवनों से जो भी राजपूत तोड़ातंक का उद्धार कर सकेगा, वही तारा से जयमाल पहनने का अधिकारी होगा।"

जब तारा की ख्याति समस्त राजस्थान में फैल रही थी और उस के अपूर्व रण-विक्रम से राजस्थानी युवक मुग्ध हो रहे थे तो वीर जयमल अपना प्रेम-प्रस्ताव ले कर तारा के समक्ष उपस्थित हुआ। तोड़ातंक के उद्धार की प्रतिज्ञा आड़े आ गयी। जयमल झिझकने वाला नहीं था—उस ने प्रण के निर्वाह का आश्वासन भी दे डाला। किंतु हृदयहारी सौंदर्य ने कठोर प्रतिज्ञा की सुधि बिसरा कर जयमल को प्रेरित किया कि वह तारा पर तोड़ातंक से भी पहले अपना आधिपत्य जमा सके। शूरथान के बूढ़े रोष ने जयमल के प्राण हर लिये और चारणों के अनुसार —"जयमल के भाग्याकाश के लिए तारा अनुकूल तारा न हुई।"

किंतु दैव ने तो राणा के घराने से तारा का गठबंधन लिख रखा था—कुछ दूसरे ढंग से ही। राणा रायमल को सोलंकी सरदार के प्रति उकसाने का प्रयास विफल हुआ। उदार और न्यायपरायण राणा ने अपने सामंतों से स्पष्ट कह दिया "जयमल ने विपत्तिग्रस्त राजपूत का अपमान करते हुए अपनी करनी का फल पा लिया! फिर प्रतिशोध कैसा!" किंतु निर्वासित पृथ्वीराज का अदम्य शौर्य जब मीनाओं का दमन कर अपने सुयश का विस्तार करने लगा, तो प्रसन्न हो कर रायमल ने भी पृथ्वी बेटे को बुला भेजा। राजकुमार की शूरता ने तारा के हृदय में भी घर कर लिया। उधर पृथ्वीराज भी इस सुंदरी के प्रति आकर्षित हो उठे। तारा ने मन ही मन जिन्हें अपने प्राण सौंप दिये वे पृथ्वीराज शूरथान से भाई की मौत का बदला जमाई बन कर लेने के लिए आकुल हो उठे।

सोलंकी सरदार के प्रण को पूरा करने के लिए और तारा का वरण कर के उसे सीसौदिया राजवंश में ले आने के लिए

पृथ्वीराज की भुजाओं में पर्याप्त बल था। टेक निभाने के लिए उन के सौंदर्य-प्रेम में जयमल से कहीं अधिक धैर्य था।

पृथ्वीराज अपनी प्रिया से भेंट करने बेदनौर चल पड़े। राव शूरथान ने उन का अच्छा मान किया। इस आदर-सत्कार से कहीं अधिक संदेश मनमोहिनी तारा के मौन संकेतों ने दिया। पुलकित हो पृथ्वीराज ने शूरथान को वचन दिया—"आप देखेंगे कि एक सप्ताह में तोड़ातंक में यवनों का नाम न रहेगा।"

अभियान के लिए प्रस्थान करते समय पृथ्वीराज ने एकांत पा तारादेवी से कहा, "सुंदरी, तुम्हें प्राप्त करने की आशा ले कर मैं शत्रु को दो-दो हाथ दिखाने जा रहा हूं। निराश न करना।"

तारा ने कहा, "यवनों के संहार का जो कठोर व्रत आप ने लिया है, उस की पूर्ति में ही मेरी समस्त आशाएँ हैं। अनेक कष्ट सहते हुए मैं ने यह हृदय आप के श्रीचरणों के लिए ही सहेज रखा है। मुझे तो पूर्ण विश्वास है कि आप की सबल भुजाएँ म्लेच्छ के अधिकार से पितृभूमि तोड़ातंक को त्राण दिलायेंगी और आप सच्चे राजपूत का प्रमाण दे सकेंगे। अनुमति दीजिये कि मैं भी इस अभियान में साथ रह कर अपने को आप की सहधर्मिणी सिद्ध कर सकूं।"

प्रेम से रोमांचित पृथ्वीराज ने तारा को सहर्ष अपने साथ लिया। वह रणचंडी पुरुषों के वर-वेश से सुसज्जित हो जब अपने प्रियतम के साथ प्रतिकार के लिए चली, तो स्वर्ग-सुख का भोग करने वाले राजपूतों को अपने प्रणय में अपूर्णता की अनुभूति अवश्य हुई होगी।

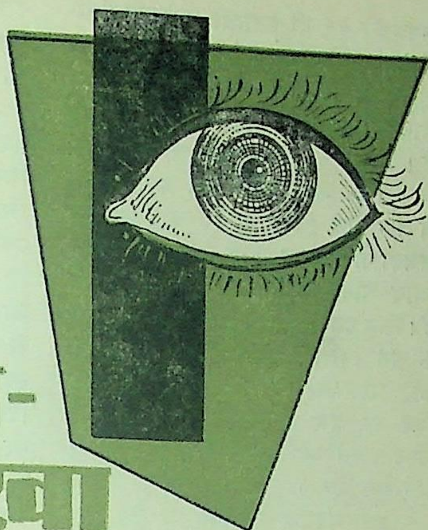
केवल पाँच सौ परखे हुए सिपाहियों के साथ जब सीसौदिया वीर तोड़ातंक के राजमहलों के समक्ष सहसा आ खड़ा हुआ, तो अफगान सरदार हतबुद्धि हो गया। मुहर्रम की तैयारियों में व्यस्त यवन रक्षकों के पास झंझा के इस प्रबल वेग को रोक रखने की सामर्थ्य न थी। बरामदे में खड़े सरदार पर तारा ने ताक कर एक तीर चला ही तो दिया। तुरंत विद्युत-गति से पृथ्वीराज ने भी एक भयंकर शूल चला कर उस का काम तमाम कर दिया।

मार-काट करते राजपूत सैनिक उल्लासपूर्वक आगे बढ़ते चले गये। किंतु तोरण-द्वार पर एक उन्मत्त हाथी सूंड़ हिला-हिला कर चुनौती दे रहा था। तारा ने फरसे से एक प्रहार किया और वह गजराज सूंड़ खो कर भाग निकला।

जीवन से हताश हो कर यवन सेना ने पृथ्वीराज पर संगठित रूप में आक्रमण किया। राजकुमार ने एक-एक को खदेड़ कर मार गिराया।

प्रतिज्ञा पूरी हुई और शूरथान ने अपनी वीरांगना पुत्री वीरवर पृथ्वीराज को आनंद और उल्लास के वातावरण में सौंप दी। पृथ्वीराज ने भरपूर गौरव प्राप्त किया, पर उन का जीवन संघर्ष के कंटकों में ही उलझने को था। चारिणीदेवी की दासी ने उन के बड़े भाई साँगा और चाचा सूरजमल के पक्ष में उत्तराधिकार की जो भविष्यवाणी की थी, उसे असफल कर देने के लिए वे सतत संघर्ष करते रहे। उन की बहिन को यातना देने वाले सिरोही के उन के बहनोई ने उन के साथ विश्वासघात कर उन्हें विषाक्त लड्डू खिला दिये।

अंतिम समय में तारा पति से साक्षात्कार न कर सकी। किंतु उसे देर नहीं लगी—पृथ्वीराज की निर्जीव देह को हृदय से सटा कर वह चिता पर जा सोयी। ●



नयन-झरोखा

बिल डैविडसन

आप झूठ बोल सकते हैं, आप की आँखें नहीं!

अब तक आप निश्चित थे कि आप इतने अभिनय-कुशल हैं कि बड़े से बड़ा झूठ बोलेंगे और चेहरे पर एक शिकन भी ऐसी नहीं आने देंगे कि झूठ पकड़ा जाये। किंतु अब यह अभिनय-कौशल काम नहीं देगा। विज्ञान आप के मस्तिष्क की उस कोठरी का पता पा गया है जहाँ आप अब तक हर झूठ को छिपा कर रखते रहे हैं। उस कोठरी का दरवाजा आप की आँखों में है—आप की पुतलियों में, जिन से विज्ञान अंदर झाँक सकता है!

विज्ञान की इस नयी धारा का नाम है 'प्यूपिलोमेट्रिक्स'। इस के जन्मदाता हैं शिकागो विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान-विभाग के अध्यक्ष ४९ वर्षीय डा. हैस।

आँख और मस्तिष्क का संबंध पहली बार डा. हैस को ही ज्ञात हुआ हो, ऐसी बात नहीं। साहित्य में तो न जाने कब से आँखों के भाव पढ़ कर पात्रों की मनोदशा का चित्रण किया जाता रहा है, किंतु वैज्ञानिक रूप से इस धारणा का प्रतिपादन

सर्वप्रथम १९ वीं शताब्दी में प्रकृति-वैज्ञानिक चार्ल्स डार्विन ने किया। डार्विन का कहना था कि आँखों का फैलना-सिकुड़ना मानवीय भावनाओं के आधार पर होता है। लगभग ६० वर्ष पूर्व एक जरमन वैज्ञानिक ने भी इस विषय में कुछ प्रयोग किये थे और सिद्ध किया था कि कोई समस्या अथवा गणित का कोई प्रश्न हल करते समय व्यक्ति की पुतलियाँ चौड़ी हो जाती हैं। किंतु इस के बाद आँखों और मस्तिष्क के इस विचित्र संबंध पर १९६० तक कोई खोज नहीं हुई। तब अचानक एक दिन डा. हैस के सामने इस विषय में खोज करने की अमित संभावनाओं का द्वार खुल पड़ा।

हुआ यह कि एक दिन डा. हैस रात को सोने से पहले कुछ जानवरों के चित्र देख रहे थे। उन में से एक चित्र अत्यंत सुंदर था। डा. हैस उस चित्र को देख रहे थे और उन की पत्नी पास बैठी हुई उन के चेहरे की ओर देख रही थी। अचानक पत्नी ने कहा, "शायद इस बल्ब की रोशनी आप के लिए कम रहती है। आप की आँखों की पुतलियाँ बहुत चौड़ी हो रही हैं।"

डाक्टर ने कहा, "ऐसी तो कोई बात नहीं। रोशनी काफी है—सौ वाट का बल्ब है!"

"कुछ भी हो, तुम्हारी पुतलियाँ जरूर चौड़ी हो रही हैं," पत्नी ने फिर कहा और सोने चली गयी। लेकिन डा. हैस को नींद नहीं आयी। वे इस बात का कारण सोचते रहे और अचानक उन के मस्तिष्क में डार्विन की वह बात कौंध गयी—"आँखों का फैलना-सिकुड़ना मानवीय भावनाओं के आधार पर होता है।" बात सामान्य थी, डा. हैस चाहते तो इतना ही सोच कर छोड़ देते, किंतु उन के मन में तो इस कथन की सचाई जानने की उत्कट इच्छा उभर आयी थी।

अगले दिन वे विश्वविद्यालय की प्रयोगशाला में पहुँचे। उन्होंने कुछ चित्र लिये और कार्डों पर चिपका लिये। इन चित्रों में कुछ साधारण दृश्य-चित्र थे और एक नग्न-चित्र, जो एक पत्रिका से काटा था। अन्य चित्रों के साथ नग्न-चित्र को मिला कर डा. हैस ने कार्डों को ताश के पत्तों की तरह फेंट लिया और अपने सहयोगी जिम पाल्ट को बुला कर उसे दिखाने लगे। पाल्ट की नजर चित्रों पर थी और डा. हैस की नजर पाल्ट की पुतलियों पर। अचानक एक चित्र को देख कर पाल्ट की पुतलियाँ चौड़ी हो गयीं। डाक्टर ने देखा, यह चित्र वही नग्न-चित्र था जो उन्होंने जान-बूझ कर चुना था।

अब डा. हैस को लगा कि वास्तव में कुछ बात है और इस का पता लगाया जाना चाहिये। उन्होंने जिम पाल्ट की सहायता से प्रयोग करने प्रारंभ किये और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यदि एक 'मूवी' कैमरे से पुतलियों के चित्र लिये जायें तो उन के आकार का अंतर अच्छी तरह जाँचा-परखा जा सकता है। फलस्वरूप उन्होंने अनेक प्रयोग किये और एक उपकरण बनाने में सफल भी हो गये।

यह उपकरण दो फुट लंबा एक काला डब्बा है जिस में एक ओर लगे परदे पर फोटो-चित्र लगाये जाते हैं और दूसरी ओर से वह व्यक्ति उन चित्रों को देखता है जिस की पुतलियों की परीक्षा की जाती है। पुतलियों का फोटो लेने के लिए एक कैमरा भी लगा होता है, जो

सामने से फोटो नहीं लेता बल्कि एक शीशे में से फोटो खींचता है ताकि देखने-वाला कैमरे के प्रति सचेत न हो जाये। इस उपकरण को 'प्यूपिल रेस्पांस एपेरेटस' कहते हैं।

जिस व्यक्ति की परीक्षा की जाती है उस से कुछ प्रश्न पूछे जाते हैं ताकि उस की रुचियों और भावनाओं का कुछ आभास हो सके। इस जानकारी के आधार पर चित्र छाँटे जाते हैं और



उपकरण में लगा कर संबंधित व्यक्ति को दिखाये जाते हैं। उन चित्रों को देखने पर पुतली में आये परिवर्तनों को कैमरा नोट करता जाता है। बाद में कैमरे द्वारा लिये गये चित्रों को बीस गुना बड़ा कर के इतनी बारीकी से जाँच की जाती है कि १।२० मिलीमीटर का अंतर भी पकड़ में आ जाता है।

डा. हैस ने अपने 'प्यूपिल रेस्पांस एपेरेटस' के द्वारा प्रयोग आरंभ किये तो कई मनोरंजक बातें सामने आयीं। डा. हैस ने एक महिला पर प्रयोग करने से पहले उस से पूछा कि आप को आधुनिक चित्रकला कैसी लगती है ? महिला ने उत्तर दिया, "मुझे आधुनिक चित्रकला बहुत पसंद है।" डा. हैस ने कई चित्र लिये, जिन में कुछ तो आधुनिक चित्रकला की कृतियों के थे और कुछ प्राचीन चित्रकला के। महिला की आँखों के सामने सब चित्रों को रख कर उस की पुतलियों की जाँच की गयी तो पता चला कि उसे आधुनिक चित्र बिलकुल पसंद नहीं थे। उन्हें देख कर उस की पुतलियाँ सिकुड़ जाती थीं और पुराने ढंग के चित्रों को देख कर फैल जाती थीं। बाद में महिला अपने झूठ पर काफी लज्जित हुई।

ऐसे ही अनेक प्रयोगों के आधार पर डा. हैस ने यह प्रमाणित किया कि उन की यह खोज बहुत उपयोगी हो सकती है। विशेषत: पुलिस को अपराधियों का पता लगाने में इस से बड़ी सहायता मिलेगी। अपराधी व्यक्ति को पहले तो कुछ सामान्य चित्र दिखाये जाते हैं जिन का उस के अपराध से कोई संबंध नहीं होता। इस के बाद उसे उस घटना से मिलते-जुलते चित्र दिखाये जाते हैं जिस में शामिल होने का आरोप उस व्यक्ति पर होता है। यदि उन चित्रों को देख कर उस की पुतलियों में कोई प्रतिक्रिया नहीं होती तो यह समझा जाता है कि वह उस घटना से संबद्ध नहीं है। इस के विपरीत, प्रतिक्रिया होने पर संदेह को एक आधार प्राप्त हो जाता है कि व्यक्ति किसी न किसी रूप में घटना से संबद्ध अवश्य है।

अपराधियों का पता लगाने के लिए

ही नहीं, 'प्यूपिलोमेट्रिक्स' का प्रयोग अन्य मानवोपयोगी कार्यों के लिए किया जा सकता है। उदाहरण के लिए औषधों के परीक्षण की ही बात लीजिये। विषैली और खतरनाक दवाओं का प्रयोग पहले जानवरों पर किया जाता है, लेकिन बेचारे मूक पशु उस औषध के प्रभाव को व्यक्त नहीं कर सकते कि उन्हें क्या अनुभव हो रहा है। उन के इस अनुभव को जानने के लिए डा. हैस का यह उपकरण बड़ा सहायक सिद्ध हुआ है। मान लीजिये किसी औषध का प्रयोग एक बिल्ली पर किया जाता है तो बिल्ली को प्रयोग से पहले 'प्यूपिल रेस्पांस एपेरेटस' द्वारा जाँच लिया जाता है कि चूहों की तसवीर दिखाने पर उस की आँखों की पुतलियों में कितना परिवर्तन होता है। औषध देने के बाद बिल्ली को फिर वही चित्र दिखाया जाता है। यदि उस की पुतलियाँ पहले की ही तरह बड़ी हो जाती हैं तो इस का अर्थ है कि उस पर औषध का प्रभाव नहीं पड़ा है। विपरीत स्थिति में प्रभाव माना ही जायेगा।

इसी प्रकार छोटे बच्चों की, जो बोल नहीं सकते, जाँच में भी यह उपकरण सहायक होता है। उन की अव्यक्त बीमारियों का निदान इस उपकरण द्वारा बड़ी सरलता से हो सकता है।

इस में संदेह नहीं कि इस उपकरण का विकास होने पर मनोवैज्ञानिकों, मानसिक चिकित्सकों, डाक्टरों और पुलिस को काफी लाभ होगा, किंतु डा. हैस इस के कुपरिणामों से भी अनभिज्ञ नहीं हैं। उन का कहना है कि यदि यह उपकरण गलत लोगों के हाथों में चला गया तो इस से हानियाँ भी हो सकती हैं। मान लीजिये कुछ बदमाशों के पास यह उपकरण हो और वे किसी पुलिस-अफसर या गुप्तचर को पकड़ लें तो संभव है पुलिस और सरकार के सारे भेद उन्हें मालूम हो जायें।

इस संबंध में डा. हैस कभी-कभी एक मनोरंजक चुटकुला सुनाया करते हैं कि वे जिस दिन प्रयोगशाला में काफी मेहनत करने के बाद थकन से चूर घर पहुँचते हैं तो उन की पत्नी उन की आँखों में झाँकती है और यदि उसे उन की पुतलियाँ छोटी दिखायी देती हैं तो शिकायत करती है कि तुम मुझे अब बिलकुल प्यार नहीं करते।

मजिस्ट्रेट: तुम फिर यहाँ लाये गये?
अभियुक्त: हाँ हुजूर!
मजिस्ट्रेट: क्यों लाये गये हो?
अभियुक्त: मुझे नहीं मालूम हुजूर! दो पुलिसवाले मुझे पकड़ लाये।
मजिस्ट्रेट: मैं जानता हूँ, वही पुरानी बात होगी। वही शराब पी कर...
अभियुक्त: बिलकुल ठीक हुजूर! दोनों शराब पिये हुए थे।

शाम से शाम तक

पाँच मिनट में घड़ी में दस बजे की घंटियाँ गूँजेंगी। २४ अप्रैल, १९४२ की सुंदर, सुखद, बहार की शाम।

मैं तेज कदमों से, किसी बड़ी उम्र के व्यक्ति के रूप में, जरा-सा लंगड़ाता हुआ चल रहा हूँ। दस बजे कर्फ्यू शुरू होने से पहले मैं जेलीनेक के घर पहुँच जाना चाहता हूँ। वहाँ मेरा साथी माइरेक मेरी प्रतीक्षा कर रहा है। मैं जानता हूँ कि इस बार न वह मुझे कोई खास बात बताने वाला है, न मैं ही उसे। पर नियत समय पर न मिलने से घबराहट तो पैदा हो सकती है।

जेलीनेक के घर पहुँचने पर चाय द्वारा मेरा स्वागत होता है। माइरेक के साथ दो और दोस्त भी वहाँ हैं। एक जगह इतने व्यक्तियों का इकट्ठा होना खतरनाक है।

"मैं आप लोगों से मिलना चाहता हूँ, साथियो, पर इस तरह एकसाथ नहीं। एक ही कमरे में इतने व्यक्तियों का होना जेल जाने का सब से अच्छा तरीका है। अतः आप गुप्त रूप से काम कीजिये या यह काम छोड़ दीजिये, वरना आप के साथ दूसरों को भी खतरा है। समझे ?"

"हाँ, समझे।"

"मेरे लिए क्या लाये हैं ?"

"'लाल रोशनियाँ' का पहली मई का अंक।"

"बहुत खूब। और तुम, मिरको ?"

"कोई नयी बात नहीं है। काम ठीक चल रहा है।"

"सो ठीक है। अब पहली मई के बाद मुलाकात होगी। मैं संदेशा भिजवाऊँगा। अच्छा, तो चलूँ।"

"एक प्याला चाय और पीजिये।"

"नहीं, श्रीमती जेलीनेक।"

"बस एक प्याला और।"

ताजी चाय के प्याले में से भाप उठती है।

कोई दरवाजे की घंटी बजाता है। रात के इस वक्त ? भला कौन हो सकता है ? दरवाजे पर पुनः जोर-जोर से दस्तक होती है।

"खोलो दरवाजा ! पुलिस !"

जल्दी ! खिड़की में से भागा जा सकता है। मेरे पास पिस्तौल है। मैं उन्हें रोक सकता हूँ। पर अब देर हो गयी है। खिड़कियों के बाहर भी पुलिसवाले पिस्तौल ताने खड़े होंगे।

आखिर पुलिसवाले जबरदस्ती दरवाजा खोल लेते हैं और अंदर घुस आते हैं—एक, दो, तीन...कुल मिला कर नौ हैं। वे मुझे नहीं देख पाते, क्योंकि मैं दरवाजे के पीछे हूँ। मैं उन्हें आसानी से गोली मार सकता हूँ। पर

जूलियस फूचिक चेकोस्लोवाकिया का महान लेखक था। द्वितीय विश्व-युद्ध में, जब जरमनी का चेकोस्लोवाकिया पर कब्जा हो गया था तो फूचिक ने एक गुप्त संस्था के नेता के रूप में अपने देश पर से जरमनों का कब्जा हटाने के लिए संघर्ष किया था। आखिर वह पकड़ा गया। उसे असह्य यातनाएँ दी गयीं, पर उस ने दुश्मनों को कोई भेद नहीं दिया। लगभग डेढ़ साल जेल में रख कर उसे अंत में मार डाला गया। उस समय उस की उम्र चालीस वर्ष की थी। जेल में उस ने कुछ रचनाएँ लिख कर गुप्त रूप से बाहर भेजी थीं, जो बाद में पुस्तक रूप में छपी थीं। यह रचना उन्हीं में से है



जूलियस फूचिक

उन के नौ पिस्तौल दो स्त्रियों और तीन मर्दों का निशाना बाँधे हुए हैं। अगर मैं गोली चलाता हूँ तो मेरे पाँचों साथी मारे जायेंगे। अगर गोली नहीं चलाता तो छह महीने या साल भर की जेल काटेंगे, और तब इन्कलाब उन्हें स्वतंत्र कर देगा। सिर्फ माइरेक और मैं जिंदा नहीं बचेंगे। हमें यातनाएँ दे कर मार डाला जायेगा। मैं तो उन्हें कोई भेद नहीं दूंगा, पर माइरेक ? वह आदमी जो स्पेन में लड़ा है, जिस ने दो साल फ्रांस के 'नजरबंदी कैंप' में बिताये हैं और जो लड़ाई के दौरान

गैरकानूनी तौर पर फ्रांस से प्राग आया है—नहीं, वह भी भेद नहीं देगा। फैसला करने के लिए मेरे पास दो सेकंड हैं, या तीन !

अगर मैं गोली चलाता हूँ तो किसी का बचाव नहीं होगा। हाँ, मैं यातनाओं से बच जाऊँगा। क्या मैं अपने पाँचों साथियों की जानें कुरबान कर दूं ? नहीं।

सो फैसला हो जाता है। मैं दरवाजे के पीछे से बाहर निकलता हूँ।

"आह, एक और !"

मेरे चेहरे पर घूंसा पड़ता है। पता नहीं उसे मैं कैसे सहन कर जाता हूँ !

"हाथ ऊपर उठाओ !"

एक और घूंसा पड़ता है...और एक और।

जिस बात का मुझे डर था, वही हुई।

"चलो।"

वे मुझे खींच कर एक मोटर में डाल देते हैं। पिस्तौलें मेरी ओर तनी हैं। कार चल पड़ती है।

"कौन हो तुम ?"

"प्रोफेसर होरक।"

"झूठ बोल रहे हो।"

मैं अपने कंधे हिलाता हूँ।

"अगर हिले-डुले तो गोली मार दी जायेगी।"

"मारो।"

गोली के बजाय वे घूंसे मारते हैं।

एक ट्राम हमारे पास से गुजरती है। मुझे लगता है उस पर सफेद परदा तना हुआ है, जैसे कोई बरात जा रही हो। मैं अर्ध-बेहोशी की हालत में हूँ।

पेतचेक इमारत। गुप्त पुलिस का दफ्तर। मैं ने वहाँ जिंदा पहुँचने के बारे में कभी नहीं सोचा था। वे मुझे चौथी मंजिल पर ले कर जाते हैं। वहाँ वह दफ्तर है जहाँ कम्युनिस्टों के बारे में जाँच-पड़ताल हुआ करती है।

लंबे कद का एक अफसर अपनी जेब में रिवालवर डालता हुआ मुझे अपने दफ्तर में ले जाता है। वह मेरी सिगरेट सुलगाता है।

"कौन हो तुम ?"

"प्रोफेसर होरक।"

"झूठ बोल रहे हो।"

उस की कलाई-घड़ी में ग्यारह बज रहे हैं।

"तलाशी लो।"

मेरी तलाशी ली जाती है। जेब में से शिनाख्त का कार्ड निकाला जाता है।

"नाम ?"

"प्रोफेसर होरक।"

"इस नाम के बारे में पता लगाओ।"

वे फोन करते हैं।

"यह जाली कार्ड है। इस का नाम रजिस्टरों में दर्ज नहीं है।"

"किस ने दिया यह तुझे ?"

"पुलिसवालों ने।"

तब मेरे घूंसे पड़ते हैं। एक, दो, तीन...क्या मैं उन्हें गिनूं ? नहीं, गिनती करने से क्या फायदा ? यह गिनती किसे बतानी होगी ?

"असली नाम बताओ अपना। और अपना पता बताओ। अपने साथियों के नाम बताओ। बोलो ! बोलो ! वरना मार डाले जाओगे।"

आदमी कितने घूंसे सह सकता है ?

रेडियो पर आधी रात बीतने की खबर आती है। कैफे बंद हो रहे होंगे। लोग घरों को जा रहे होंगे। प्रेमी घरों के सामने खड़े एक-दूसरे से अलग होना नहीं चाह रहे होंगे।

वही लंबे कद का अफसर मुसकराता हुआ मेरे कमरे में आता है। "ठीक-ठाक हो, संपादक महोदय ?"

यह बात इसे कहाँ से पता लग गयी ? मेरी असलियत यह कैसे जान गया ? जेलीनेकों से ? दूसरे दोनों दोस्तों से ? पर, वे तो मेरा नाम भी नहीं जानते।

"देखा, हमें सब कुछ पता है। इसलिए अब अक्ल से काम लो।"

'अक्ल से काम लेने' का मतलब है, गद्दारी करना।

"मैं अक्ल से काम नहीं लूँगा।"

"इसे बाँध दो और जरा और मजा चखाओ।"

एक बजे का समय। आखिरी ट्राम जा चुकी है। सड़कें सुनसान हैं। रेडियो अपने अंतिम श्रोताओं को 'गुडनाइट' कहता है।

"केंद्रीय मंडल के और कौन-कौन सदस्य हैं ? तुम्हारे ट्रांसमिटर कहाँ हैं ? तुम्हारा प्रेस कहाँ है ? बोलो ! बोलो ! बोलो !"

अब मैं फिर उन घूँसों को गिन सकता हूँ। अगर कहीं दर्द है तो मेरे ओंठों में, जिन्हें मैं ने दाँतों तले दबाया है।

"बूट उतारो इस के।"

हाँ, अभी तक मेरे पाँवों की पिटाई नहीं हुई थी। अब होने लगती है। उन पर पड़ रही छड़ी की चोटें मेरे दिमाग तक पहुँच रही हैं।

दो बजे का समय। प्राग सो चुका है। कहीं कोई बच्चा नींद में बड़बड़ाता है। कोई पति अपनी पत्नी की पीठ पर थप्प जमाता है।

"बोलो ! बोलो !"

मेरी जबान लहूलुहान मसूड़ों को छूती है और अंदाजा लगाती है कि कितने दाँत टूट चुके हैं। मैं गिन नहीं सकता। बारह, पंद्रह, सत्रह ? नहीं, यह तो उन अफसरों की संख्या है, जो मेरे अंदर से भेद निकालना चाह रहे हैं। उन में से कुछ बेहद थक चुके हैं। यह मौत है कि मुझ से दूर है।

तीन बजे का समय। सड़कों पर प्रातःकाल की हलचल है। सब्जियों से लदे ट्रक बाजार की ओर जा रहे हैं। सड़कें साफ करनेवाले अपने काम में लग गये हैं। शायद मैं दिन चढ़ने तक जिंदा रह सकूँ।

वे मेरी पत्नी को लाते हैं।

"इसे पहचानती हो ?"

मैं अपने मुँह में आया हुआ खून निगल जाता हूँ ताकि वह उसे देख न सके... पर मेरा ऐसा सोचना गलत है, क्योंकि मेरे चेहरे के हर भाग से खून रिस रहा है। और मेरी अँगुलियों में से भी।

"इसे पहचानती हो ?"

"नहीं", उस ने कहा और अपने अंदर के भय का पता तक नहीं लगने दिया। खालिस सोना। उस ने मुझे न पहचानने का वादा पूरा किया। पर अब इस की जरूरत नहीं थी। आखिर मेरी असलियत का उन्हें किस ने भेद दिया ?

मेरी पत्नी को वे ले जाते हैं। मैं अपनी आँखों में मुसकराहट भर कर उसे अलविदा कहता हूँ। पर कह नहीं सकता, आँखों में मुसकराहट आ सकी या नहीं।

चार बजे का समय। सुबह होगी या नहीं ? अँधेरी खिड़कियाँ जवाब नहीं देतीं। और मौत बहुत धीरे-धीरे आ रही है। क्या मैं उस की ओर बढ़ूँ ? कैसे बढ़ूँ ?

पाँच बज गये हैं—छः—सात—दस। फिर दोपहर हो जाती है। लोग दफ्तरों

में काम कर रहे हैं। बच्चे स्कूलों में पढ़ रहे हैं। बाजारों में चीजें बिक रही हैं। शायद माँ इस समय मेरे बारे में सोच रही हो। शायद मेरे साथियों को पता लग गया हो कि मैं पकड़ा गया हूँ। अब जिंदगी का अंत बहुत दूर नहीं है। थोड़ी-थोड़ी देर बाद मुझे मारा जा रहा है। बेहोश हो जाता हूँ तो मुझ पर पानी छिड़का जाता है। होश आने पर फिर मारा जाता है। "बोलो! बोलो!! बोलो!!!" पर मैं अभी तक जिंदा हूँ। मर नहीं सकता हूँ। मुझे अपने माता-पिता का खयाल आता है। उन्होंने मुझे इतना तगड़ा क्यों बनाया है कि मैं अभी तक इतनी मार सहे जा रहा हूँ?

पाँच बज गये हैं। अब तक वे सब थक चुके हैं। अब उन के घूँसे इतने जोरदार नहीं हैं। अचानक कहीं बहुत दूर से शांत, संयत आवाज में कोई जरमन भाषा में कहता है: "बहुत हो चुका।"

कुछ समय बाद मैं एक मेज के सामने बैठा था, जो मुझे हिलती-डोलती सी नजर आ रही थी। किसी ने आ कर मुझे पानी पिलाया। किसी ने मुझे सिगरेट पकड़ायी, जिसे मैं हाथ में ले नहीं सका। कोई मेरे पाँवों में स्लीपर पहनाता है, पर कहता है कि वह पहना नहीं पा रहा है। तब वे मुझे सहारा दे कर चलाते हुए, सीढ़ियाँ उतार कर, मोटर में बैठाते हैं। एक ट्राम हमारे पास से गुजरती है, जो सफेद फूलों से ढकी हुई है। कोई बरात जा रही है? यह कोई सपना है? या बेहोशी, या मौत?

मैं खड़ा हूँ। सचमुच बिना किसी सहारे के खड़ा हूँ। मेरे सामने मैली, पीली दीवार है और उस पर खून छिड़का हुआ है। मैं उसे अँगुली से छू कर देखता हूँ।

तभी मेरे सिर पर घूँसा पड़ता है। मैं गिर पड़ता हूँ।

मुझे ठोकरें मार कर उठाने के लिए कहा जाता है। पर उन ठोकरों से कोई फायदा नहीं होता। कोई मेरा चेहरा धोता है। फिर मैं मेज के सामने बैठा होता हूँ। एक स्त्री मुझे कोई दवा पिलाती है और पूछती है कि सब से ज्यादा दर्द मुझे कहाँ हो रहा है।

मैं कहता हूँ कि सारा दर्द मेरे दिल में समाया हुआ है।

"तुम्हारे दिल नहीं है," पुलिस इंसपेक्टर कहता है।

"है," मैं कहता हूँ और अचानक मेरे अंदर गर्व जागता है कि अपने दिल की खातिर लड़ने की मुझ में अभी तक शक्ति है।

वहाँ से मुझे जेल की कोठरी में डाल दिया जाता है।

कोई कहता है, "बुरी हालत बनायी है इस की! मुश्किल से सुबह तक जिंदा रहेगा।"

पाँच मिनट में दीवार-घड़ी दस बजायेगी। २५ अप्रैल, १९४२ की सुंदर, सुखद बहार की शाम!

—रूपा० सुखबीर

●

मजिस्ट्रेट : तुम्हें ५० रुपये जुरमाना या एक हफ्ते की कैद की सजा दी जाती है।

अभियुक्त : मुझे कैद ही दीजिये।

मजिस्ट्रेट : ताज्जुब है! तुम काफी धनी हो, फिर जुरमाना क्यों नहीं दे देते?

अभियुक्त : मेरा रसोइया छुट्टी पर गया है। और बीवी के हाथ की रोटी खाने से तो जेल की रोटी ही भली।

गुमानी

खड़ी बोली के प्रथम कवि

बहादुर बोरा 'श्रीबंधु'



प्राय: यह माना जाता है कि हिंदी में खड़ी बोली की काव्य-रचना का श्रीगणेश भारतेंदु हरिश्चंद्र ने किया, अर्थात उन्होंने ब्रज-भाषा के मोह को त्याग कर खड़खड़ाती खड़ी बोली को काव्य-रचना के योग्य सिद्ध करने का प्रयास किया । परंतु, यह तथ्य अभी तक अंधकार के गर्त में पड़ा है कि भारतेंदु से पूर्व कूर्मांचल के प्रसिद्ध लोककवि लोकरत्न पंत 'गुमानी' तत्कालीन सहज, स्वाभाविक खड़ी बोली में कविताएँ लिख चुके थे । यह तथ्य हिंदी-संसार के समक्ष इसलिए अनावृत नहीं हो सका क्योंकि 'गुमानी' की रचनाओं का व्यवस्थित संकलन एवं प्रकाशन नहीं हुआ । वे मुख्यत: कुमाऊँनी भाषा के कवि थे और हिमालय के आंचलिक क्षेत्रों तक ही उन की रचनाएँ सीमित रहीं । अलमोड़ा से उन की कृतियों का प्रकाशन उन के मृत्योपरांत हुआ । आज यह प्रकाशन अप्राप्य है या कुछ व्यक्तियों के निजी पुस्तकालयों में दीमकों का भक्ष्य बना होगा । कुछ पुराने लोगों के मुख से उन की रचनाएँ सुनने में आती हैं ।

'गुमानी' का जन्म फरवरी, १७९० में काशीपुर (जिला नैनीताल) में हुआ था और भारतेंदु के जन्म (सन १८५०) से चार वर्ष पूर्व ही सन १८४६ में वे दिवंगत हो गये थे । यों वे मूलत: जिला पिठौरागढ़ के ग्राम उपराड़ा के निवासी थे । उन के जीवन का अधिकांश समय उपराड़ा या काशीपुर में ही बीता । उच्च ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न होने के कारण उन की विधिवत शिक्षा-दीक्षा हुई और अल्प वय में ही अपनी विद्वत्ता और काव्य-प्रतिभा के कारण वे सन १८१२ में काशीपुर के राजा श्री गुमान सिंह देवजू के दरबार में राजकवि नियुक्त हुए । तभी से वे 'गुमानी' कहलाये और इसी उपनाम से कूर्मांचल प्रदेश में विख्यात हुए ।

वह समय अँगरेजों का अपनी कूट और धूर्त नीति से भारत भर में अपने साम्राज्यवादी पंजे फैलाने का था । भारत की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति पर 'गुमानी' अपनी अवसादपूर्ण अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में करते हैं—

को जाने था जल के मारग
यहाँ फिरंगी आयेगा
को जाने था हिकमत कर के

हिंदुस्तान दबायेगा
कहे 'गुमानी' हरि इच्छा का
कोई पार न पायेगा

'गुमानी' के समय में कुमाऊँ पर चन्द राजाओं का राज्य था। प्रजा सुखी और समृद्ध थी। परंतु सन १८१५ में अँगरेजों ने कुमाऊँ को जीत कर अपने अधिकार में कर लिया। कुमाऊँ की राजधानी अलमोड़ा की जो दशा अँगरेजों ने की उस का वर्णन 'गुमानी' ने इस प्रकार किया है—

विष्णु का देवाल उखाड़ा
ऊपर बँगला बना खरा
महाराज का महल ढहाया
बेड़ीखाना तहाँ धरा
मल्ले महल उड़ायी नंदा
बँगलों से भी तहाँ भरा
अँगरेजों ने अलमोड़े का
नक्शा और ही और करा

एक दूसरी कविता 'कलियुग' में भारत की दुर्दशा और पतन के कारणों का विश्लेषण करते हुए विषाद और निराशा के स्वर में 'गुमानी' ने लिखा है—

विद्या की जो बढ़ती होती
फूट न होती राजों में
हिंदुस्तान असंभव होता
वश करना लख वर्षों में
कहे 'गुमानी' अँगरेजों से
कर लो जो चाहो मन में
धरती में नहिं वीर, वीरता
तुम्हें दिखाता जो रण में

'गुमानी' के बहुत बाद भारतेंदु-युग में भी खड़ी बोली की कविता अपने स्वाभाविक रूप को नहीं पा सकी थी। सभी तत्कालीन कवियों की कविता पर ब्रजभाषा छायी रहती थी, पर 'गुमानी' की कविता में तत्कालीन खड़ी बोली अपने सहज रूप में मिलती है। संस्कृत के प्रकांड

विद्वान होते हुए भी उन्होंने सामान्य बोल-चाल के शब्दों का ही व्यवहार किया है। 'गुमानी' के समय में हिंदी के कवि रीति-कालीन कवियों के अनुसरण में श्रृंगार-रस के वर्णन और नायिका-भेद के विवेचन में ही व्यस्त थे, जब कि 'गुमानी' ने बोल-चाल की भाषा में अँगरेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध आवाज उठायी थी और भारत की तत्कालीन दुर्दशा पर दुख प्रगट किया था। इस प्रकार 'गुमानी' ने खड़ी-बोली में काव्य-रचना का श्रीगणेश ही नहीं किया अपितु लीक से हट कर सर्वप्रथम राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति भी की थी।

खड़ी बोली के अतिरिक्त 'गुमानी' ने संस्कृत, नेपाली और ब्रज-भाषा में भी काव्य-रचना की है, पर मुख्यतः वे कूर्मांचलीय भाषा के ही कवि थे। 'गुमानी' की कुमाऊँनी कविताएँ अपनी मार्मिकता, सहज अभिव्यक्ति, प्रवाहमयता, हास्य-व्यंग्य और चुटीली उक्तियों के कारण कुमाऊँ के जन-जन के कंठ में बस गयी थीं।

अपनी विद्वत्ता और काव्य-प्रतिभा के कारण 'गुमानी' टिहरी महाराज तथा काँगड़ा के दरबारों में सम्मानित हुए। टिहरी के महाराज सुदर्शनशाह के राज-दरबार में तो वे काफी समय तक रहे। एक बार महाराजा ने 'गुमानी' से टिहरी के नामकरण का कारण पूछा। उन्होंने तत्काल जो छन्दोबद्ध उत्तर दिया वह उन की प्रत्युत्पन्नमति और आशु-कवित्व का ज्वलंत उदाहरण है—

सुर गंग तटी, रसखान मही
धनकोश भरी, यहु नाम रह्यो
पद तीन बनाय रच्यो बहु विस्तर
वेग नहीं कछु जात कह्यो
इन तीन पदों के बसान बस्यो
अक्षर एक ही एक लह्यो
जनराज सुदर्शन शाह पुरी
टिहरी इस कारण नाम पड़्यो

संस्कृत, हिंदी तथा कुमाऊँनी में 'गुमानी' ने 'राम पंच पंचासिका', 'रामाष्टक', 'तत्व-विद्योतिनी', 'नीतिशतक', 'राम-महिमा वर्णन', 'गंगाशतक', 'जगन्नाथ शतक', 'कालिकाष्टक', 'गुमानी गुटका' और 'गुमानी की कविताएँ' ग्रंथों की रचना की है, जो आज उपेक्षित और प्रायः अप्राप्य हैं। यद्यपि कलापक्ष की दृष्टि से उन की हिंदी कविताएँ उत्कृष्ट नहीं कही जा सकतीं और उन का अधिक स्थायी मूल्य भी नहीं है, परंतु उन का एक विशिष्ट ऐतिहासिक मूल्य अवश्य है। वे खड़ी बोली के प्रथम काव्य-रचियता हैं, अतः हिंदी साहित्य के गवेषकों को उन की कृतियों के संबंध में शोध कर उन के ऐतिहासिक महत्व को प्रतिष्ठापित करना चाहिये।

एक होटल में बहुत से लोग खाना खा रहे थे। एक आदमी जोर-जोर से बेयरे को बुला रहा था। उस के चिल्लाने से पास बैठा हुआ आदमी बहुत परेशान हो रहा था। झुँझला कर उस ने पूछा, "आखिर क्या मँगाना है आप को ?"

"एक गिलास पानी।"

"बस ! तो इस तरह चीखने-चिल्लाने के बजाय आप अपने कपड़ों में आग क्यों नहीं लगा लेते ?"



गोष्ठी

श्रीकृष्ण मावंडिया, कलकत्ता: 'हिंदुस्तान' का नाम हिंदी में भारत तथा अँगरेजी में इंडिया क्यों रखा गया है? क्या संसार में और भी देश हैं जिन के मातृभाषा में और नाम हों तथा अन्य भाषा में और?

भरत-भूमि होने के कारण अपने देश का नाम भारत रखा गया है। अँगरेजों ने सिंधु नदी के साथ भारत का संबंध जोड़ कर इंडिया कर दिया। अँगरेजी में सिंध को इंडस कहते हैं।

हां, और भी देश हैं जिन के नाम अन्य भाषाओं में अलग-अलग हैं। मिस्र को इजिप्ट और श्रीलंका को सीलोन कहा जाता है।

गोविन्द अग्रवाल, चूरू: खजूर को बोलचाल की भाषा में 'पिंड-खजूर' क्यों कहते हैं? इस की गणना सूखे मेवे के अंतर्गत होनी चाहिये या फल के अंतर्गत? जिस रूप में यह बाजार में बिकता है क्या उसी रूप में यह वृक्ष पर लगता है?

खजूर एक रेगिस्तानी वृक्ष है जो मुख्यत: भूमध्यरेखा के उत्तर में गरम रेगिस्तानी प्रदेशों में पाया जाता है। रेगिस्तानी लोगों के आहार में खजूर के फल का विशेष महत्व होता है। वैसे, खजूर एक पौष्टिक खाद्य है। अधिक मिठाई खाने से जो बीमारियाँ प्राय: हो जाया करती हैं, खजूर खाने से नहीं होतीं। खजूर का फल जिस प्रकार बाजार में बिकता है उसी प्रकार पेड़ पर लगता है। इसे पेड़ से तोड़ कर चटाई से बनी टोकरियों में जमा कर भर दिया जाता है, जिस से यह पिंड के रूप में जम जाता है। इसीलिए इसे पिंड-खजूर कहते हैं। इसे फलों के अंतर्गत नहीं, सूखे मेवे के अंतर्गत ही मानते हैं।

बिशन माहेश्वरी, दिल्ली: अणु-बम अधिक विनाशक है या हाइड्रोजन-बम? क्या हाइड्रोजन-बम अणु-बम से महँगा पड़ता है? क्या हम अणु-बम की तरह हाइड्रोजन-बम बनाने में भी समर्थ हैं? मैं ने सुना है कि हाइड्रोजन-बम फटने पर वह वायुमंडल की सारी आक्सीजन खींच लेता है जिस से लोग दम घुट कर मर जाते हैं। अगर यह ठीक है तो क्या आक्सी-

जन-बम एण्टी-हाइड्रोजन बम का कार्य नहीं करेगा ?

हाइड्रोजन-बम अधिक विनाशक होता है। हाइड्रोजन-बम अणु-बम से महंगा होता है। भारत जब अणु-बम बनाने में समर्थ है तो हाइड्रोजन-बम बनाने में भी है। वास्तव में हाइड्रोजन बम भी एक प्रकार से अणु-बम ही है। अणु और परमाणु-शक्ति भारत के पास है। आप ने यह गलत सुना है कि हाइड्रोजन-बम फटने पर आक्सीजन खींच लेता है। हाइड्रोजन-बम जब फटता है तो चारों ओर परमाणुओं की धुंध बिखर जाती है। ये परमाणु बम-विस्फोट के बाद भी हवा में रहते हैं और जीवन पर बुरा प्रभाव डालते हैं। आक्सीजन-बम में आक्सीजन वह नहीं होती जो हमारे साँस लेने के काम आती है, इसलिए इस के एण्टी-हाइड्रोजन होने का प्रश्न ही नहीं उठता। और फिर हाइड्रोजन-बम में भी तो सिर्फ हाइड्रोजन गैस नहीं होती!

महेशशरण दीपक, गोरखपुर : समुद्र का पानी खारा क्यों होता है ?

खनिज पदार्थों की मात्रा अधिक होने के कारण।

ग्लाइडर क्या है ? यह कब बना तथा कैसे उड़ता है ?

ग्लाइडर बिना इंजन का छोटा हवाईजहाज होता है जिस में केवल एक व्यक्ति बैठता है। विश्व का सर्वप्रथम ग्लाइडर १८७० में एक फ्रांसीसी नाविक कैप्टिन ले ब्रिस ने बनाया था। बिना इंजन का होने के कारण ग्लाइडर की उड़ान पवन-धाराओं पर निर्भर करती है। पवन-धाराएँ वायुमंडल में तापक्रम कम-ज्यादा होने से उत्पन्न होती हैं। गरमी में मैदानी क्षेत्रों में ये धाराएँ अधिक उत्पन्न होती हैं। पहाड़ी इलाकों में ये हमेशा पायी जाती हैं। इसीलिए ग्लाइडर आरंभिक काल में केवल पर्वतीय प्रदेशों में उड़ाये जाते थे। आजकल इन्हें उड़ाने का तरीका बदल गया है। होता यह है कि ग्लाइडर के अगले सिरे में एक तार या रस्सी बाँध कर किसी मोटर या जीप से जोड़ दी जाती है। मोटर चलने पर तार से बँधा हुआ ग्लाइडर पतंग की तरह हवा में उठता जाता है और ज्यों ही पवन-धारा की पट्टी पर पहुँच जाता है, तार को अलग कर के स्वतंत्र उड़ने लगता है। पवन-धारा ग्लाइडर को तब मिलती है जब वह पृथ्वी के तापक्रम से गरम हुई हवा की पट्टी पार कर के अपेक्षाकृत ठंडी हवा की पट्टी में पहुँच जाता है। इस पट्टी के भार पर ही ग्लाइडर का भार टिका रहता है। ग्लाइडर मौसम संबंधी सूचनाएँ प्राप्त करने के काम आते हैं।

हबीब, जोधपुर : रूस में राकेट का आविष्कार कब हुआ ?

बीसवीं शताब्दी के आरंभ में कोंस्तेंतिन त्सिल्कोवस्की अंतरिक्ष-यात्रा की कल्पना कर रहा था। तभी उस के दिमाग में राकेट का विचार आया। विश्व के सभी वैज्ञानिक मानते हैं कि त्सिल्कोवस्की ने ही सर्वप्रथम तरल ईंधन से चालित राकेट-इंजन बनाने का प्रस्ताव किया था। उसी ने गणितीय उड़ान का सिद्धांत प्रस्तुत किया तथा आक्सीजन और हाइड्रोजन को राकेट चालन के लिए प्रस्तावित किया। १९०३ में उस ने 'जेट-चालित उपकरणों द्वारा 'अंतरिक्ष की खोज' नामक महत्वपूर्ण पुस्तक प्रकाशित की। त्सिल्कोवस्की रूस के उन तीन राकेट-विशेषज्ञों में से था जिन्होंने

कल का पेण्ट आपको आज ही मिल रहा है

ड्युलक्स नया ऑक्रिलिक ~~प्लास्टिक~~ इमल्शन

**भारत में
सर्व प्रथम
नये फारमूले से
बना कोपॉलिमर
सजावटी पेण्ट**

DULUX
ACRYLIC EMULSION

इसके समक्ष प्रचलित प्लास्टिक इमल्शन पेण्ट बिल्कुल पुराने ढंग के जान पड़ते हैं

- रंग पक्का है—यहांतक कि बाहर इस्तेमाल करने पर भी ऑक्रिलिक कोपॉलिमर दीर्घकाल तक टिकाऊ रहता है।
- बचत होती है—अधिक स्थान में रंग एक रूप और चिकना होता है।
- बहुत टिकाऊ है—मैला होने पर आप इसे बार बार धो सकते हैं। चटकता नहीं, फटता नहीं।

भारत में आई सी आई के उन्नति अनुसंधान का एक विशिष्ट उत्पादन

प्रस्तुतकारक :
दि अलकाली ऐण्ड केमिकल कॉर्पोरेशन ऑफ इण्डिया लि०
एकमात्र विक्रय प्रतिनिधि :
आई.सी.आई. (इण्डिया) प्राइवेट लि०
कलकत्ता बम्बई दिल्ली मद्रास



IGC-572 HIN

कृत्रिम भू-उपग्रह बनाने की योजनाएँ बनायी थीं।

रेखा, भागलपुर : क्या महासागरों में ताजा पानी भी होता है ?

जी हाँ। नदियों के मुहाने के आसपास ताजा पानी पाया जाता है। अंध-महासागर (अतलांतक) में अमेजन नदी का मुहाना १०० मील दूर तक समुद्र के पानी को ताजा रखता है।

महेश गांगुली, कलकत्ता : प्लेटिनम सर्वप्रथम कहाँ पाया गया और यह किस भाषा का शब्द है ?

प्लेटिनम धातु सर्वप्रथम दक्षिणी अमरीका में प्राप्त हुई थी। जिस समय स्पेनी लोग वहाँ लूट मचा रहे थे, उन्हें यह धातु मिली। वे इस से अनभिज्ञ थे, अतः चाँदी की भाँति दिखायी देने के कारण उन्होंने इस का नाम 'प्लेटीना' (थोड़ी-सी चाँदी) रख दिया। यह नाम अँगरेजी में आया तो 'प्लेटिनम' हो गया। इस प्रकार स्पेनी भाषा से उद्गमित होने के बावजूद यह शब्द अँगरेजी का ही है।

मनमोहिनी बिंदल, नागौर : क्या उड़न-मछली के सचमुच पंख होते हैं ?

जी हाँ, किंतु उड़न-मछली पक्षियों की भाँति अपने पंख फड़फड़ा कर नहीं उड़ सकती। उस के पंख मुड़ते नहीं। उड़ने का तरीका यह होता है कि उड़न-मछली कुछ दूर तक पानी में दौड़ कर अपनी गति बहुत तेज कर लेती है और फिर हवा में उछल जाती है। हवा में वह अपने पंखों के सहारे उसी तरह उतराती रहती है जिस तरह ग्लाइडर उड़ता है।

कमला 'चारु', नयी दिल्ली : छोटे बच्चे कभी-कभी सिर पटकने लगते हैं। इस का क्या कारण है ? क्या यह कोई मानसिक रोग है ?

जी नहीं, यह कोई रोग नहीं है। सिर पटकने का सब से प्रमुख कारण यह होता है कि उन में लय के प्रति तीव्र संवेदन विकसित हो जाता है। शिकागो के चिकित्सकों के एक दल ने १३५ शिशुओं का अध्ययन किया था जो सिर पटकते थे और उन्होंने पाया कि ये शिशु बहुत छोटी अवस्था में ही ध्वनि, संगीत और गाने में अस्वाभाविक रुचि लेने लगे हैं। बहुत-से लोग समझते हैं कि यह कोई मानसिक रोग है किंतु ऐसा नहीं, क्योंकि तीन वर्ष का होने के बाद बच्चा सिर पटकना छोड़ देता है। सिर पटकने के और भी कई कारण होते हैं, जैसे—तनाव कम करने के लिए, प्रसन्नता प्रदर्शित करने के लिए, दूसरों का ध्यान अपनी ओर खींचने के लिए। जिन बच्चों के दाँत निकलते हैं, वे भी सिर पटकने लगते हैं।

प्रदीप शुक्ल, भरतपुर : इलैक्ट्रोन माइक्रोस्कोप क्या है ?

इलैक्ट्रोन माइक्रोस्कोप एक अद्भुत सूक्ष्मदर्शी यंत्र होता है जिस की सहायता से वैज्ञानिक अत्यंत सूक्ष्म चीजों को देखते हैं। इस के द्वारा उन सूक्ष्म अणुओं को भी २,००,००० गुने बड़े आकार में अलग-अलग देखा जा सकता है जो एक इंच के दो-करोड़वें भाग में पास-पास स्थित होते हैं। ७००० अलग-अलग पुरजों से बना यह यंत्र लगभग सात फुट ऊँचा होता है। इस में अनेक स्विच और बटन लगे रहते हैं तथा इस के भीतर एक शून्य होता है जिस में इलैक्ट्रोन प्रवाहित करने पर दृष्टव्य पदार्थ बड़े आकार में दिखायी देने लगता है।

रामेश्वरप्रसाद सिंह, पटना : विश्व का प्राचीनतम राजभवन कौन-सा है, जिस में अभी तक राज-परिवार रहता हो ?

लंदन से लगभग २५ मील दूर स्थित विंडसर पैलेस जिस में १३०७ ई० से अब तक राजपरिवार रहते आ रहे हैं।

दीनानाथ दीक्षित, पटियाला : मनुष्य ने आकाश में उड़ना कब शुरु किया ?

संभवत: १७८३ ई० में। सब से पहले मनुष्य ने गुब्बारे के नीचे लटक कर उड़ने का प्रयास किया। १७९७ में पैराशूट का आविष्कार हुआ। १८१० में पहला ग्लाइडर बना और १९०३ में पहला हवाईजहाज आकाश में उड़ा।

भँवरलाल माथुर, अजमेर : क्या संतरे का जमा हुआ रस ताजे रस की अपेक्षा कम पोषक होता है ?

संतरे का रस शरीर को विटामिन 'सी' प्रदान करता है और विटामिन 'सी' जमे हुए रस में भी बना रहता है। अत: दोनों का उपयोग समान रूप से लाभदायक है।

विमला रस्तोगी, मेरठ : रोम के सेंट पीटर चर्च के निर्माण में क्या चित्रकार माइकेल एंजिलो का भी कुछ योगदान था ? यह चर्च कब बना ?

माइकेल एंजिलो चित्रकार ही नहीं, कवि, मूर्तिकार और भवन-निर्माण-कला का भी विशेषज्ञ था। उस ने रोम और फ्लोरेंस के अनेक गिरजाघरों के निर्माण में योग दे कर उन्हें सुंदरता प्रदान की थी। सेंटपीटर चर्च की आधारशिला १५०६ में रखी गयी थी और उस का निर्माण १२० वर्ष तक चलता रहा था। माइकेल एंजिलो ने उस चर्च के ४३५ फुट ऊँचे स्वर्णजटित और पच्चीकारीयुक्त गुंबद की रूप-रेखा तैयार की थी।

रवीन्द्र मित्तल, हैदराबाद : वोदका क्या है ?

वोदका एक शराब का नाम है जो आरंभ में आलू और अनाज से बनायी जाती थी। उस समय यह शराब अन्य देशों में प्राप्त अन्न के अलकोहल से कुछ भिन्न स्वाद की थी। आजकल जो वोदका रूस में प्रचलित है वह साधारण अलकोहल-जैसी ही है जो प्रत्येक देश में मिलती है। यह अलकोहल ८० प्रूफ (प्रूफ विभिन्न प्रकार की अलकोहल स्पिरिट का एक मानक होता है) का होता है। १९० प्रूफ की प्रत्येक स्पिरिट का स्वाद समान होता है, चाहे वह गुड़ या शीरे से निकाली जाये, चाहे पेट्रोलियम से या आलुओं से, किंतु उस में पानी मिलाने पर स्वाद बदल जाता है। १९० प्रूफ की किसी भी स्पिरिट में पानी मिला कर वोदका तैयार की जा सकती है। वोदका को रूस का राष्ट्रीय पेय माना जाता है।

केशव कुमार, राँची : क्या नोट और रेजगारी गिनने की कोई मशीन अभी तक नहीं बनी है ?

जापान में टोकियो स्थित कोकी सीजो कंपनी ने एक इलैक्ट्रोनिक गणक-यंत्र का निर्माण किया है। नोट और सिक्के गिनने वाली यह विश्व की सब से पहली मशीन है जो जापानी मुद्रा को ही नहीं, थोड़े-से परिवर्तन के साथ प्रत्येक देश की मुद्रा गिनने की क्षमता रखती है। गिनने के अतिरिक्त यह मशीन छोटे, बड़े और फटे-पुराने नोटों की छँटाई भी करती है।

पत्नी : आप इतनी ज्यादा शतरंज क्यों खेलते हैं ?
पति : इस से मैं मुस्तैद रहता हूँ ।
पत्नी : मुस्तैद रहते हैं ? किसलिए ?
पति : शतरंज खेलने के लिए ।

तीन गोली में तीन

शिकार करना मेरा पेशा नहीं है, लेकिन अपने फोटोग्राफी के व्यवसाय के कारण मुझे प्रायः जंगलों में भटकना पड़ता है। कभी भी जंगली जानवरों से सामना हो सकता है, इसलिए मुझे एक हाथ में कैमरा तो दूसरे में राइफल रखनी पड़ती है। एक बार अफ्रीका के टांगानिका प्रदेश में अपना फोटोग्राफी का काम पूरा कर मैं अगले सफर की तैयारी कर रहा था कि इतने में कुछ अफ्रीकी मुझ से सहायता लेने आ पहुँचे। वे उस स्थान से डेढ़-दो सौ मील की दूरी पर रहते थे। प्रायः रोज ही शेरों का झुंड उन के इलाके में पहुँचता और उन के निवास-स्थानों पर हमला कर आदमियों तथा मवेशियों को उठा ले जाता था। वे तंग आ गये थे। उन के पास नये ढंग के हथियार भी नहीं थे। भाले, बरछे तथा तीर-कमान-जैसे सीमित साधनों से ही वे शेरों का मुकाबला करते थे। केवल भालों के सहारे शेरों का शिकार करना बड़ा खतरनाक होता है। हर बार शेरों का झुंड उन के एक-दो आदमियों को उठा ले जाता। अब तक उन वीर अफ्रीकियों ने उस झुंड के केवल दो ही शेरों को मारा था।

मेरे पास आधुनिक ढंग की राइफल है, यह जान कर ही वे लोग इतनी दूर से मेरे पास आये थे। मैं कोई मशहूर शिकारी नहीं, फिर भी मैं ने उन्हें सहायता का वचन दिया। अपने साथियों में से किसी को भी साथ लिये विना मैं उन लोगों के साथ हो लिया। डेढ़ सौ मील का कठिन रास्ता तय करना था। पथरीली तथा ऊबड़-खाबड़ सड़क पर मोटर चलाना दिक्कत का काम था। इस के अलावा, रास्ते में कितने ही छोटे-मोटे नाले तथा नदियाँ थीं, जिन्हें पार करना जरूरी था।

धीरे-धीरे मंजिल की ओर बढ़ते हुए हम उन के इलाके तक पहुँचे। उन के घरों के आसपास शेरों के पंजों के निशान साफ-साफ दिखायी पड़ रहे थे। जिस समय हम पहुँचे, वहाँ भीषण नीरवता छायी हुई थी। मनुष्य का नामोनिशान भी नहीं मालूम पड़ता था। अलबत्ता बीच-बीच में सुनायी पड़ने वाली हास्यध्वनि तथा बातचीत से ही वहाँ मानव-जीवन का कुछ आभास मिल रहा था।

अन्य अफ्रीकियों की अपेक्षा यहाँ के लोग अधिक साफ-सुथरे तथा व्यवस्थित हैं। उन्होंने अपनी झोपड़ियों के सामने की जगह साफ कर रखी थी। जंगली मक्खियों की परेशानी न होने के कारण उन्होंने गाय, बैल तथा बकरियाँ भी पाल रखी थीं। उन की झोपड़ियाँ छोटी किंतु साफ-सुथरी थीं।

दूसरे ही दिन हम शेर का मुकाबला करने की तैयारी करने लगे। मेरे साथ लीके, नझिवा, इकवेली तथा इकोहू नाम के साथी थे। उन के पास भाले, बरछे,

शिकार-कथा

अलस्टर स्कोबी

छुरियाँ तथा तीर-कमान-जैसे हथियार थे। अपनी बस्ती से कुछ दूर, चंद्रमा के प्रकाश में, हम ने एक जेबरा का शव रख दिया और कुछ दूरी पर छिप कर शेरों के झुंड का इंतजार करने लगे। मृत जेबरा की गंध से आकर्षित हो शेरों का झुंड वहाँ अवश्य आयेगा, इस आशा से हम उन का इंतजार करते रहे। लेकिन शेरों का झुंड उस दिन नहीं आया।

दूसरे दिन हम पुनः शेरों की खोज में निकल पड़े। बस्ती से करीब दो मील दूर जा कर हम ने अपनी मोटर खड़ी की और मोटर में बैठे हुए ही शेरों का इंतजार करने लगे। बैठे-बैठे हमें नींद आने लगी। थोड़ी देर बाद जब आँख खुली तो भीषण गरमी महसूस हो रही थी। चारों ओर



सन्नाटा था। सामने नदी में इकोहू नहा रहा था। एक स्थान पर बैठे-बैठे तथा पसीने की चिपचिपाहट के कारण मैं उकता गया था। अतः मैं भी नहा लिया। गरमी के कारण नदी का पानी गरम हो गया था। नहाते ही मेरी थकावट जाने कहाँ गायब हो गयी। मैं ने इकोहू से पूछा, "और लोग कहाँ हैं?"

"वे सब शेर की खोज में निकले हुए हैं," उस ने कहा।

लेकिन काफ़ी देर बाद भी वे नहीं लौटे, तो मुझे चिंता होने लगी। चिंता का एक कारण यह भी था कि उन के पास भाले, बरछियाँ, छुरे तथा लाठियों के अलावा कोई आधुनिक हथियार नहीं था। अलबत्ता, उन के पास घरेलू ढंग की बनी एक बंदूक थी, जिस में केवल एक गोली थी।

मैं ने इकोहू को मोटर में बिठाया। राइफल गोलियों से भरी है, इस का यकीन कर लिया और फिर मोटर स्टार्ट कर दी। हम लोग कुछ आगे बढ़े। इतने में गोली छूटने की आवाज आयी। मैं ने उस आवाज की दिशा में मोटर आगे बढ़ायी। एक जगह हमारे साथी एक शेर का मुकाबला करते दिखायी दिये।

उन में से इकवेली नाम का साथी जमीन पर गिरा हुआ था और उस के सीने पर शेर बैठा हुआ था। शेर गुस्से में इकवेली के मस्तक तथा मुँह पर अपने एक पंजे से वार कर रहा था और दूसरे पंजे से उस का गला दबा रहा था। वे दोनों ही खून से लथपथ हो गये थे। मोटर रोक कर मैं ने शेर को उठाने के लिए एक गोली चलायी। बंदूक की आवाज से शेर कुछ घबराया और इधर-उधर देखने लगा।

मौका पा कर लीके ने बड़ी फुरती से शेर की ओर भाला फेंका। भाला शेर की कमर में अच्छी तरह घुस गया। इतने में नजिवा ने दूसरी ओर से एक भाला फेंका। मैं मोटर में से कूद पड़ा और राइफल ले कर आगे बढ़ा। भाले की जबरदस्त मार से व्याकुल हो कर शेर शायद उन अफ्रीकियों पर हमला करने के इरादे से उठ रहा था। मैं ने मौका देख कर केवल दस फुट की दूरी से एक गोली छोड़ी। वह उस के मुँह पर लगी। गोली खाते ही वह अपने स्थान पर गोल-गोल घूमने लगा। मैं ने एक और गोली चलायी। उस से शेर का मस्तक विदीर्ण हो गया। शेर तत्काल ही छटपटा कर धराशायी हो गया। मैं ने आगे बढ़ कर इकवेली को उठाने का प्रयत्न किया। लेकिन इकवेली पहले ही चल बसा था।

इकवेली के साथियों ने उस का मृत शरीर पहाड़ के दूसरी ओर फेंक दिया। वहाँ के लोगों में वैसा ही रिवाज है। इस के बाद हम ने मृत शेर की लाश को मोटर के पीछे बाँध दिया और थोड़ी देर तक मोटर को आसपास के इलाके में घुमाया। उद्देश्य यही था कि शेर की गंध पा कर अन्य शेर भी वहाँ आ जायें। लेकिन हमारा यह प्रयत्न सफल नहीं हुआ।

थोड़ी देर बाद, हम लोग बस्ती में लौट आये। पहले हम ने लीके के घायल हाथ की मरहम-पट्टी की। शेर ने उसे भी अपने पंजे का प्रसाद दिया था। मैं ने केवल नजिवा को अपने साथ रखा तथा अन्य लोगों को अपने-अपने घर जाने को कह दिया।

उस रात भी हम ने शेरों का इंतजार

किया, लेकिन शेर नहीं आये।

दूसरे दिन हम पुनः शेरों की टोह में निकले। नदी के दूसरे किनारे पर हमें एक जेबरा का शव दिखायी पड़ा। उस शव को देखने से लगता था कि शेरों ने उस पर अच्छा हाथ साफ किया है। उन्होंने उस की हड्डियाँ भी चाट डाली थीं। हम लोग लौट आये। रास्ते में मैं ने एक हिरन का शिकार किया और उसे मोटर के पीछे बाँध दिया। मेरा खयाल था कि हिरन के ताजे खून की गंध से शेर उधर आ धमकेंगे। लेकिन वैसा नहीं हुआ। अंत में, मैं ने हिरन का शव उस जेबरा के शव के पास ही फेंक दिया।

जहाँ हिरन का शव फेंका था, उसी के आसपास मैं किसी सुरक्षित पेड़ की खोज में था। सहसा शेर के शिकार के बारे में मुझे एक मशहूर शिकारी की बात स्मरण हो आयी—शिकार के लिए जिस जानवर का शव रखना हो उस के पास ही एक गड्ढा बनाना चाहिये तथा उस गड्ढे में लेट कर ही शिकार करना चाहिये। ऐसा करने से निशाना चूकने का डर नहीं रहता।

इस प्रकार, मैं एक नया प्रयोग करने वाला था, जिस से समस्त शिकारी-वर्ग में खलबली मचने की संभावना थी। दरअसल, मैं जो प्रयोग करने वाला था वह शिकार के नियमों के पूर्णतया अंतर्गत नहीं आता था, लेकिन इस स्थान पर वह प्रयोग अवश्य सफल होगा, इस का मुझे विश्वास था। कितने ही शिकारियों का मत है कि शेर प्रकाश से घबराता है, लेकिन अपने अब तक के अनुभवों के आधार पर मैं कह सकता हूँ कि इस बात में कोई तथ्य नहीं है। प्रकाशयुक्त निर्जन स्थान में भी मैं ने शेर को निर्भयतापूर्वक जाते देखा है। जब वह अपने परिवार के साथ भक्ष्य की खोज में निकल पड़ता है उस समय यदि सामने आग लगी हो तो भी वह उस से नहीं घबराता। निशाना चूक न जाये, इसलिए राइफल की नली पर तेज प्रकाश देने वाली टार्च लगा कर शिकार किया जाता है, यह मैं जानता था। लेकिन, बत्ती जला कर शिकार खोजने की बात नहीं सुनी गयी थी। यही वह नया ढंग था जिस का प्रयोग मैं इस बार करने वाला था। उस के लिए आवश्यक 'प्रेशर लैम्प' भी मैं ने मँगवा लिया था।

मेरे अफ्रीकी साथियों ने मेरे कहने के अनुसार उस हिरन के शव के पास करीब आठ फुट की दूरी पर मेरे लेटने लायक एक गड्ढा खोद दिया। शाम होते ही मैं उस गड्ढे में लेट गया। मेरे बायीं ओर एक पिस्तौल तथा दायीं ओर एक राइफल भरी हुई रखी थी। उस मुलायम मिट्टी पर लेटते ही मुझे नींद आने लगी। मैं ने बड़े ही प्रयास से नींद पर काबू पाया। बार-बार मैं पिस्तौल तथा राइफल को छू कर अपने मन को आश्वस्त कर रहा था। धीरे-धीरे अँधेरा छाने लगा। मैं ने अपने पीछे की ओर रखा हुआ लैंप जला दिया।

कुछ देर बाद एक सियार वहाँ आया। मैं ने उसे भगा दिया। मंद-मंद हवा चल रही थी। इस से एक लाभ यह था कि मेरी गंध हिरन की गंध में मिल रही थी और शेर को मेरी उपस्थिति की खबर होने की संभावना नहीं थी। मैं ने अपने पास जो लैंप जला कर रखा था उस से मुझे बड़ा भय लग रहा था। कहीं उस तेज प्रकाश से लाभ उठा कर शेर मुझ पर पीछे से हमला न कर दे!

मैं बड़ा सतर्क था, फिर भी पहला

शेर कब आया और अपने लक्ष्य पर टूट पड़ा, इस का मुझे पता ही नहीं चल सका। लेकिन जब वह हिरन की हड्डियाँ चबाने लगा तब उस आवाज से मुझे शेर के आने का यकीन हो गया। मैं ने अपना सिर नीचे किया और चुपके से राइफल उठा ली। नरम मिट्टी में घुटनों के बल मैं लेट गया और राइफल में गोलियाँ हैं, इस का निश्चय कर निशाना साधा।

इतने में मुझे दूसरे शेर का सिर हिलता दिखायी दिया। शीघ्र ही एक तीसरे शेर का सिर भी दिखायी दिया।

हिरन के शव के पीछे एक शेर का सिर छिपा हुआ था। दूसरे का आधा चेहरा मेरी ओर था। वह बड़ा ही रोबदार तथा बड़े अयाल वाला शेर था। अपने अगले पैरों के बीच हिरन की जाँघ को दबा कर उसे खाने में वह लगा था। तीसरा शेर मेरे कुछ निकट बैठा, पूंछ हिलाता हुआ, दावत का आनंद ले रहा था। एकाएक हिरन के पीछे छिपा शेर उठ कर खड़ा हो गया।

मैं ने बड़ी सावधानी से उस शेर पर निशाना साधा। राइफल का खटका दबाया। राइफल भारी होने के कारण गोली छूटते ही मेरे कंधे को जोर का झटका लगा, जिस से दर्द होने लगा।

गोली की आवाज से शेर घबरा गये। उन्हें भागने का अवसर मिलने से पहले ही मैं ने अपने सामने वाले शेर पर गोली चलायी। इस गोली के झटके से मेरा दायाँ हाथ बिलकुल बेकार हो गया और जोर से दर्द करने लगा। अब फिर से कंधे से राइफल लगा कर निशाना लगाना कठिन हो गया।

दो गोलियों की आवाज से चौकन्ना हो कर तीसरा शेर मेरी ओर एकटक देखने लगा। मेरा कंधा दर्द कर रहा था। बहुत संभव था कि शेर मुझ पर हमला कर देता। अतः मैं ने तुरंत उस पर गोली चला दी। तीसरी गोली में तीसरे शेर का भी काम तमाम हो गया।

मशहूर शिकारी न होते हुए भी बड़ी आसानी से केवल तीन गोलियों में तीन शेरों का शिकार करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। साथ ही वहाँ के अफ्रीकी आदिवासियों को भय से मुक्त करने का श्रेय भी मिला।

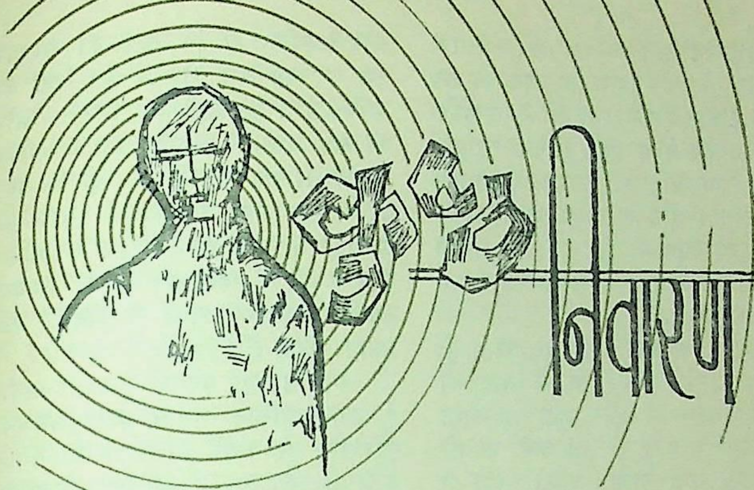
——अनु० ना० वि० सप्रे

राजेंद्र और धर्मेंद्र काफी अरसे बाद मिले थे। दोनों अपने कालिज जीवन की बातें कर रहे थे। "जानते हो, अपने क्लास की रीता ने मुझे कितना उल्लू बनाया था? मैं लगातार चार साल तक उस से विवाह का प्रस्ताव करता रहा था और वह मुझे अंत तक टालती रही थी," धर्मेंद्र ने कहा।

"उस ने मुझे भी काफी बेवकूफ बनाया," राजेंद्र ने कहा।

"तुम्हें कैसे?"

"कालिज छोड़ने के बाद मैं ने उस से विवाह का प्रस्ताव किया और वह तुरंत मान गयी।"



सपनकुमार

कोढ़ न केवल वैज्ञानिकों के लिए, अपितु समाजशास्त्रियों के लिए भी एक गंभीर समस्या है, क्योंकि कोढ़ी को समाज से बहिष्कृत करने की मान्यता आज तक चली आ रही है।

प्राय: लोग यही समझते हैं कि कोढ़ का कोई इलाज नहीं, किंतु वास्तव में ऐसी बात नहीं है। हाल का समाचार है कि ताजमहल के पास ही नया 'लेप्रोसेरियम' यानी कोढ़-निवारण-केंद्र खोले जाने के प्रस्ताव पर विचार हो रहा है। प्रस्ताव की जोरदार सिफारिश करते हुए कहा गया है कि इस कोढ़-निवारण-केंद्र के बन जाने से कोढ़ियों के प्रति लोगों में जो स्वाभाविक घृणा परंपरागत रूप से चली आ रही है, उस में परिवर्तन आ सकेगा और लोग धीरे-धीरे समझने लगेंगे कि कोढ़ी के प्रति घृणा नहीं अपितु सहानुभूति रखनी चाहिये।

मध्य युग के यूरोप में मान्यता थी कि किन्हीं पापों की सजा के रूप में ईश्वर कोढ़ की बीमारी का शाप देता है। एशियाई देशों में भी इसे नरक की एक ऐसी बीमारी के रूप में माना जाता रहा है जो ठीक नहीं की जा सकती।

कोढ़ मनुष्य का न केवल रूप विकृत कर देता है, बल्कि अंगों के गल जाने से उसे अपंग भी बना देता है। लोगों का खयाल

है कि कोढ़ छूत की भयंकर बीमारी है। इस में संदेह नहीं कि कोढ़ की छूत लगती है और ऐसे मरीजों को तुरंत कोढ़-निवारण-केंद्र में भरती करा देना चाहिये, लेकिन सभी व्यक्तियों का कोढ़ छूत वाला नहीं होता। यदि शुरू की हालत में ही इलाज की व्यवस्था हो जाये, तो मरीज ठीक हो कर समाज के सम्मानित सदस्य बन जाते हैं।

जिसे एक बार कोढ़ हो जाता है, उस के अँगूठे और उस के बाद की अँगुली के बीच में एक गड्ढा पड़ जाता है। इलाज से कोढ़ दूर हो जाने पर भी यह गड्ढा नहीं जाता। चीनी भाषा में इस गड्ढे को 'शेर का मुँह' कह कर पहचाना जाता है। लेकिन अब प्लास्टिक सर्जरी के मामूली आपरेशन से ही यह गड्ढा पूरी तरह गायब किया जा सकता है। हांगकांग के पास एक छोटा-सा द्वीप है, जहाँ हे लिंग चाऊ लेप्रोसेरियम है। कोढ़ के कारण मरीज पर मनोवैज्ञानिक रूप से जो कुप्रभाव पड़ता है, इस कोढ़-निवारण-केंद्र में उस का भी अच्छा इलाज किया जाता है। 'शेर का मुँह' बंद करने की कला भी खूब विकसित हुई है। इस क्षेत्र में बंबई की श्रीमती निंबकर ने पूरे विश्व में नाम कमाया है। अँगूठे के पास के गड्ढे के अलावा यदि शरीर में और भी किसी तरह की अपंगता आ गयी हो तो उस की पूर्ति के लिए नकली अवयव लगा देना भी कठिन काम नहीं। हे लिंग चाऊ लेप्रोसेरियम का अधिकांश खर्च 'मिशन टू लेपर्स' संस्था द्वारा उठाया जाता है। हांगकांग सरकार भी इस में समुचित सहायता देती है।

कोढ़ का सामना करने के लिए हांगकांग में ऐसी अच्छी अनुसंधानशालाएँ और अस्पताल हैं कि वहाँ की सरकार उन पर गर्व कर सकती है। वहाँ का 'सर्जिकल रिहेबिलिटेशन सेंटर' और भी कई बातों के अलावा सब से अधिक प्रसिद्ध तो इस बात के लिए है कि वहाँ पैर के उन फोड़ों का अद्‌भुत इलाज हो जाता है जो कोढ़ अपने मरीज को अभिशाप के रूप में देता है। नकली अवयव बनाने की प्रयोगशालाओं में चौबीसों घंटे प्रयोग चलते हैं।

कोढ़ से चेहरे पर जो कुरूपता आती है, उसे प्लास्टिक सर्जरी द्वारा लगभग पूरी तरह दूर करने की दिशा में बंबई के जे. जे. अस्पताल ने जो काम किया है उस पर सहज विश्वास नहीं होता। 'मिशन टू लेपर्स' संस्था ने अपने संचालक डाक्टर पाल ब्राण्ड को वेलोर के मेडिकल कालेज अस्पताल में 'आर्थोपीडिक सर्जरी' के प्रोफेसर के रूप में भेजा है। वेलोर के इस कोढ़-निवारण-केंद्र के अलावा कलकत्ता का 'हिंद कुष्ठ-निवारण संघ' भी कम प्रसिद्ध नहीं। इस की स्थापना सर लियोनार्ड राजर्स द्वारा १९२० में हुई थी। १९२७ तक उस का संचालन 'बेलरा' की भारतीय कौंसिल की ओर से होता रहा। 'बेलरा' ब्रिटिश लेपरोसी रिलीफ एसोसिएशन का छोटा नाम है। कोढ़ की प्रारंभिक अवस्था वाले हजारों मरीजों को 'हिंद कुष्ठ-निवारण संघ' में पूरा आराम मिला है। यहाँ के डाक्टर यहीं के विद्यालय में ट्रेनिंग पाते हैं।

'बेलरा' की स्थापना के पंद्रह वर्ष बाद कुष्ठ-सर्वेक्षण करने पर पाया गया कि सचमुच कोढ़ियों की संख्या में बहुत कमी आ गयी है और जो कोढ़ी बचे हुए हैं, उन की भी हालत में तेजी से सुधार होता जा रहा है।

पूरे विश्व में कोढ़ियों की संख्या लगभग १५० लाख कूती गयी है। एक-चौथाई मरीज बच्चे हैं। वेस्ट इंडीज और प्रशांत महासागर के द्वीप, एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमरीका में कोढ़ सब से अधिक है, लेकिन यूरोप से इस बीमारी को पूरी तरह नेस्तनाबूद कर दिया गया है। भारत और पाकिस्तान के कोढ़ियों की संख्या २४ लाख के आसपास है। अफ्रीका में २५ लाख कोढ़ी होने का अनुमान है।

१९२० तक कोढ़ का सचमुच कोई अच्छा इलाज नहीं था, लेकिन इस ऐतिहासिक वर्ष में सर लियोनार्ड राजर्स ने भारत के कोढ़ियों पर अनुसंधान करते समय कोढ़ का इंजेक्शन तैयार कर लिया। यह इंजेक्शन 'हाइडनोकैरपस' नामक तेल से बना है। जहाँ कोढ़ के विशेषज्ञ नहीं पहुँच सकते थे वहाँ भी इस इंजेक्शन को पहुँचाया जा सका और इस बीमारी की प्रारंभिक स्थिति में काफी हद तक सफल इलाज किया जा सका। इस इंजेक्शन से दर्द बहुत होता था और इलाज भी बहुत लंबे अरसे तक करवाना पड़ता था, लेकिन जितनी भी सफलता इंजेक्शन को मिल पायी, उस से आगे के लिए अनेक संभावनाएँ बनीं।

इंटरनेशनल लेपरोसी एसोसिएशन १९३१ में बना। मानव जाति को मिला कोढ़-जैसा अभिशाप दूर करने के लिए संपूर्ण विश्व के डाक्टरों, वैज्ञानिकों,

नेताओं, सामाजिक कार्यकर्ताओं आदि ने इस संस्था के नेतृत्व में अपना आपसी ज्ञान खूब बढ़ाया है। संस्था की पिछली सभा रियो डि जनीरो में हुई थी। उस में किये गये निर्णय के अनुसार आगामी सभा १९६८ में इंगलैंड में कहीं होगी।

भारत और नाइजीरिया के कोढ़ियों पर किये गये अनुसंधानों से 'सलफोन ट्रीटमेंट' का आविष्कार किया गया, जो औषध-विज्ञान के क्षेत्र में इस सदी की महानतम खोजों में से एक है। १९४३ में पहली बार अमरीका में 'सलफोन ट्रीटमेंट का इस्तेमाल हुआ और उस के तुरंत बाद भारत और नाइजीरिया में। १९४६ में डाक्टर काकरेन ने 'पेरेंट सलफोन' डी. डी. एस. से बने इंजेक्शन भारतीय मरीजों को बहुतायत से लगाये। इस के आगामी वर्ष 'बेलरा' की रिसर्च यूनिट ने डाक्टर लोव की देख-रेख में नाइजीरिया में 'सलफोन ट्रीटमेंट' में बहुत तरक्की की। 'डैप्सोन' नामक औषध को, जो सलफोन का एक यौगिक है, बहुत कम लागत पर व्यावसायिक स्तर पर निर्मित किया जा सकता है। डाक्टर लोव ने 'डैप्सोन' द्वारा खुराक में लेने की एक सस्ती और सुरक्षित दवा बनायी।

नाइजीरिया की केंद्रीय और प्रादेशिक सरकारों ने 'बेलरा' को सहायता देने में कोई कसर न छोड़ी। सरकार ने अविलंब 'नाइजीरिया लेपरोसी सर्विस' की स्थापना की। 'बेलरा' ने एक-एक कर अपने अधिकांश कोढ़ - निवारण-केंद्र 'नाइजीरिया लेपरोसी सर्विस' को सौंप दिये।

पूर्वी पाकिस्तान में कोढ़ का बहुत जोर है। १९५९-६० में 'विश्व स्वास्थ्य संघटन' की ओर से वहाँ सर्वेक्षण किया गया। १९६१ में त्रिवर्षीय कोढ़-विरोधी कार्यक्रम शुरू हो गया। जो लेप्रोसेरियम पहले से काम कर रहे थे, उन की क्षमताओं को अनेक गुना किया गया और नये-नये लेप्रोसेरियम खोले गये।

भारत और विश्व के अन्य सभी कोढ़-पीड़ित देशों में इस बीमारी को दूर करने की पूरी कोशिश की जा रही है, लेकिन अब तक जो उन्नति हो पायी है, वह किसी भी रूप में संतोषजनक नहीं है, क्योंकि दस में से आठ कोढ़ी रह जाते हैं जिन का कोई इलाज नहीं होता। क्षय और कोढ़ के कीटाणुओं में बड़ी समानता है, अतः फिलहाल इसी पर जोर दिया जा रहा है कि कोढ़ की संभावना कम करने के लिए तथा 'शुरू के हमले' की स्थिति में उपचार का इंतजार करने के दौरान क्षय का बी. सी. जी. टीका ले लिया जाये।

कोढ़ का इलाज बहुत लंबा है। उस में दो से चार वर्ष तक लग जाते हैं। कोढ़ के विशेषज्ञ अपना सब से अधिक ध्यान कोई ऐसा 'बैक्टीरियालाजिकल' इलाज ढूँढ़ने में लगा रहे हैं जिस से इतने लंबे अरसे को दो-चार मास के रूप में छोटा किया जा सके। चूहों के शरीर में कोढ़ की बीमारी आरोपित करने में सफलताएँ मिली हैं, जिस से कोढ़ का टीका बन जाने की संभावनाएँ बहुत बढ़ गयी हैं। हम उस दिन की प्रतीक्षा करें जब इस भयंकर रोग से मानव पूर्णतया मुक्त हो जायेगा। ●

कुछ चोरों ने एक स्कूल में सेंध लगा कर ६० बालपाइंट पेन चुरा लिये। हर पेन पर लिखा हुआ था, "ईश्वर तुम्हारे पापों को क्षमा करे!"

भारत के पूर्वी, दक्षिणी तथा पश्चिमी अंचलों के साहित्य में आधुनिकता के आविर्भाव का विहंगमावलोकन पिछले दो अंकों में किया गया। अब प्रस्तुत है उत्तर भारत के साहित्य का सर्वेक्षण तथा पुनर्जागरण युग की साहित्यिक प्रवृत्तियों का सार

साहित्य में पुनर्जागरण

प्रभाकर माचवे

कश्मीरी और पंजाबी भाषाओं में उन्नीसवीं शताब्दी में बहुत कम उल्लेखनीय साहित्य-निर्मिति हुई। कश्मीर में तो राजनीतिक उथल-पुथल हो ही रही थी, पंजाब भी शांत नहीं था। फिर भी वारिस शाह (१७३५–१७९८) की सुप्रसिद्ध 'हीर-राँझा' के बाद कोई बड़ी उपलब्धि आधी सदी तक नहीं मिलती। भाई वीरसिंह (१८७२–१९५७) ही सब से बड़े लेखक हुए जिन्होंने पंजाबी कविता और गद्य दोनों को नया मोड़ दिया। उन्होंने रहस्यवादी कविता और धर्म-प्रचारक उपन्यास तक सब-कुछ लिखा। एक साप्ताहिक पत्र 'खालसा समाचार' भी चलाया। राष्ट्रीयता और रोमांटिक धाराओं के वे एकसाथ प्रवर्तक और प्रवर्धक थे।

उर्दू में अवश्य उन्नीसवीं शताब्दी एक महत्वपूर्ण साहित्यिक काल-खंड रही। मुहम्मद नजीर (१७४०–१८३०) ने 'बनजारानामा' और 'आदमीनामा' लिखा। शुद्ध अध्यात्मवादी और प्रगति-वादी राजनीतिक दोनों धाराओं का, यानी गालिब (१८०६–१८६९) और इकबाल (१८७३–१९३८) का सूत्रपात इसी सदी में हुआ।

दरबारी कविता ने, जो नासिख (१८३६), दबीर (१८०३–१८७५), अनीस (१८०२–१८७४) की अलंकरण-प्रिय शैली में चल रही थी, जौक (१७८९-१८९४), मोमिन (१८००–१८५०) और दाग (१८३१–१९०५) के हाथों और निखार पाया। उर्दू कविता की विशेषता यही रही कि उस का कथ्य चाहे बदलता रहा, पर उस ने कलेवर बराबर नफीस से नफीस पहनना पसंद किया।

सर सैयद के 'असरुस्सनदिया' और नेचरी आंदोलन (अलीगढ़ आंदोलन) का बाद में यह परिणाम हुआ कि पश्चिम की हवा ने थोड़ा-बहुत रूढ़िवाद को झकझोरा।

शिवली नूमानी आलोचना में और अल्ताफ हुसैन हाली (१८३७–१९१४)



कविता में नयी हवा लाये। सरलता, और वर्ड्सवर्थ की तरह प्रकृति-प्रेम का दौर बढ़ा। मुंशी ब्रजनारायण चकबस्त (१८८२–१९२६) ने शुद्ध राष्ट्रीयता का दर्द-भरा स्वर इस तरह से उठाया कि हाली के मुसद्दस और मुनाजाते-बेवा भारतमाता की दारिद्र्य और शोषण की चीत्कार बन गये। 'अन्दाजे-बयाँ और' रखने की फिक्र हर शायर को थी, मगर एक महदूद बयाँ के भीतर ही।

हिंदी में उन्नीसवीं शताब्दी में यही सब स्वर समाहित मिलते हैं। हिंदी ने एक प्रकार से भारत की सभी भाषाओं के साहित्यों का समाहार और समन्वय अपने भीतर किया। वह मध्यदेश की भाषा थी, अतः भारत का हृदय उस में स्पंदित हुआ। कविता में भारतेंदु हरिश्चंद्र (१८४६– १८८४), श्रीधर पाठक (१८७६–१९२८) और अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (१८६५–१९४६) ने जो लीकें खड़ी बोली के लिए बनायीं उन का एक छोर ब्रज बोली और वृन्दावन के भक्ति-कल्पद्रुम से बँधा था; दूसरा 'ऊजड़ ग्राम' के अनुवाद और चोखे चौपदों से। मैथिलीशरण गुप्त (१८८६–१९६५) और माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा' में ये सब छोर जैसे समेकित और समंजित हुए। राष्ट्रीयता और रोमांटिक भावना, प्रकृति और प्रणय, पराधीनता की पीड़ा और सामाजिक सुधार की उमंग सब पद्य के माध्यम से उमड़ीं। गद्य में आगरे के लल्लूजीलाल (१७६३-१८३५) और मथुरा के लाला श्रीनिवासदास (१८५१-१८८७) के साथ-साथ रोहतक के बाबू बालमुकुंद गुप्त (१८६५-१९०७) ने उर्दू और हिंदी के बोले हुए रूप की एकात्मता को पहचाना और बामुहावरा और माँजी हुई शैली अपनायी, जो साहित्य और पत्रकारिता के बीच सेतु बनी। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी (१८७०-१९३८) ने उसे और सँवारा और परिनिष्ठित किया। प्रेमचंद (१८८०-१९३६) का जन्म भी उन्नीसवीं शताब्दी में ही हुआ था, पर उन का कृतित्व उर्दू से हिंदी की ओर बीसवीं सदी में मुड़ा। नाटक के क्षेत्र में भारतेंदु के अलावा कोई बड़ा नाम उन्नीसवीं सदी में नहीं मिलता, पर 'अंधेर नगरी' के लेखक ने इस साहित्यिक अस्त्र का अचूक उपयोग किया था और 'नीलदर्पण' (बँगला) तथा 'कीचकवध' (मराठी) की तरह सरकार का गुस्सा इस नाटक पर उतरा—यहाँ तक कि सन १९४६ में जब भारतेंदु-शताब्दि प्रयाग में मनायी जाने वाली थी, तो सुनते हैं 'अंधेर नगरी' के प्रदर्शन के लिए 'भारतीय जन नाट्य संघ' को इजाजत नहीं मिली थी। भारतेंदु ने ही शेक्सपीयर के 'मर्चेंट आफ वेनिस' का अनुवाद 'दुर्लभ बंधु' नाम से किया। सम्मेलन पत्रिका के स० ही० वात्स्यायन द्वारा संपादित 'भारतेंदु-विशेषांक' (१९५०) में मेरे दो लेख हैं: उन की लावनियों पर तथा उन के नाटकों में सामाजिक व्यंग्य पर, और उसी वर्ष के 'साहित्य संदेश' के विशेषांक में उन की अर्पण-पत्रिकाओं पर—जिन में इन बातों की ओर मैं चौदह वर्ष पूर्व इंगित कर चुका हूँ।

कुल मिला कर उन्नीसवीं सदी भारत के सामाजिक और राजनीतिक जीवन में 'पुनर्जागरण' (रिनेसाँ) का युग मानी जाती है। इधर १८५७ की क्रांति हुई, उधर उसी वर्ष बंबई, मद्रास, कलकत्ता के विश्वविद्यालयों की नींव रखी गयी। बंगाल ने तो हर क्षेत्र में महापुरुषों की आकाश-गंगा-सी निर्मित की। बिपिनचंद पाल

की शताब्दी पर जादवपुर विश्वविद्यालय से 'बंगाल में पुनर्जागरण' नाम से अँग-रेजी में अनेक महत्वपूर्ण लेखों का संग्रह-ग्रंथ निकला है; महाराष्ट्र में कई व्यक्तियों ने अपने-अपने ढंग पर इस शताब्दी के महा-पुरुषों, गोखले, रानडे, तिलक आगर-कर आदि, पर विश्लेषणात्मक और ऐति-हासिक विवरणात्मक जीवनियाँ और ग्रंथ लिखे हैं । पर भारतीय साहित्य पर समग्र रूप से इस शताब्दी के प्रभाव पर बहुत अधिक नहीं लिखा गया है । बँगला पर अँगरेजी साहित्य के प्रभाव पर अध्यापक प्रियरंजन सेन की अँगरेजी में पुस्तक है और तेलुगु में डा० वीरभद्र राव का शोध-ग्रंथ है 'तेलुगु पर आंग्ल प्रभाव' । मराठी में स्वर्गीय श्री दाते की एक बहुमूल्य ग्रंथ-सूची है । इस दिशा में बहुत-सा कार्य होना शेष है । मैं ने तो इस लंबे लेख में कुछ सूच-नाएँ मात्र एकत्रित की हैं और कई संकेत मात्र दिये हैं ।

मेरे विचार से आधुनिक साहित्य के इस उषःकाल में निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ सभी भारतीय भाषाओं में परिलक्षित होती हैं——

◆ संस्कृत तथा प्राचीन साहित्यिक परम्पराओं की ओर मोह

◆ विदेशी, विशेषतः अँगरेजी साहित्य के अनुकरण, अनुवाद की तीव्र इच्छा

◆ लोक-साहित्य या देशी पद्धति की उपेक्षा, या देहातों से नगर की ओर जाते हुए संस्कृति-स्रोत में अपनी जड़ों को भूलने की जल्दी

◆ अपनी विशेषता और सत्त्व (आइडेंटिटी) की खोज का प्रयत्न । उसी में से प्रादेशिक इयत्ताओं पर आग्रह बढ़ा

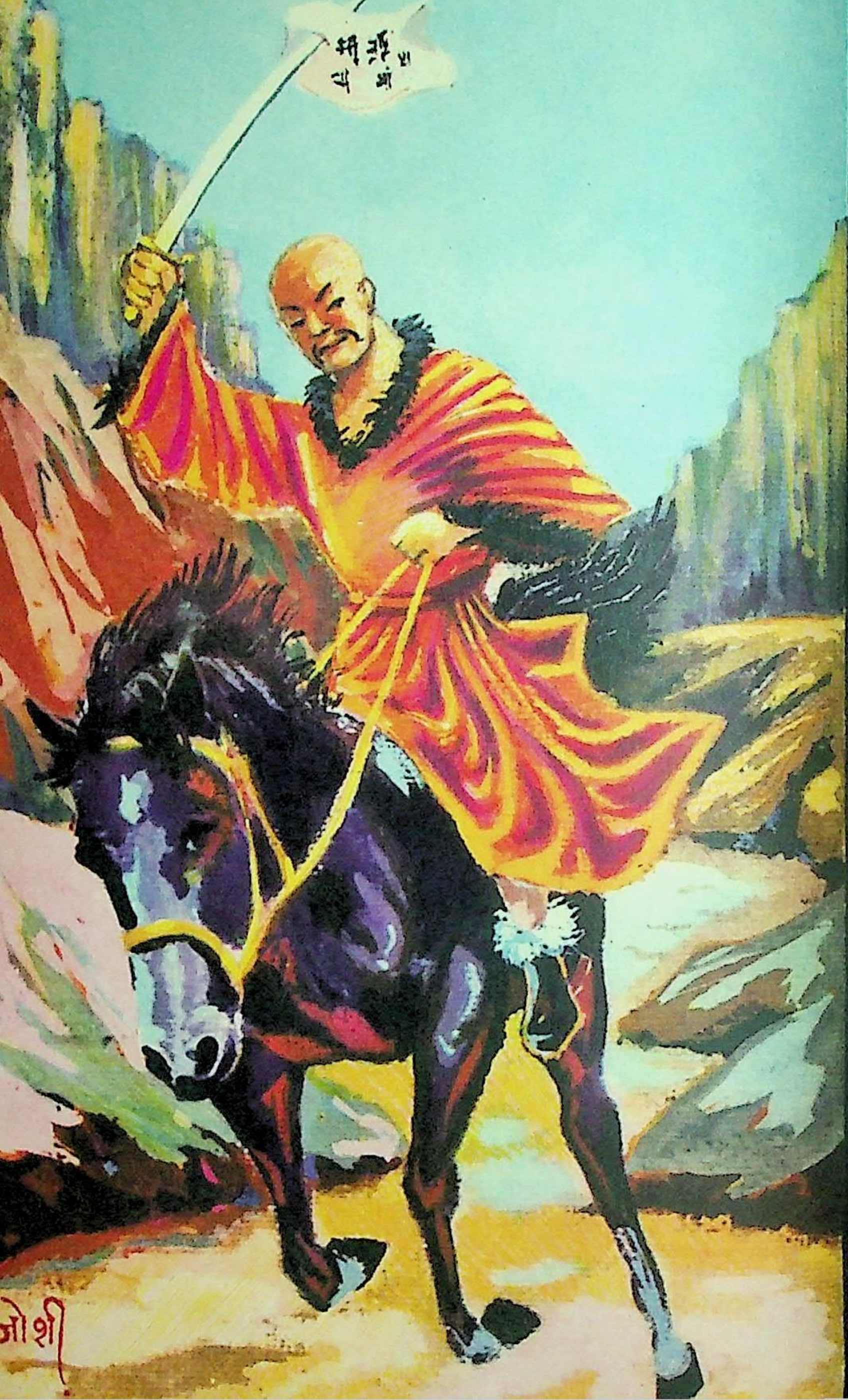
◆ भाषा के क्षेत्र में गद्य के साथ-साथ नये पारिभाषिक शब्दों को गढ़ने और आत्मसात करने की छटपटाहट

◆ साहित्य की 'टेकनीक' में फारसी रुबाई, गजल, मसनवी की तरह से अँगरेजी 'सानेट', 'ओड' (संबोधन-गीत), मुक्तक आदि की ओर झुकाव । नाटक में सामाजिक समस्याओं के निरूपण । संघर्ष और ट्रैजेडी का नया युग-बोध । उपन्यास में परिवेश के छायाचित्रात्मक यथार्थ-वर्णन की ओर झुकाव ।

उन्नीसवीं शताब्दी से ही आज के साहि-त्यिक मूलभूत प्रश्न——कल्पना बनाम यथार्थ, राष्ट्र बनाम समाज, प्रदेश बनाम व्यक्ति, आदि——शुरू हो जाते हैं । जिस गति से हमारा समाज उद्योग और विज्ञान के क्षेत्र में बदला है; साहित्य में उस का प्रति-फलन कच्छप-गति से ही हुआ है । मूलतः भारतीय भावनाएँ और चिंतन प्रायः अपरि-वर्तित-सा रहा है । यह 'स्थायी' भाव हमारे रस को विरस बनाता रहा है और आधु-निकता की सच्ची प्रतिष्ठा में बाधक रहा है, जैसे समाज के विकास में जाति-भेद । हमारे राष्ट्रीय विकास के साथ-साथ हमारे साहित्य का भी 'एकोऽहं बहुस्याम' कैसे होता गया, प्रादेशिक अहंताएँ कैसी बढ़ीं, यह एक अन्य विषय है । ●

श्याम बाबू काफी मोटे थे और दुबले होने के तमाम उपाय कर के हार चुके थे । राम बाबू ने उन्हें सलाह दी कि वे घुड़सवारी किया करें । श्याम बाबू ने सलाह मान कर एक घोड़ा खरीद लिया । कुछ दिन बाद राम बाबू ने उन से पूछा कि क्या वे कुछ दुबले हुए ? "मैं तो नहीं, हाँ घोड़ा काफी दुबला हो गया है," उन्होंने उत्तर दिया ।




जोशी

पर्ल बक

तिब्बत की छाती पर

कमांडर तिब्बत के किसी पहाड़ी इलाके में एक मोड़ पर खड़ा था और देख रहा था अपनी बटालियन को जो तेज हवाओं का सामना करने के लिए सिर झुका कर, एक बारीक कतार बनाती हुई, सँकरी तथा चट्टानी पगडंडी पर किसी तरह आगे बढ़ रही थी। पूरे एक हजार सैनिकों की कतार और एक-एक सैनिक भयंकर हथियारों से लैस! अजेय थी वह बटालियन–दुनिया की सर्वोत्कृष्ट सेना का एक हिस्सा। सर्वोत्कृष्ट! हाँ, कमांडर को पूरा यकीन था इस पर। वह उत्साह दिलाने के लिए जोर से चिल्लाया, "रुक जाओ! आज कैम्प यहीं!"

सैनिकों ने आज्ञा का पालन उसी तरह किया जिस तरह वे हमेशा से करते आये थे। उन्होंने अपने चेहरे कमांडर की ओर उठाये और मुसकरा दिये। गर्व से कमांडर की छाती फूल उठी। वह उछल कर एक ऊँची जगह पर चढ़ गया ताकि सब उसे और भी स्पष्टता से देख सकें–छाती पर हाथ मोड़ कर वह तनता हुआ उस तिब्बती धूप में खड़ा था। उस के पैर कुछ फैले हुए थे और पीठ की तरफ हिमाच्छादित पर्वतों की चोटियाँ आकाश चूम रही थीं। उस के दर्प-भरे चेहरे पर आत्मविश्वास और

नोबल पुरस्कार-विजेता पर्ल बक, जिन का उपन्यास 'द गुड अर्थ' विश्व की महानतम कृतियों में से एक माना जाता है, अपनी सरल भाषा और सहज शैली के लिए विख्यात हैं। 'पैविलियन आफ विमेन', 'कम माई बिलवेड', 'कमांड द मार्निंग' आदि उन की अन्य लोकप्रिय कृतियाँ हैं। लेखिका ने अपने जीवन के अनेक बहुमूल्य वर्ष चीन में बिताये हैं, अतः वहाँ की धरती तथा जन-सामान्य के मनोभावों से भली भाँति परिचित हैं। वहाँ की तानाशाही शासन-प्रणाली के दुष्परिणामों की ओर भी उन्होंने संसार का ध्यान आकर्षित किया है। तिब्बत की स्वतंत्रता का हनन करने वाले आतंकवादी चीनी शासकों पर उन की एक दीर्घ-कथा 'द कमांडर ऐंड द कमिसार' का यहाँ संक्षिप्तीकरण है।

रूपा०—मनहर चौहान



उमंग की मुसकान उभर आयी। कमांडर चूँकि बहुत ही कम मुसकराता था, यह मुसकान सब को एक अजूबा ही लगी। जो व्यक्ति "तीसरी बटालियन" का नेता हो, उसे ज्यादा मुसकराना चाहिये भी नहीं। कमांडर 'काने ड्रेगन' के नाम से प्रसिद्ध था, क्योंकि किसी युद्ध में उस की एक आँख चली गयी थी। उस के सारे सैनिक विख्यात 'सेकंड फील्ड आर्मी' से लिये गये थे।

करीब पंद्रह वर्ष पहले, जब वह सत्रह वर्ष का दमकता युवक था, उसे उस के गाँव से पकड़ कर 'कम्युनिस्ट आर्मी' में दाखिल किया गया था। साथ में काओ ली नामक उस का दोस्त भी पकड़ा गया था। तब से आज तक उस ने जितनी स्वामिभक्ति के साथ फौज की सेवा की थी, उस का पुरस्कार उसे अब दिया गया था।

पंद्रह वर्ष पहले की गयी उस धर-पकड़ में तेईस और लोग भी थे। उन में से कुछ युवक थे, कुछ प्रौढ़। यांग फू-पिंग नामक एक युवक भी उन तेईस में था। वह देखने में कमजोर और बीमार-सा लगता था। यही कारण था कि शुरू में उसे सेवा के योग्य समझा ही न गया, लेकिन जब उस ने देखा कि वह चुना नहीं जायेगा, उस ने प्रार्थना की कि सेवा का अवसर उसे भी दिया जाये।

"सारे गाँव में मैं ही अकेला हूँ जो पढ़-लिख सकता हूँ। मार्क्स और लेनिन के अलावा मैं ने अपने महान नेता माओ को भी पढ़ा है। मैं आप लोगों के लिए सचमुच उपयोगी रहूँगा," उस ने कहा।

फौजी अधिकारियों ने, जो नये रंगरूट भरती करने के लिए ही निकले थे, उस की बात पर गौर किया—उन्होंने

उस से कुछ सवाल पूछे, जिन के उस ने बहुत संतोषजनक उत्तर दिये। अधिकारियों ने उसे भी साथ ले लिया। उसे राजनीति पढ़ाने वाले एक स्कूल में रखा गया ताकि वह अच्छा प्रवक्ता बन सके। वह चतुर था, बहुत तेजी से सब सीखता गया। अपने से बड़ों के साथ उस का व्यवहार नम्र और मधुर रहता, लेकिन छोटों के साथ वह जरा गर्वीले, बल्कि तानाशाही ढंग से पेश आता। अपनी बराबरी के लोगों में उस का स्थान हमेशा प्रथम रहता। उस ने अपने गाँव के उस लड़के को भी पीछे छोड़ दिया जो अब 'तीसरी बटालियन' का कमांडर था। कमांडर गाँव का सब से आकर्षक लड़का माना जाता था–सब से मजबूत और दिलेर भी। कोई दौड़ ऐसी न होती जिस में वह अव्वल न आता। प्रवक्ता की माँ उस की ओर इशारा कर के कहा करती, "काश हमारा लड़का भी ऐसा ही तेज होता! पता नहीं, ईश्वर ने कौन-से अपराधों की सजा दी है। हमारा बच्चा तो इतना कमजोर है कि क्या करें इस का!" प्रवक्ता अभी तक अपनी माँ के उन उलाहनों को नहीं भूल सका था। कमांडर के आकर्षक चेहरे और मजबूत शरीर के प्रति उस की ईर्ष्या तथा घृणा समय बीतने के साथ जरा भी कम न हो पायी थी।

वह कमांडर के बारे में सब से कहा करता, "इसे मैं बचपन से देख रहा हूँ। इस में कोई शक नहीं कि इस में बड़ी ताकत है, लेकिन ताकत तो जानवरों में भी होती है! इस का दिमाग इतना मोटा है कि सच कहता हूँ चौबीसों घंटे इस की निगरानी रखनी चाहिये। इतने बरसों की पढ़ाई के बावजूद इस ने कुछ नहीं सीखा। अब भी यह 'जिस की लाठी, उस की भैंस' में विश्वास रखता है।"

वास्तविकता यह थी कि कमांडर कुछ मामलों में बहुत ही कोमल व्यक्ति था और अपने उन साथियों को बेहद प्यार करता था जो उसे पसंद आ जाते थे। जब उसे उस की माँ से जुदा कर के जबरन ले जाया जा रहा था, वह दहाड़ मार कर रोया था, लेकिन दुख के इस पहले आघात के बाद उस के दिन बड़ी मौज-मस्ती में बीतने लगे थे। उस की खुशी का एक कारण यह भी था कि बचपन का दोस्त काओ ली उस के साथ ही रहता था। आपस में चोरी-चोरी वे अपने गाँव और माता-पिता की बातें करते। बातें करना तो दूर, यह सब अपने विचारों में लाना भी कानूनी दृष्टि से एक अपराध था, लेकिन वे चोरी-चोरी ऐसा किया करते।

कमांडर के साथ कभी कोई दुर्व्यवहार नहीं हुआ था। चूँकि वह एक सादा आदमी था, अपनी नयी जिंदगी के साँचे में वह पूरी तरह ढल गया था। दुश्मन की फौजों के साथ अकसर ही भिड़ंत हुआ करती। कभी वह आगे बढ़ता, कभी पीछे भी हटना पड़ जाता। दोनों ही स्थितियों में वह उत्तेजना और प्रफुल्लता अनुभव करता। एक या दो वर्षों में ही वह अपने परिवार को लगभग भूल गया। परिवार के सदस्यों की जगह उस के कामरेडों ने ले ली। काओ ली बिलकुल भाई की तरह उस के साथ रहा था और अब उस के ईमानदार सहयोगी के रूप में काम कर रहा था। मजबूत और जोशीला होने के कारण कमांडर को फौजी स्कूल में भेजा गया था, जहाँ उस ने बड़ी तेजी से तरक्की की

थी। हरेक तरक्की के साथ बताया जाता कि उस की उपलब्धियों की सूचना नियमित रूप से उस के परिवार को भिजवायी जाती है और उन्हें पहले से और ज्यादा सुविधाएँ मिलने लगी हैं। हर साल वह 'नव-वर्ष' के अवसर पर अपने परिवार को एक खत लिखा करता। हर साल उसे तुरंत ही उस का जवाब मिलता। जवाब में यही कहा जाता कि तुम्हारी तरक्की के साथ-साथ हमारी भी हालत बेहतर होती जा रही है और निश्चय ही यह नया शासन बहुत अच्छा है। इस तरह कमांडर को यह अहसास होता रहता कि वह अब भी अपने परिवार की मदद कर रहा है, हालाँकि परिवार में रहने की उसे अब कोई इच्छा या आवश्यकता नहीं थी।

इस समय, जब कि वह उस ऊँची चट्टान पर खड़ा था, उसे विचार आया कि ज्यों ही यह अभियान पूरा होगा, वह इस की सूचना परिवार को दे देगा–'नव-वर्ष' के महोत्सव का इंतजार किये बिना। उसे पूरा यकीन था कि अभियान में उसे सफलता ही मिलेगी। इस प्रकार न केवल उस के परिवार का, बल्कि उस के पूरे गाँव का गौरव बढ़ जायेगा।

अभियान का उद्देश्य पूर्णतया स्पष्ट था। उस के जनरल ने कहा था, "पश्चिम की पहली फौजी चौकी की तरफ बढ़ो। वहाँ तुम्हें रसद और धन पहुँचाना है। यह ज्यादा-से-ज्यादा छह दिनों का मार्च है।" और जनरल ने पीछे मुड़ कर तिब्बत के उस विशाल नक्शे की ओर देखा था जो एक दीवार पर लगा हुआ था। उस ने नक्शे के एक बिंदु पर अपनी अँगुली रख दी थी, "तुम्हें यहाँ पहुँचना है। जिस संदूक में चाँदी की ईंटें हैं, उस की सारी जिम्मेदारी तुम्हारी होगी। यह चाँदी सैनिकों को तनख्वाह देने के लिए है, ताकि वे भोजन खरीद सकें और पहाड़ी लोगों को मजदूरी पर बुला सकें।"

यहाँ जनरल अचानक रुक गया था और मुड़ कर कमांडर की आँखों में देखने लगा था, "और...मैं चाहूँगा कि प्रवक्ता भी तुम्हारे साथ जाये। इस से तुम्हें परेशानी के वक्त सही राय और मदद मिल सकेगी।"

नवयुवक प्रवक्ता याँग फू-पिंग जनरल के पीछे ही खड़ा था। वह पहले से कुछ साँवला हो गया था, लेकिन उस का नाटा, छरहरा बदन वैसे-का-वैसा था। सूती कपड़े की उस की भूरी पोशाक बहुत साफ नहीं थी। कमांडर ने उसे पहचान लिया। बचपन से युवावस्था तक जो कमांडर से होड़ करता रहा था, जिस की आँखें वेधक थीं और जिस के जबड़े से विशेष तरह की धिक्कार-भावना प्रकट होती थी—वही याँग फू-पिंग। आँखों और जबड़े में सचमुच कोई अंतर नहीं आया था। कमांडर ने प्रवक्ता को घूर कर देखा और तुरंत उसे वे सारे व्यंग्य, वे सारे उलाहने याद आ गये जो गाँव में उस ने इसी प्रवक्ता के कारण सहे थे—

"अबे, गधे! रास्ते में क्यों खड़ा है? हट! जानता नहीं, मैं कितना विद्वान हूँ?"

"उल्लू के पट्ठे! एक ही झापड़ में तेरी जान निकल जायेगी।"

"अरे, जा! पहले पढ़ना-लिखना सीख, वरना जिंदगी भर गधा ही रह जायेगा..."

आज कमांडर की बारी थी। उस ने कहा, "प्रवक्ता का शरीर बहुत कमजोर है। ठण्डी हवा और थकान-भरा

सफर यह कैसे सहेगा ? पहाड़ों में खाने-पीने का भी सही इंतजाम नहीं होता।"

"यह हमारा सब से योग्य प्रवक्ता है," जनरल ने उत्तर दिया, "यह तुम्हारे साथ जरूर चलेगा। पैदल नहीं, घोड़े पर। तुम न केवल इसे घोड़ा दोगे, इस का तंबू भी चट्टान के गरम हिस्से पर लगाओगे। जब तुम्हें तिब्बत के क्रूर लोगों का सामना करना होगा, इस के बिना तुम्हारा काम नहीं चलेगा। तुम तिब्बतियों की भाषा नहीं जानते। यह जानता है।"

कमांडर और प्रवक्ता एक-दूसरे को कुछ क्षणों तक घूरते ही रह गये। अंततः कमांडर दूसरी ओर देखने लगा और बोला, "रास्ते में किसी तरह के खतरों की आशंका है ?"

"कुछ तिब्बती डाकू पहाड़ों में छिपे हुए हैं। उन की संख्या ज्यादा नहीं है और हथियार के रूप में भी उन के पास बस तीर-कमान ही हैं।"

कूच करने से पहले जब कमांडर ने अपने सैनिकों के सामने इन डाकुओं का जिक्र किया तो बड़े ही आश्चर्य के साथ उस ने 'याँग्त्सी नदी के कुख्यात घुमक्कड़ों' के चेहरों पर भय की रेखाएँ देखीं। न केवल रेखाएँ, बल्कि भय की कुछ बुदबुदाहटें भी सुनायी पड़ीं।

"न जाने कितने डाकू पहाड़ों में छिपे होंगे !"

"इस का भी क्या ठीक कि उन के पास तीर-कमान ही हैं ? वे कहीं से बंदूकें भी तो ला सकते हैं।"

यह सुन कर प्रवक्ता को गुस्सा आ गया और उस ने चिल्ला कर कहा, "तुम लोग हमारे महान नेता माओ पर यकीन रखते हो या नहीं ? सैकड़ों साल से तिब्बती जनता गुलाम रही है। हम ही ने उन्हें पश्चिम के पूँजीवादी गीदड़ों से छुटकारा दिलाया। नफरत ! कैसी नफरत ? वे तो हमारा स्वागत करेंगे। महान माओ के निर्देशन में वे दिन-रात कड़ी मेहनत कर रहे हैं ताकि अच्छे समाजवादी बन सकें।"

सैनिकों ने खामोशी कायम रखी थी, क्योंकि उन्हें आज्ञा थी कि प्रवक्ता की किसी बात का कभी जवाब न दिया जाये।

लेकिन कमांडर अपने को न रोक सका। बोला, "मेरे सैनिक अच्छी तरह जानते हैं कि उन्हें क्या करना है और क्या नहीं। जब वे पसोपेश में होंगे तो मेरे पास आयेंगे। तुम्हारी सलाहों की उन्हें शायद ही जरूरत पड़े।"

सुन कर प्रवक्ता ने एक तरफ थूक दिया और जूते से मसलने लगा। तुरंत ही कमांडर को वह याद आ गया जो अब तक नहीं आया था— जब भी गाँव के लड़के प्रवक्ता के कमजोर शरीर का मजाक उड़ाते, वह इसी तरह जवाब दिया करता। मैं थूकता हूँ तुम पर ! तुम्हारी खोपड़ी पर मेरा जूता ! यही अर्थ होता उस का।

प्रवक्ता कहता रहा, "पूंजीवादी लोग तिब्बतियों को घूस देना चाहते हैं, लेकिन इने-गिने मासूम लोगों को अपवादस्वरूप छोड़ दें तो कोई भी उन की घूस नहीं लेता। तिब्बतियों को तो पूँजीवादयों से बड़ी ही सख्त नफरत है। सभी जानते हैं कि उन के नेता दलाई लामा को पूँजीवादियों ने ही पकड़ कर हिंदुस्तान में नजरबंद कर रखा है। सच पूछें तो तिब्बतियों को हमारा ही इंतजार है, क्योंकि हम उन्हें आजादी दिलाने के लिए कमर कसे हुए हैं।"

इतना उत्साह दिलाने के बावजूद वे सैनिक सहज न हो पाये। बच्चों की तरह उन्होंने लुक-छिप कर कमांडर से

शिकायत की कि उन्होंने आज तक जितने भी तिब्बती देखे हैं, सभी बहुत ऊँचे और ताकतवर हैं। वे दुर्गम पहाड़ियों पर भी इतनी आसानी से चढ़ जाते हैं, मानो आदमी न हों, याक हों।

कमांडर को जोर की हँसी आ गयी। उस ने उन्हें जोर से झिड़क दिया और वे आँखें मिचमिचाते हुए उन सँकरी-पगडंडियों पर सरकते रहे. जिन के दोनों ओर ऊँची चोटियाँ आकाश को छू रही थीं।

कमांडर ने सब को आश्वासन देते हुए कहा कि हमारी संख्या बहुत बड़ी है। कंदराओं में छिपे दो-चार डाकुओं से हमें क्या डरना? इस के अलावा, हमें दो तिब्बती मार्ग-दर्शक भी तो दिये गये हैं।

ये दो तिब्बती मार्ग-दर्शक भी कम परेशानी के कारण नहीं थे, क्योंकि कमांडर और वे एक-दूसरे की भाषा नहीं जानते थे। इस के अलावा, सीमावर्ती चौकी पर तैनात चीनी अधिकारी ने आगे विशेष सावधानी बरतने की चेतावनी भी दी थी।

"तिब्बती डाकुओं पर बिलकुल भरोसा मत करियेगा," अधिकारी ने बताया, "उन का रंग चट्टान के रंग से इतना मिलता-जुलता है कि आँख के ऐन सामने हों तो भी दिखायी न दें। वे खाइयों में छिपे हुए हैं। निगाह पड़ते ही उन्हें गोली मार दीजिये। करीब आने का मौका ही न दें। वे बहुत मक्कार और निर्दय हैं।"

"चीनियों की छापामार चालों में मैं बहुत माहिर हूँ," कमांडर मुसकराया, "मैं ने खुद अपने कानों से महान माओ का भाषण सुना है। उन का एक-एक शब्द मुझे याद है कि युद्ध में उन्होंने कैसी चालें खेली थीं।"

अपने सैनिकों के साथ सब से आगे चलते हुए वह एक-एक कदम बहुत चौकन्नेपन के साथ उठा रहा था। माल ढोने वाले घोड़ों में से किसी एक का वह अपनी सवारी के बतौर इस्तेमाल करने का हक रखता था, लेकिन तो भी वह पैदल ही चल रहा था। प्यार की सिर्फ एक किस्म वह जानता था और वह प्यार था अपने सैनिकों के लिए। आज तक उस ने नहीं जाना था कि औरत का प्यार क्या होता है। ऐसे प्यार के लिए उस के पास वक्त ही नहीं था। वासना की जब धधक उठा करती तब वह किसी अजनबी औरत को किसी अजनबी जगह में अपनी पाशविकता के सामने मजबूर कर लेता। अकसर तो युद्ध की थकान ही इतनी ज्यादा होती कि वासना धधक ही न पाती। औरतों से संबंधित कोई विचार आये महीनों गुजर जाते। स्वभाविक ही था कि उस के अंदर प्यार करने की जो मूल प्रवृत्ति थी वह अपने सैनिकों को प्यार कर के ही संतुष्ट होती थी। सैनिक उस की अपनी संतानों की तरह थे। वह हृदय से चाहता था कि वे खुश रहें और उन्हें खुश रखने का एक ही तरीका उस के पास था— उन्हें हर तरह के आश्वासन देना।

"आराम करो," उस ने उन की ओर हाँक लगायी, "हम यहाँ भोजन करेंगे। फिर नींद भी लेंगे। मजे करो, दोस्तो! खुश हो जाओ! कल हम दर्रे तक जरूर पहुँच जायेंगे। हमारे मार्गदर्शकों ने, देखो, आग जला भी ली!"

लेकिन ये शब्द स्वयं उसी को कोई आश्वासन न दे सके, क्योंकि उन मार्ग-दर्शकों ने उस की या उस के सैनिकों की अब तक कोई विशेष परवा नहीं की थी। याक के गोबर से बने कंडों से उन्होंने

आग जलायी थी और पत्थरों का एक छल्ला-सा बना कर उस पर चाय उबालने का छोटा-सा ताँबे का पात्र रख दिया। उस की मुड़ी हुई नली में से भाप निकल रही थी। कुछ ही मिनटों में उन की चाय तैयार हो जायेगी—— विशेष तरह की गाढ़ी तिब्बती चाय। उस में वे लोग अजीव-सी गंध वाला अपना मक्खन मिलायेंगे, जो वे अपने साथ लेते आये हैं। 'कैसी घटिया चाय!' उस ने सोचा, लेकिन तो भी उस के मुँह में पानी आने लगा था। सुबह से अब तक न तो उस ने खाया था, न उस के सैनिकों ने ही।

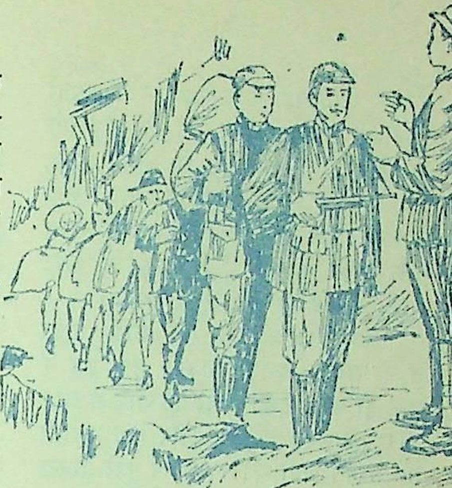
"रास्ते में जो भी मिले, उसी को खाते चलना," जनरल ने उन्हें विदा करते समय कहा था।

"यही होगा, कामरेड!" कमांडर ने उसे तपाक से जवाब दिया।

विडंबना यह थी कि इन तिब्बती पहाड़ों में न कोई फलदार वृक्ष नजर आया, न कोई गाँव या कसबा ही। यहाँ केवल नंगी चोटियाँ थीं या बर्फीली ऊँचाइयाँ।

वह उन मार्गदर्शकों की ओर देखता हुआ चीनी भाषा में गुर्रा उठा, "ओ तिब्बती कुत्तो! चौबीसों घंटे तुम्हें भूख ही लगी रहती है? एक घड़ी का भी चैन नहीं?"

मार्गदर्शकों पर इस की कोई प्रतिक्रिया न हुई। ऐसा नहीं था कि चीनी भाषा वे बिलकुल न समझते हों, लेकिन उन के साँवले और कुछ-कुछ लाल पड़ गये चेहरे उन तूफानी हवाओं में निर्विकार ही बने रहे। ताँबे के दो कटोरों में उन्होंने चाय ढाली और सुड़कने की तेज आवाज करते हुए वे चाय पीने लगे। कमांडर के पेट में भूख के दर्द की एक लकीर-सी बन आयी



और वह दूसरी ओर घूम गया।

'बेचारे सैनिक!' उस ने उस ऊँची चट्टान पर फिर से खड़े होते हुए सोचा। सकरी पगडंडी पर चलने के लिए संघर्ष करते सैनिक! सभी की पीठ पर सामान का बहुत बड़ा बोझ लदा हुआ था। जब वे अपने कमांडर के करीब आये, भूख और थकान से उन के चेहरों का रंग उड़ गया था। कमांडर का दिल पसीजने लगा। यह उस का अपना ही कसूर था कि एक-एक सैनिक को इतना बोझ लाद कर चढ़ाइयाँ और ढलान पार करने पड़ रहे थे। सीमांत की चौकी पर उस ने बहुतेरी कोशिश की कि सामान ले जाने के लिए घोड़े और याक मिल जायें, लेकिन घोड़ा एक भी न मिल सका और जो याक मिले वे अँगुलियों पर गिने जा सकते थे। चौकी पर तैनात तिब्बतियों के भावशून्य चेहरे तथा आँखें कमांडर पर टिकी रह गयीं और वह चीखने लगा, "कैसा देश है तुम लोगों का? यहाँ घोड़े भी नहीं हैं? भाड़ में जाओ तुम लोग! मरो!"

किसी तिब्बती ने कोई जवाब न दिया, लेकिन प्रवक्ता के कानों में कमां-

डर के शब्द पड़ चुके थे। उस ने अपनी छोटी-सी किताब नीचे रख दी और सब के सामने ही कमांडर से उलझ पड़ा, हम अपने से छोटे लोगों को गाली नहीं दे सकते। इस की मनाही है। हमारे महान नेता माओ ने कहा है कि प्रजा को छोटे भाई और दोस्त की तरह रखो।"

कमांडर प्रवक्ता को कोई उत्तर न दे पाया। लगभग गुर्राते हुए उस ने पास ही खड़ी एक मुरगी को जोर से लात मारी। मुरगी चीखती और धूल उड़ाती हुई भागने लगी और कमांडर पूरी ताकत से चिल्लाया, "नहीं चाहिये घोड़े! हम खुद ही घोड़ों की तरह मजबूत हैं। सारा माल हम खुद ही ढो कर ले जायेंगे।"

लेकिन अगले दिन कुछ घोड़े प्राप्त हो गये। उस ने उन पर जितना भी अधिक संभव था माल लदवाया और कहा, "ये आगे-आगे चलेंगे।" बचा हुआ माल सैनिकों द्वारा ढोया जाना था। माल सब में बराबर-बराबर बाँट दिया गया।

अभियान के पाँचवें दिन कमांडर उलझन में पड़ गया, क्योंकि उस ने पाया कि जब वह जोश दिलाता है तो बहुत कम सैनिक वाकई जोश में आते हैं।

सैनिक नजदीक आये— एक के बाद एक। पीठ पर लदे माल के फीते ढीले करते हुए उन्होंने उसे जमीन पर पटक दिया और मुँह खोल कर हाँफने लगे। फिर वे बैठ गये। कुछ सैनिक चट्टानों पर जा लेटे। चूंकि चट्टानें बहुत ठंडी थीं, तुरंत उन्हें उठ जाना पड़ा। अपनी आग के पास बैठे वे तिब्बती मार्गदर्शक सैनिकों के प्रति कोई सहानुभूति न रखते हुए चुपचाप देखते रहे। कमांडर को उन की यह क्रूरता इतनी असहनीय लगी कि वह उन्हें भद्दी गालियाँ देने लगा। गालियाँ चीनी भाषा में थीं, अतः मार्गदर्शकों को ऐसा दिखावा करने में कोई दिक्कत न हुई कि वे समझ नहीं रहे हैं। कमांडर उन्हें सिर्फ गालियाँ दे सकता था। गालियों का अर्थ समझते चीनी सैनिक हँसने लगते। यह हास्य ही कमांडर का एकमात्र दिलासा होता। काश, उलझे हुए रास्तों पर आगे बढ़ने के लिए वह इन मार्गदर्शकों का मोहताज न होता! तब इन क्रूर तिब्बतियों को वह इतना पिटवाता कि जन्म भर याद रखते। मार्गदर्शक 'खंपा' जाति के तिब्बती थे। छह फुट से भी ऊँचे और राक्षसों की तरह मजबूत। लेकिन एक-एक तिब्बती को कई-कई चीनी सैनिक घेर लेते, फिर उन का कचूमर कैसे न निकलता?

रसद ज्यादा नहीं थी, इसलिए सब ने केवल उतना खाया जिस से भूख पूरी तरह शांत न हो, न सही, लेकिन काम चल जाये। सब सोने की तैयारी करने लगे। चाँदी का संदूक कमांडर ने तकिये के बतौर अपने सिर के नीचे रख लिया और सो गया।

छठवाँ दिन अभियान का अंतिम दिन था। सुबह पूर्व दिशा कुछ ऐसी हो गयी, मानो क्षितिज में आग लग गयी हो। वे उठे और एक घंटे में बिलकुल तैयार हो कर रवाना हो गये। दोपहर को, जब वे भोजन के लिए रुके, प्रवक्ता कमांडर के पास आया। कमांडर उस की उपेक्षा करना चाहता था, लेकिन इस बार यह असंभव रहा। छोटे कद के उस आदमी का चेहरा बहुत कठोर था। तेज हवा उस के शब्दों को बहा न ले जाये, इस के लिए उस ने अपने मुँह पर दोनों हथेलियों से कुप्पी बना कर कहा, "कामरेड, मुझे हर हालत में घोड़ा मिलना चाहिये।"

कमांडर ने उसे घूर कर देखा—

'मेरे पास इस समय एक भी घोड़ा बेकार नहीं है।"

"मैं और ज्यादा पैदल नहीं चल सकता।"

"तो ?"

"किसी घोड़े पर से आधा बोझ हटाओ और उस के बजाय मुझे उस पर लदने दो।"

"हटाया हुआ बोझ कौन उठायेगा?"

"तुम! और कौन?"

कमांडर ने जोर से चीखना चाहा, 'क्या कहा? मैं उठाऊँ?' लेकिन वह ऐसा न कर सका। वह कहना चाहता था, 'पैदल नहीं चल सकते तो पड़े रहो यहीं—और मर जाओ!' लेकिन उसे साहस न हो सका। प्रवक्ता को मरने के लिए छोड़ जाने पर जनरल उस पर कत्ल करने का ही आरोप लगाता। मजबूरी में उस ने एक सैनिक को बुलाया और प्रवक्ता के लिए घोड़ा 'तैयार' करने की आज्ञा दी।

उस समय सोचा भी किस ने था कि वे दो तिब्बती मार्गदर्शक प्रवक्ता को मिल रही यह सुविधा देखेंगे तो अपने लिए भी घोड़ों की माँग करेंगे? लेकिन सचमुच उन्होंने यही किया—और किया भी कुछ ऐसी जिद के साथ कि प्रायः एक घंटे तक वे अपनी जगह से बिलकुल हिले ही नहीं। माथे पर आ चुका सूर्य जब झुकने लगा, कमांडर को आखिर हार माननी ही पड़ी। उस ने दो और घोड़े 'तैयार' करवाये। मार्गदर्शक सवार हो गये। उतारा गया माल कमांडर ने नहीं उठाया था। उसे अन्य सैनिकों में थोड़ा-थोड़ा बाँट दिया गया था। दर्रे तक पहुँचने के लिए सीधी चढ़ाई वाले कुछ ही मील अब बच रहते थे। सैनिक चढ़ाई से संघर्ष कर रहे थे और घुड़सवार मार्गदर्शकों के पीछे-पीछे पैदल कमांडर घिसट-सा रहा था। उस का जिस्म ठंड से सिकुड़ गया था, लेकिन भीतर क्रोध की आग सुलग उठी थी।

डेढ़-दो घंटे चलने के बाद वे एक छोटे-से पठार पर आ पहुँचे। यहाँ से पर्वत की ऊँचाई तिरछेपन के साथ आकाश की ओर जा रही थी। वह पगडंडीनुमा रास्ता उस ऊँचाई पर किसी सीढ़ी की तरह लगा हुआ था। उस में चढ़ाई चढ़ने के लिए काटे गये वे डग पगडंडी से भी ज्यादा सँकरे थे।

इस से पहले कि कमांडर सैनिकों को रुकने की आज्ञा देता, सैनिक खुद-ब-खुद रुक गये और उस के चारों तरफ इकट्ठे होने लगे। उन के चेहरे, जो कमांडर के लिए अत्यंत परिचित तथा आत्मीय थे, थकान से बुझने लगे थे। झुर्रियाँ गहरी हो आयी थीं और आँखों के आसपास कालिमा घिर रही थी। क्या उन्हें यहाँ आराम करने की आज्ञा दी जा सकती है? या वे बिना रुके दर्रे तक का यह आखिरी फासला तय कर सकते हैं? कमांडर को समझते देर न लगी कि सैनिकों की आँखें तो आराम करने की इजाजत पाने के लिए तरस रही हैं. लेकिन मुँह से कोई बोल नहीं फूट रहा है। कमांडर कुछ कहने जा ही रहा था कि उस ने एक जोर की हुंकार सुनी। यह उन तिब्बती मार्गदर्शकों की हुंकार थी जिन्होंने अपने घोड़ों को तेजी से दौड़ा दिया था। नहीं। सैनिकों को आराम करने की इजाजत नहीं दी जा सकती।

"बढ़ो!" कमांडर चिल्लाया, "हमें इन मार्गदर्शकों से, इन कुत्तों की औलादों से पीछे नहीं रहना है। रात होने से पहले

ही हम दर्रे तक पहुँच जायेंगे।"

सभी सैनिकों ने हमेशा की तरह जोशीले नारे लगाये। फिर वे खामोशी से बढ़ने लगे। कमांडर सब से आगे हो गया। सभी सैनिकों की तरह वह भी बुरी तरह थक गया था, लेकिन उन की तरह वह थकान को जाहिर नहीं कर सकता था। सैनिक उसे प्यार करते थे, उस का अनुकरण करते थे, उस पर आश्रित थे। उस के नेतृत्व में वे दर्रे तक पहुँच जायेंगे और उस के बाद ही आराम करेंगे।

जिस मुसीबत पर कमांडर का ध्यान नहीं गया, वह थी तेज हवाएँ। तिब्बत के उन क्रूर तूफानों और पर्वतों की बर्फीली साँसों के बारे में उस ने सुना तो काफी था, लेकिन न जाने कैसे, वह उस समय उस के ध्यान में न आया। जब तक आधा रास्ता पार हुआ, दोपहर ढल चुकी थी। अचानक एक रहस्यमय गूँज सुनायी पड़ी। आकाश, जो सुबह से अब तक साफ था, अचानक काला पड़ गया। अजगर-जैसे घुमड़ते बादलों में से तूफान का विस्फोट-सा हुआ। यह तूफान बर्फ की अगणित, नुकीली सुइयों के साथ उस पर और उस के सैनिकों पर किसी ठोस चट्टान की तरह गिरा। सभी सैनिकों को उस ने जमीन पर लेटते, दुबकते और अपने बोझों के नीचे कुलबुलाते देखा। आत्मरक्षा के लिए कमांडर एक चट्टानी नुक्कड़ से चिपक गया और चेहरा छिपाने लगा। सहसा उसे भय लगा कि कहीं वह अपने मार्गदर्शकों को खो न बैठे। उस ने सिर उठाया और देखा कि वे दोनों तिब्बती आगे ही बढ़ते जा रहे थे। अपने चेहरों पर उन्होंने शाल लपेट रखी थी, पंख के बने हुए टोप सामने झुका लिये थे और घोड़ों को भरपूर दौड़ा रहे थे। प्रवक्ता का घोड़ा उन के पीछे-पीछे भाग रहा था। वह घोड़े की पीठ के साथ दुबक गया था।

"बढ़ो! बढ़ते रहो!" कमांडर अपने सैनिकों की ओर चिल्लाया, "दर्रे तक पहुँचो, वरना... यहाँ तो तूफान का जोर और बढ़ता जायेगा..."

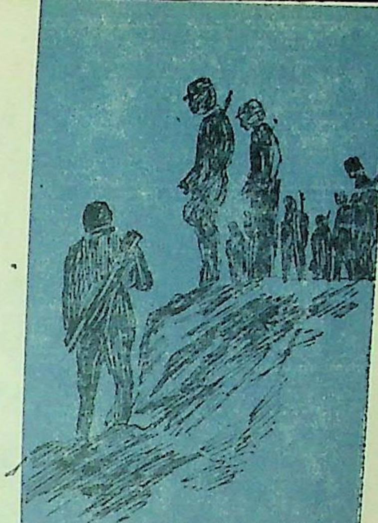
सैनिकों ने भी चिल्ला कर अपने कमांडर के शब्दों को दोहराना चाहा, "बढ़ो! दर्रे तक पहुँचो..." लेकिन तूफानी थपेड़ों ने उन के स्वरों को कटी-कटी, धुंधली प्रतिध्वनियों में बदल दिया। हतोत्साहित हुए बिना वे लड़खड़ाते हुए उठे और सीधी चढ़ाई का आखिरी फासला तय करने लगे। कमांडर सब से आगे-आगे था।

तूफान का जोर बढ़ता ही गया। पहले वह सिर्फ गुर्रा रहा था, अब अट्टहास करने लगा। कमांडर के चेहरे पर ऐसी जलन होने लगी मानो किसी भट्ठी में सिर दे रखा हो। दाहिनी बाँह से उस ने अपने चेहरे और मुँह को छिपाने की चेष्टा की। वह पीछे मुड़ कर यह देखने का साहस नहीं कर सकता था कि उस के सैनिकों को आगे बढ़ने में कितनी तकलीफ हो रही है। वह उन पर केवल भरोसा ही रख सकता था कि वे उस के पीछे-पीछे आने की आज्ञा का पालन कर रहे हैं। जो घोड़ा सब से आगे था, कमांडर उस के पीछे चलता-घिसटता रहा। पहाड़ों की खौफनाक चढ़ाई आसानी से पार कर जाने वाले तिब्बती घोड़े! उन के सँकरे खुर चट्टान के खाँचों, गड्ढों आदि में फँस-अटक जाते और वे बढ़ते रहते। सिर झुका हुआ होने के

कारण कमांडर सिर्फ उन के खुरों को ही देख सकता था। हवा की रहस्यमय, घुमड़ती गूँज के बीच एक भी मानवीय स्वर सुन पाना असंभव था। पहाड़ों पर जमी बर्फ की अटारियों को हवा तोड़ रही थी। यदा-कदा इस टूटने की कड़कड़ाहटें सुनायी दे जातीं और कमांडर थर्रा उठता। वह कुछ भी सोच सकने में असमर्थ था। उस की समूची विचार-शक्ति, संपूर्ण व्यक्तित्व मात्र इस पर केंद्रित था कि कैसे वह एक के बाद दूसरा डग भरे। हर नयी साँस उस के फेफड़ों को झुलसा देती।

अंततः वह दर्रे तक पहुँच ही गया। वह एक चट्टान से टिक कर खड़ा हुआ और सैनिकों का इंतजार करने लगा। सैनिकों को गिनने का साहस उस में नहीं था। निश्चय ही अब वे एक हजार से काफी कम थे। जो नदारद थे, उन का क्या हुआ? क्या वे तूफान में उड़ कर खंदकों में गिर गये? कमांडर ने किसी से भी पूछताछ न की। जितने भी सैनिक बचे हैं उन के साथ उसे आगे बढ़ना है—बस! तूफान इतने खतरनाक थे कि दर्रे में कहीं पड़ाव डालना असंभव लगा। वह फिर से मुड़ा और मार्गदर्शकों के पीछे-पीछे, दर्रे में आगे चलने लगा। यह उसे काफी संतोषजनक लगा कि आगे का फासला चढ़ाई का नहीं, ढलान का है। चट्टानों पर छिपकलियों की तरह घिसटने की अब जरूरत नहीं थी।

पूरे एक घंटे तक, जो किसी युग की तरह लंबा था, वे मार्गदर्शक उन्हें ढलान-भरे ही रास्तों से ले जाते रहे। रास्ता पहले से भी ज्यादा सँकरा था। दोनों ओर पहाड़ों की ऊबड़खाबड़ ऊँचाइयाँ और भी ऊपर चली गयी थीं। तंग



गली-जैसी वह राह सचमुच डरावनी लग रही थी, लेकिन यहाँ हवाओं का जोर नहीं था। उन्होंने उन से छुटकारा पा लिया था, उन में से बाहर निकल कर वे नीचे चले आये थे। खामोशी में कमांडर को अचानक चक्कर आ गया—कितनी थकान! सैनिकों का भी बुरा हाल था। उस ने कई सैनिकों को खून की कै करते देखा। लड़खड़ाहट तो सभी के कदमों में थी। जबरन चलने की चेष्टा में वे लुढ़कने भी लगते। वह उठा और मानो स्वागत कर रहा हो, इस तरह सैनिकों की ओर बढ़ा। बहती हवा के दायरे में से सैनिक बाहर निकलते और कमांडर के कदमों पर लोटने लगते।

उसे प्रवक्ता नजर आया। वह भी जमीन पर चित लेट गया था और हाँफ रहा था। कमांडर उस के नजदीक आ कर रुका।

"कामरेड, तुम्हारा घोड़ा कहाँ है?" उस ने पूछा।

"घोड़ा भाग गया।"

"भाग गया?"

"हाँ। मार्गदर्शकों के पीछे। मैं गिर पड़ा और...और..." उस की साँस भर आयी।

"ये मार्गदर्शक हरामजादे हैं। एक मिनट भी आराम नहीं करने देते..." कमांडर मुट्ठियाँ मींच कर बुदबुदाया, "हमें इसी वक्त उन के पीछे जाना होगा।"

"असंभव!" प्रवक्ता रिरियाहट में बोला, "मैं उठ भी नहीं सकता। चलना तो दूर की बात है।"

कमांडर इस के विरोध में यह कहने जा ही रहा था कि अपने सैनिकों की सुरक्षा का ध्यान रखना मेरा पवित्र कर्त्तव्य है, लेकिन उसी समय उस के ध्यान में आया कि यहाँ पड़ाव डालने का फैसला अगर प्रवक्ता द्वारा किया जाता है तो 'कुछ होने' पर उस का दोष कमांडर पर न आयेगा, आयेगा प्रवक्ता पर।

कमांडर ने कंधे हिलाये और कहा, "लेकिन पड़ाव कैसे डाला जा सकता है? मेरे लिए तो यही बेहतर होगा कि आगे बढ़ कर चौकी तक पहुँचूं लेकिन अगर तुम चाहते हो कि..."

इस से पहले कि वह अपना वाक्य पूरा करता, पहाड़ों के पीछे जोरों का हल्ला हुआ। कई लोग डरावने ढँग से हुंकार उठे थे। तुरंत कमांडर ने पलट कर देखा। अनेक घुड़सवार झपट रहे थे—तिब्बती घुड़सवार...दस... बीस तीस... उस से भी ज्यादा। टूटी-टूटी चट्टानों और बर्फ के ढलान पर उन के घोड़े तीव्रता से दौड़ रहे थे। उन की तलवारें, जो नग्न हो कर ऊँची उठी हुई थीं, धूप में चमक रही थीं।

"होशियार!" कमांडर सैनिकों की ओर देख कर चिल्लाया, लेकिन तब तक देर हो चुकी थी। तिब्बती लुटेरे बिजली की तरह आये और जुलूस की कतार में जो याक अंतिम छोर पर था, उसे घेर कर अपने साथ भगाते हुए पहाड़ों के पीछे लुप्त हो गये। कीमती माल से लदा याक! कमांडर हक्का-बक्का रह गया। क्या वे किसी जाल में फँस गये हैं? उन मार्गदर्शकों की परछाइं भी उसे दिखायी न दी। क्या वे लुटेरों के साथ मिले हुए थे? कमांडर ने सँकरी पगडंडी पर काफी दूर तक उन की खोज की, लेकिन व्यर्थ। पूरी बटालियन जहाँ खड़ी थी वहाँ छिपने लायक कोई जगह नहीं थी। ढलान इतना झुका हुआ था कि तेजी से दौड़ने पर सैनिक लुढ़कने ही लगते। कमांडर की अभ्यस्त, चालाक आँखों ने देखा कि दूर एक राइफल की नली जरा-सी बाहर निकली हुई है और अनेक नुक्कड़ों के पीछे से पंखों के टोप पहने हुए कुछ आकृतियाँ रह-रह कर अपना आभास दे जाती हैं। केवल सौ तिब्बती हों तो भी वे पूरी बटालियन को नष्ट कर सकते थे—बटालियन सचमुच ऐसी जगह में फँसी हुई थी।

"दोनों कंपनी कप्तान कहाँ हैं?" उस ने पुकारा, "इधर आओ, मेरे साथ चलो।"

दो युवक सामने आये और ढलान पर उस के पीछे-पीछे चलते रहे। कमांडर का बचपन का दोस्त और ईमानदार सहायक काओ ली भी साथ था। कमांडर ने एक गीली और ठंडी चट्टान पर दुबकते हुए चारों ओर देखा।

"स्थिति की गंभीरता का अंदाजा हमें इसी समय लगा लेना चाहिये," उस ने कहा, "यहाँ तक सकुशल आ पहुँचे हैं तो आगे भी हम सकुशल ही जायेंगे।

कल रात तक हमें हर हालत में चौकी पर पहुँच जाना है। कुछेक तिब्बती कुत्तों के कारण हम अपने कूच को कैसे रोक सकते हैं ?"

वह इंतजार करता रहा कि कंपनी-कप्तान अभी कुछ कहेंगे, लेकिन वे चुप रहे। आज्ञाकारिता की आदत और भयंकर, ठंडी थकान के कारण वे बुझी हुई आँखों से कमांडर की ओर केवल देख रहे थे।

"क्यों ? तुम लोगों को कुछ भी नहीं कहना ?" उस ने पूछा। काओ ली बोला, "कामरेड,आप हुक्म दीजिये, हम पालन करेंगे।"

कमांडर सोच में पड़ गया। निहायत शर्मिंदगी के साथ उस ने एक विचित्र-सी कुरेदन अनुभव की—उसे रोना आ रहा था ! वह इन युवकों के सामने गिड़गिड़ाना चाहता था कि इस खौफनाक स्थिति के लिए वह स्वयं जिम्मेदार नहीं है, कतई नहीं। लेकिन अचानक ही उस ने इस कुरेदन को झटक दिया। यह डर क्षणिक था। और यह उस का निजी डर था। इस के कारण यह कैसे मान लिया जाये कि सभी डरे हुए हैं ? सैनिक उस की संतान थे—उस के अपने बेटे ! कमांडर ने और ज्यादा सोचने की कोशिश की। अगर किसी तरह सब को सिर्फ इतना साहस दिलाया जा सके कि वे भाग कर दर्रे को पार कर जायें तो काफी बचाव हो सकता है । लेकिन इतना साहस वह दे ही न पाया। अब ज्यादा देर नहीं है। तूफानी हवाएँ इन सैनिकों को बिखेर देंगी, इन्हें अंधे कर देंगी। तिब्बती घुड़सवार इन लाचारों पर हमला बोल देंगे। घास की तरह काट डालेंगे इन्हें ! संख्या में कम होने के बावजूद वे वाकई पूरी बटालियन का सफाया कर देंगे। चौकी पर हजारों लोग जिस बहुमूल्य रसद का बेसब्री से इंतजार कर रहे हैं, वह छीन ली जायेगी। रसद और चाँदी . . . पल भर को कमांडर ने सोचा कि वह अपनी बटालियन दो भागों में बाँट दे। एक भाग लुटेरों का सामना करे और दूसरा भाग चक्कर काटता हुआ लुटेरों पर पीछे से आक्रमण कर दे। तब लुटेरों को अपने छिपने की जगह से बाहर निकलना होगा। लेकिन नहीं। यह असंभव है। लुटेरे अपनी जगहों में दुबके हुए लगातार जासूसी कर रहे हैं। ज्यों ही बटालियन को बाँटना शुरू किया जायेगा, वे आक्रमण कर देंगे। उन के पास राइफलें भी हैं। नजदीक आये बिना ही वे चीनियों को भून देंगे।

कमांडर ने हताश होते हुए फिर उन चट्टानों की ओर देखा। 'काश यहाँ इतने पत्थर होते कि उन से किला बन सकता !' उस ने बचकाने ढंग से सोचा। इस तरह किला बन सकता होता तो भी यहाँ पत्थर कहाँ थे ? पत्थर क्या, धूल भी नहीं थी। कभी बूढ़ी न होने वाली हवाओं ने धूल का एक-एक कण जाने कहाँ उड़ा दिया था। अब सिर्फ एक उपाय बच रहता था—मोरटार तोपों का इस्तेमाल कर के उन चट्टानों की धज्जियाँ उड़ा दी जायें जिन की आड़ में लुटेरे छिपे हुए हैं। लेकिन, क्या सचमुच इतनी ठोस, इस्पाती चट्टानों को तोप से उड़ाया जा सकता है ? कमांडर को इस परिकल्पना का भी मोह छोड़ देना पड़ा। चट्टानों की उन भूरी कगारों को वह घूरता रहा। चट्टानें नकली और निर्जीव-सी लगीं, लेकिन वह जानता था कि वे शत्रु को

छिपाये हुए हैं। शत्रु ? लेकिन उसे तो बताया गया था कि तिब्बती जनता चीनियों को प्यार करती है, वह उन्हीं के बेसब्र इंतजार में है, चीनियों का हार्दिक स्वागत करना चाहती है। किस ने कहा था ऐसा झूठ ? प्रवक्ता ने ! उस ने धधकती दृष्टि प्रवक्ता पर डाली। बचपन से ही जो उस का दुश्मन बना हुआ था—वही प्रवक्ता ! हरामी कहीं का ! कंबल ओढ़ कर वह जमीन पर चित लेटा था।

कमांडर ने कहना शुरू किया, "हमें हुक्म दिया गया है कि एक-एक सैनिक और हथियार को अपनी चौकी तक पहुँचाएँ। अगर इस में हम नाकामयाब होते हैं तो चौकी पर इंतजार कर रहे हमारे बंधु मारे जायेंगे। उन का सारा दारोमदार हम पर है। इसीलिए हमारा फर्ज हो जाता है कि हथियार और सैनिक दोनों की रक्षा करें। अगर हम ने अपने आदमियों को लड़ने पर मजबूर किया तो कहीं वे थकान के ही कारण न मर जायें। ये तिब्बती लुटेरे धन के लिए कुछ भी कर सकते हैं। क्या यह बेहतर न होगा कि हम संधि की कोशिश करें ? वे लोग हम से काफी बड़ी कीमत माँग सकते हैं, लेकिन तब भी हमारे पास कुछ तो बचा रहेगा ! लड़ने पर तो कुछ भी नहीं . . ."

प्रवक्ता के शरीर में एकाएक मानो जीवन आ गया। जिस चट्टान पर वह लेटा हुआ था, उसे छोड़ कर वह उठा। पेटी कसते हुए उस ने अपने निचले होंठ को जरा आगे निकाल लिया। इस के बाद दोनों हाथ अपनी छाती पर मोड़ लिये और कमांडर के ऐन सामने जा कर खड़ा हो गया। बोला, "उतनी कीमत देने के बाद भी इस का क्या ठीक कि लुटेरे हम पर फिर से आक्रमण न करेंगे, सब-कुछ छीन न लेंगे ?"

कमांडर ने स्थिर स्वर में उत्तर दिया, "मैं उन के सारे हथियार खरीद लूँगा।"

"किस चीज से ?"

"चाँदी से, और किस से ?"

सुन कर प्रवक्ता ने वही किया जो ऐसे अवसरों पर करने की उस की आदत थी। वह पाँच कदम चला, पाँच कदम लौटा और फिर से पाँच कदम चला। सिकुड़ी हुई भौंहों के नीचे से बार-बार वह कमांडर को घूरने लगता। इस के बाद वह इतना नजदीक आ कर खड़ा हो गया कि उस की साँस कमांडर के चेहरे का स्पर्श करने लगी।

"चाँदी किस की है ? तुम्हारी तो नहीं। वह समूचे देश की संपत्ति है तुम उस का इस तरह इस्तेमाल नहीं कर सकते—समझे ?"

कमांडर बहुत अच्छी तरह समझ रहा था कि प्रवक्ता जोर-जोर से क्यों बोल रहा है। निश्चय ही प्रवक्ता चाहता था कि सारे सैनिकों को सुनायी पड़े। लुटेरों को धन देने के बाद भी अगर 'काम न बना' तो प्रवक्ता के पास कहने के लिए हो जायेगा कि मैं ने तुम्हें पहले ही मना किया था। भारी-भरकम पोशाक के नीचे कमांडर ने पसीने के रेले फूटते और पैरों की तरफ बहते महसूस किये। प्रवक्ता का ओहदा उस से बड़ा था। फौजी अफसरों के सामने या चौकी के अधिकारियों के बीच उसे प्रवक्ता की इज्जत करनी पड़ती थी। लेकिन क्या इन डरावने पहाड़ों के बीच भी वह प्रवक्ता को अपने से बड़ा मान ले ?

कमांडर ने अपने बचाव के लिए

दलीलें देना शुरू किया, "अभी चाँदी की रक्षा करने के बजाय क्या यह जरूरी नहीं है कि हम चौकी पर इंतजार कर रहे अपने भाइयों को रसद पहुँचायें ? अभी चाँदी की नहीं, वक्त की जरूरत है—वक्त, ताकि हम जो-कुछ भी संभव हो, ले कर, आगे बढ़ सकें . . . इस के अलावा, सारी-की-सारी चाँदी तो हम लुटेरों को देने से रहे !"

प्रवक्ता ने थकते हुए कहा, "बच-कानी योजना है !"

"ठीक है फिर ! तुम कोई और उपाय सुझाओ," उस ने चुनौती के स्वर में कहा। प्रवक्ता जब चुप ही रहा तो उसी ने शुरू किया, "रसद की चीजों पर लिपटे कागजों में से कोई एक उतार लाओ और मुझे दो," कमांडर ने काओ ली की तरफ देखा, "मैं लुटेरों के नाम संधि-पत्र लिखता हूँ। तुम घोड़े पर सवार हो कर संधि-पत्र के साथ उन की तरफ बढ़ो। अपनी बंदूक यहीं छोड़ जाना, ताकि वे देख सकें कि तुम शांति-वार्त्ता के लिए आ रहे हो।"

काओ ली ने चुपचाप आज्ञा का पालन किया।

कमांडर ने साफ-सुथरे अक्षरों में उस कागज पर चीनी भाषा में लिखा—'मेरे तिब्बती दोस्तो ! हमें आपस में नहीं लड़ना चाहिये। क्यों न हम एक-दूसरे से मिलें और समझौते की कोशिश करें ?'

काओ ली घोड़े पर सवार हो कर इस कागज को झंडे की तरह फहराता हुआ लुटेरों की दिशा में बढ़ गया और तब उस के पास सचमुच कोई हथियार नहीं था। कमांडर देखता रहा—काओ ली ज्यों ही उस चट्टान के नजदीक पहुँचा, मशीनगनों के तीखे, अनवरत विस्फोटों ने बर्फीली हवा को फाड़ दिया। काओ ली का शरीर उछल कर घोड़े पर से गिर गया। वह मर चुका था।

प्रवक्ता भी यह देख रहा था। उस ने कहा, "लुटेरे आधुनिक हथियारों से लैस हैं।"

कमांडर कुछ भी न बोल सका। ओह ! क्या कर डाला था उस ने ! संधि-पत्र ले कर उस ने काओ ली को ही क्यों भेजा ? अपने बचपन के दोस्त को !

शाम का धुंधलका छाने लगा था। उस में आँखें सिकोड़ते हुए कमांडर ने देखा कि एक तिब्बती घुड़सवार तेजी से ढलान पर उतर रहा है। उस की नंगी तलवार माथे तक उठी हुई है। काओ ली की मृत देह के पास रुक कर वह घोड़े से उतरा। सब से पहले उस ने तलवार के एक ही झटके से लाश का सिर काट डाला, उस के बाद कागज का वह टुकड़ा उठाया और पहाड़ों के पीछे छिप गया। काओ ली के घोड़े को वह अपने साथ ही लेता गया।

काओ ली का कटा हुआ सिर ढलान पर लुढ़क रहा था।

कमांडर भूल गया कि वह कहाँ है। उस सिर-कटी लाश पर ही उस की आँखें टिकी हुई थीं। सहसा वह दौड़ पड़ा—लुढ़कते सिर की ओर। वह इस तरह खड़ा हो गया कि लुढ़कता सिर उस के पैरों से आ टिका। काओ ली का निर्जीव चेहरा कमांडर की ओर उठा हुआ था। उस की आँखें अप्रत्याशित मौत के आघात से विस्फारित हो गयी थीं और घूर रही थीं। कमांडर को याद आया, बचपन में काओ ली के साथ कैसे उस ने बड़ी-बड़ी पतंगें उड़ायी थीं ! कैसे काओ ली तब से अब तक उस के प्रति वफादार रहा था। काओ ली ने

शुरू से ही उसे अपना नायक मान लिया था। कमांडर ने अपनी छाती में एक असहनीय पीड़ा कुलबुलाती अनुभव की। दर्द उस के गले में फँस कर सिसकी में बदलने लगा।

लेकिन यह रोने का समय नहीं था। उस ने एक ओर तिब्बती घुड़सवार को देखा जो चट्टानों के पीछे से अचानक निकल आया था। इस बार भी उस के हाथ में एक तलवार थी, जिस की नोक पर एक कागज टँगा हुआ था। नज़दीक आ कर तिब्बती ने तलवार झुकायी ताकि कमांडर वह कागज ले सके। इस के बाद उस ने घोड़ा वापस दौड़ा दिया। यह वही संधि पत्र था जो काओ ली ले कर गया था। उस के पीछे चीनी भाषा में लिखा हुआ था : 'हम संधि के लिए तैयार हैं। पश्चिम की ओर, सामने, तीसरी चोटी के पीछे, ठीक एक घंटे बाद मुलाकात हो सकती है।'

कमांडर मुड़ा और सैनिकों को जल्दी जल्दी आज्ञाएँ देने लगा। लुटेरों से मुलाकात के समय प्रवक्ता एवं दोनों कप्तान भी उस के साथ होने चाहियें। तिब्बतियों से बातचीत कैसे की जाये, इस की योजना बनाता रहा। एक घंटा बीत गया। दोनों कप्तानों तथा प्रवक्ता के साथ वह निर्धारित चोटी के पिछवाड़े की ओर चल पड़ा। वहाँ उन्होंने एक ऐसी घाटी देखी जो सँकरी थी और जहाँ बर्फ नहीं के बराबर थी। पहाड़ों के ऊपर से चाँद की मद्धिम, दूधिया रोशनी घाटी के बीच एक छोटी-सी झील में प्रतिबिंबित हो रही थी। सामने से जो पगडंडी ढलान पर उतर रही थी वहां कमांडर ने लालटेन की टिमटिमाती रोशनी देखी। उस ने अपनी चाल धीमी कर दी ताकि संधिवार्ता की जगह पर वह उन तिब्बतियों से पहले ही न पहुँच जाये। ऐसा होने पर वह अपने को उन से ओछा ही साबित करता। अपने आगमन को उस ने सचमुच इस तरह व्यवस्थित किया कि वह और वे तिब्बती उस झील तक साथ-साथ ही पहुँचे। तिब्बतियों की संख्या तीन थी। वे घोड़ों पर सवार हो कर आये थे। उन का नेता बहुत लंबा था। उस के कंधों की चौड़ाई आश्चर्यजनक ही थी। उस की लंबोतरी पोशाक शराब की तरह लाल थी। पोशाक की सभी किनारियों पर पंख। गरदन के पास, जहाँ पोशाक कुछ खुली हुई थी, पंखों की किनारी मोटी थी। सिर बिलकुल घुटा हुआ। पंखों से बने टोप को उस ने अपनी बाँह के नीचे दबा लिया था। कमांडर ने काली भौंहें और आकर्षक चेहरा देखा—और यह भी देखा कि यह चेहरा पथरीला या मूर्खों-जैसा नहीं था। वह सजीव और होशियार चेहरा था—किसी पादरी या लामा का चेहरा, न कि एक सिपाही का। कमांडर इंतजार करता रहा कि तिब्बती अपने घोड़ों से नीचे उतरेंगे, लेकिन वे न उतरे। कमांडर की तरह वे भी मौन इंतजार करते रहे। तब कमांडर ने अपनी बंदूक एक कप्तान को थमा दी और आगे आते हुए दोनों हाथ छाती पर मोड़ कर कहा, "शुक्रिया, मेरे तिब्बती भाइयो! शुक्रिया और बधाई! प्राचीन काल से हम लोग अच्छे पड़ोसी रहे हैं। हमारा मूल परिवार एक ही है..."

कमांडर अपनी चीनी भाषा बहुत रुक-रुक कर और साफ-साफ बोल रहा था, क्योंकि उसे शक था कि ऐसा न करने पर तिब्बतियों को समझने में दिक्कत होगी। उसे सचमुच आश्चर्य हुआ, जब

लामा ने बहुत ही अच्छी चीनी में उत्तर दिया।

"तुम लोग हमारे भाई नहीं हो। तुम तो आक्रमणकारी हो। तुम ने हमारे शहर के शहर नष्ट कर दिये। हमारे भाइयों को मार डाला।"

कमांडर हक्का-बक्का रह गया। न केवल इसलिए कि शब्द कठोर थे, बल्कि इसलिए भी कि शब्दों का लहजा भी भयावह रूप से कठोर था। इस तिब्बती की चीनी भाषा स्वयं कमांडर की भाषा से भी बेहतर थी। कमांडर ने कनखियों से प्रवक्ता की ओर देखा। प्रवक्ता के दुबले चेहरे पर आक्रोश था। सहसा इस आक्रोश में उफान-सा आ गया। प्रवक्ता आगे आया और दाहिना हाथ उठा कर लामा की तरफ अँगुली से बार-बार संकेत करता हुआ चिल्लाया, "हम लोगों ने तुम्हें आजादी दिलायी थी। पश्चिम के पूँजीवादियों से बचाया। क्या तुम इस से इनकार कर सकते हो? मौत के घाट उतार दिये जाओगे। समझे?"

"ओ गधे!" कमांडर दाँत पीसता हुआ बुदबुदा उठा, लेकिन प्रवक्ता ने सुना ही नहीं। उस ने चीखते हुए कहना जारी रखा, "तुम्हारे पूर्वज हमारे दास थे। तुम्हारी धरती हमारी धरती है। हम तुम्हें यहाँ रहने की इजाजत तो दे सकते हैं, क्योंकि हमारे महान नेता माओ-त्से-तुंग बहुत दयालु हैं, लेकिन याद रखो, इस धरती पर हम पूँजीवादियों को नहीं रहने दे सकते—पश्चिम के पूँजीवादियों को! एक-एक पूँजीवादी को हम तिब्बत से निकाल देंगे। इस के लिए तुम्हें हमारा अहसान मानना चाहिये, स्वागत करना चाहिये।"

जवाब देते समय लामा को क्रोधित या नाराज हो जाना चाहिये था, लेकिन उस के स्वर में अनोखा धैर्य था, "हमें यह मानने में कोई एतराज नहीं है कि करीब सौ साल पहले पश्चिम की एक टुकड़ी ने तिब्बत पर हमला किया था। उन के पास ऐसे हथियार थे जो हम ने कभी देखे भी नहीं थे। हमें हार जाना पड़ा, लेकिन उन विदेशियों को हमारी जमीन नहीं चाहिये थी—चाहिये था सिर्फ व्यापार। हम ने उन्हें व्यापार भी न करने दिया, क्योंकि वे जितना देते थे, उस से [illegible] थे। हम ने उन्हें चले जाने पर मजबूर कर दिया। उन में से कोई कभी वापस नहीं आया। मैं ने सारे तिब्बत की यात्रा की है और देखा है कि यहाँ पश्चिम का एक भी आदमी नहीं है। हम कभी पश्चिम के गुलाम नहीं रहे।"

"झूठ! सफेद झूठ!" प्रवक्ता मुट्ठियाँ भींच कर चीखा।

लामा इस तरह आगे कहता रहा मानो उस ने बोलना रोका ही न हो, "...जब कि तुम लोगों ने—तुम ने और तुम्हारी सेना ने—हम पर आक्रमण किया है। हजारों और लाखों की तादाद में तुम हमारे देश में घुस आये हो। तुम ने हमारी सरकार नष्ट कर दी, हमारी धरती का अच्छा हिस्सा छीन लिया, तुम ने न केवल हमें गरीब बनाया, हमें कत्ल कर के नेस्तनाबूद ही कर देना चाहा। यहाँ तक कि तुम ने हमारे बच्चों की चोरियाँ की और उन्हें पढ़ाने के बहाने ऐसे-ऐसे झूठ सिखाये कि वे तुम से और तुम्हारे नेताओं से जिंदगी भर खौफ खायें। अपनी सेनाओं के लिए तुम हमारी फसलें काट लेते हो। हमारे नौजवान तुम्हारे लिए दिन-रात गुलामों

की तरह मजदूरी करते हैं। इन सब से भयंकर यह है कि तुम उसे नष्ट करने पर तुले हुए हो जो हमें अपनी जान से भी अधिक प्रिय है—हमारी धार्मिक परंपराएँ, हमारे पवित्र रीति-रिवाज। तुम्हारे ही अत्याचारों के कारण हमारे परम पावन दलाई लामा को भारत में आश्रय लेना पड़ा। क्या यह गुलामी नहीं, सांस्कृतिक मौत नहीं?"

घनी हो रही रात की शीतल, स्वच्छ हवा में, विशुद्ध चीनी भाषा में, लामा का यह शांत स्वर इतना प्रभावशाली था कि इच्छा न होने के बावजूद कमांडर चुपचाप सुनता रहा।

प्रवक्ता उस पर बरस ही पड़ा, "खामोश क्यों हो? बोलो! इन के झूठों का जवाब दो। वरना . . . वरना तुम गद्दार हो!"

कमांडर ने कोशिश की—"सोचो . . . अपनी भलाई को पहचानो।" उस ने तिब्बती की तरफ देखा, "हम अपने जगमगाते भविष्य में से तुम्हें बराबरी का हिस्सा देंगे।"

"तुम कुछ नहीं दे सकते। तुम सिर्फ ले सकते हो," लामा ने कहा, "इसीलिए हम कभी तुम पर भरोसा नहीं करते। लेकिन मत भूलो कि तुम हमें नष्ट नहीं कर सकते। जान पर खेल जाने के लिए जितनी हिम्मत चाहिये, उस से भी ज्यादा हिम्मत से हम लड़ रहे हैं ताकि हम अपनी इच्छानुसार जीवित रह सकें। तुम्हारी हार निश्चित है, फिर भले ही तुम एक-एक तिब्बती को क्यों न मार डालो।"

"यहीं! यहीं तुम्हारी भूल है!" प्रवक्ता अविलंब बोला, "हमारे महान नेता माओ ने कहा है कि सभी को अपने धर्म का चुनाव स्वयं करने का अधिकार है। क्या तुम्हें महान माओ के शब्दों पर भी यकीन नहीं?"

"माओ ने जो कहा है, अगर वह सच है," लामा ने पूछा, "तो अभी तुम यहाँ क्यों खड़े हो?"

"ओफ!" कमांडर ने टोकते हुए कहा, "हम लोग बेवजह इतनी जिरह कर रहे हैं! बताऊँ, मैं यहाँ क्यों हूँ? इसलिए हूँ कि तुम लोगों के हथियार खरीद सकूँ। मेरे पास एक हजार हथियारबंद सैनिक हैं—और यह मैं पहले ही स्पष्ट कर दूँ कि मुझे तुम्हारे हथियारों की वैसे कोई जरूरत भी नहीं है—लेकिन बजाय इस के कि मैं तुम्हारे हथियार छीन लूँ, मैं खुली इजाजत दूँगा कि उचित दाम पर अपने सारे हथियार तुम मुझे सौंप दो। यह मेरी दयालुता ही है कि . . ."

लामा एकाएक जोर से हँस पड़ा। इस हँसी में ऐसी खनक थी मानो उस ने कोई बहुत ही अच्छा चुटकुला सुन लिया हो, "हम क्यों बेचें हथियार? हमें उन की जरूरत है। अपने देश में से तुम्हारी सेना को खदेड़ देने के लिए . . ."

"अभी—इसी वक्त! तुम जान से मार डाले जाओगे!" प्रवक्ता गरज उठा।

"लेकिन आज नहीं!" लामा ने आत्मविश्वास से कहा, "हमें मालूम है कि तुम्हारी बटालियन में कितने सैनिक हैं। वे एक हजार से काफी कम हैं। जितने भी हैं, थकान के मारे उन का बुरा हाल है। वे यहाँ की पतली हवा में ठीक से साँस भी नहीं ले सकते। हम ले सकते हैं। यह पतली हवा हमारी अपनी है, हमारी धरती पर टिकी है।" लामा का स्वर एकाएक बदल गया। वह तीखा लेकिन धीमा हो चला, "हम अँधेरे में

भी देख सकते हैं। यहाँ की एक-एक चट्टान, एक-एक चोटी हमारी जानी-पहचानी है। हम दूर से ही तुम्हारी गंध सूँघ सकते हैं--चाहे तुम कहीं भी छिप जाओ ! आज की रात तुम्हारी मौत की रात है, हमारी नहीं।"

फिर से कमांडर ने अपने जिस्म पर पसीने की धाराएँ बहती महसूस कीं। वह समझ गया कि उसे डर लग रहा है। लेकिन कौन-सा था वह कारण, वह रहस्य, जिस से लामा को कोई डर नहीं लग रहा था ?

प्रवक्ता ? उस ने फिर से एक झूठी हुंकार भरी, "हम कई सौ हैं। तुम मुश्किल से एक सौ..."

घोड़े पर बैठा हुआ लामा जरा आगे को झुका, "अभी मैं ने जो कहा, अगर वह जरा भी तुम्हारी समझ में आया है...तुम अपनी खैरियत मनाओ-हमारी नहीं।" उस ने घोड़े को एड़ लगा दी और पलक झपकते पहाड़ों में ओझल हो गया। उस के दोनों साथी भी पीछे-पीछे ओझल !

प्रवक्ता कमांडर की आँखों में घूरने लगा, "चुप क्यों हो ? कुछ करते क्यों नहीं।"

अचानक नींद से जागा हो, इस तरह कमांडर घबरा गया। उस ने पिस्तौल निकाली ताकि लामा पर गोली चला सके, लेकिन उसे रुक जाना पड़ा। बिजली की तरह उस के दिमाग में कौंध गया कि वह भून डाला जायेगा, क्योंकि पहाड़ों की एक-एक परत के पीछे से उस के तथा उस के सैनिकों की दिशा में राइफलें तन चुकी होंगी। कमांडर मुड़ा और इंतजार कर रहे सैनिकों के पास पहुँचा। उन्होंने गहरी खामोशी से उस का स्वागत किया। वह रहस्य एकाएक उस की समझ में आ गया था कि लामा को कोई डर क्यों नहीं था। एक समय था जब लामा की ही तरह वह भी निडर हो कर लड़ा था। निडर इसीलिए हो सका था कि वह अपनी मातृभूमि पर स्वयं अपनी रक्षा के लिए शत्रु की ऐसी सेना के खिलाफ लड़ा था जो विदेश से आयी थी---जापान से। लेकिन इस बार वह स्वयं ही एक शत्रु था—वह और उस की पूरी बटालियन... अकस्मात उस ने अँधेरे की डरावनी खामोशी में से दूर... कहीं बहुत दूर से... कुछ पुरुषों के रोदन के स्वर सुने--रहस्यमय, करुण, अनवरत। इन पहाड़ों में मीलों दूर की आवाज भी साफ सुनायी दे जाती है... विशेष-कर रात में। निश्चय ही यह रोदन उन पुरुषों का था जो तूफान के समय खंदकों में गिर पड़े थे, लेकिन जीवित बच गये थे। वे रास्ता भूल चुके थे, अकेले थे और रात ठंडी होती जा रही थी। इतनी ठंड का उन के लिए एक ही मतलब था—मौत ! रोते हुए वे कुछ बोल भी रहे थे। कमांडर ने ध्यान से सुना। वे कह रहे थे, "माँ ! ओ माँ ! कहाँ हो, माँ ? मेरी माँ !"

बड़ी उम्र का आदमी जब बच्चों की तरह माँ को पुकार उठता है तो कितना दयनीय हो जाता है ! कमांडर ने सहमते हुए देखा कि अब उस की बटालियन के वे सैनिक भी, जो गुम नहीं हुए हैं, रोने लगे हैं। रोने वालों की संख्या बढ़ती ही जा रही है।

अब सारी बटालियन रो रही थी। सिर्फ कमांडर और प्रवक्ता खामोश थे।

प्रवक्ता अपने सिर को झटका देता

हुआ फिर एक बार पूरी ताकत से चिल्लाया, "हमारी फौज जनता को आजाद करने निकली है। हम एक हजार से ज्यादा हैं। सौ से भी कम तिब्बती लुटेरे हमारा क्या कर सकते हैं?"

कमांडर ने झपट कर प्रवक्ता की गरदन पकड़ ली और झकझोरने लगा। "चुप रह, मूर्ख!" वह दाँत पीसता हुआ बोला। उस ने उसे दो-तीन थप्पड़ जड़ दिये, "गधे! सूअर! तू ने ही सारा खेल बिगाड़ा! वे तिब्बती, मेरी बात मान ही जाते, अगर तू बोल न पड़ता। तू ने ही उन्हें उत्तेजित कर दिया। हम सब की जान तेरे ही कारण खतरे में पड़ी है।"

कमांडर अपने आपे में नहीं था। बचपन से अब तक जो नफरत प्रवक्ता के लिए उस के मन में एकत्र होती रही थी, उस ने उस के पौरुष को भड़का दिया। उस दुबली गरदन पर उस की अँगुलियाँ कसती ही गयीं। प्रवक्ता ने छूटने के लिए तड़पना चाहा, लेकिन वह बहुत कमजोर था। उस की आँखें बाहर निकल आयीं। देखते-ही-देखते वह बेहोश हो गया। कमांडर ने उसे छोड़ दिया। प्रवक्ता लुढ़क गया। तब कमांडर ने उस जीवित शरीर को उठाया और खाई में फेंक दिया। फिर चारों तरफ उठी चोटियों की ओर देखा। बटालियन ने रोना बंद कर दिया था। सारे सैनिक कमांडर से दूर जा रहे थे। वे एक-दूसरे से भी अलग-अलग हो रहे थे, ताकि छिपने की जगहों में अकेले दुबक सकें। वे कमांडर से डर गये थे। उस पर उन्हें अब कोई विश्वास नहीं था। कमांडर ने उन्हें पुकारना चाहा, लेकिन उस की आवाज मरी हुई थी। उसे बहादुरी से भरे वे शब्द याद आये जो कभी उसे पढ़ाये गये थे—

"लाल झण्डा फहराओ। वैचारिक क्रांति ला दो।"

"उत्पादन समाजवाद का दिल है, परिश्रम इस की साँस!"

"अभावात्मक नहीं, सदैव भावात्मक ढंग से सोचो!"

"जनता की सेवा करो ताकि वह तुम्हारी परवाह करे।"

अब ऐसी घड़ी आ गयी थी जब इन खूबसूरत शब्दों में कोई अर्थ नहीं था। चाँदी का चाँद पहाड़ों के पीछे लुढ़क रहा था। जल्दी ही रात काजल-जैसी हो जायेगी।

"माँ! ओ माँ!" अत्यंत रहस्यमयता के साथ कमांडर ने स्वयं अपना भी रोदन सुना। रोदन, जिस पर उस का कोई नियंत्रण नहीं था, "माँ! मेरी माँ! कहाँ हो, माँ?"

सारी बटालियन बिखर चुकी थी। दूर-दूर से, अपने छिपने की जगहों में से उस के सैनिकों ने उत्तर दिये, "माँ! ओ माँ!" और इन उत्तरों की प्रतिध्वनियाँ उठने लगीं।

कमांडर दौड़ा। वह नहीं चाहता था कि अकेला रहे। उसे किसी भी सैनिक की जरूरत थी, जिस से वह लिपट सके, लिपट कर बिलख सके।

एक भी सैनिक न मिला। वे सब खो गये थे—दुश्मन के इस अजनबी, क्रूर, ठंडे, पहाड़ी इलाके में।

लावारिस, भागता, कमांडर अकेला ही था।

लेकिन खो जाने वाला, रोने वाला वह अकेला ही नहीं था।

जीवन एक अनबूझ पहेली

मैं जब नौ वर्ष का था तो हमारे शहर ब्यावर में बस्ती के बाहर तालाब किनारे मेला लगा था। अपनी दो वर्षीया बहिन को गोद में ले कर मैं भी मेले गया। लौटते समय मैं तालाब की पाल के सहारे-सहारे नीचे से आ रहा था। उस समय कुछ अँधेरा हो चला था। सोचा था कि नीचे से पाल के सहारे चल कर बीच के पानी को पार कर के आगे की सीढ़ियों से ऊपर चला जाऊँगा। मैं ने जैसे ही पानी में अपना पाँव डाला कि पीछे से एक साधु की आवाज आयी, "ऐ लड़के ! क्या करता है ?" मैं ने उत्तर दिया, "पानी पार कर के सीढ़ियों से ऊपर जाऊँगा।" साधु ने कहा, "पागल हुआ है ? यह पानी तीस फुट गहरा है।" मेरे रोने पर उस ने मेरी बहिन को छीन कर ऊपर खड़े आदमियों को दे दिया। फिर मुझे भी उस ने उठा कर तालाब की पाल पर चढ़ा दिया। उस दिन मैं मृत्यु से बाल-बाल बचा। दूसरे दिन समाचार मिला कि एक साधु ने तालाब में कूद कर आत्महत्या कर ली। मैं वहाँ गया तो पता चला कि जिस साधु ने मेरी जान बचायी थी वही डूब कर मर गया।



—हास्य अभिनेता डालडा, बम्बई

एक ज्योतिषी ने घोषणा की थी कि मेरी ममेरी बहिन के विवाह के पंद्रह दिन बाद उस के पति का जल में डूब कर देहांत हो जायेगा। वैधव्य के भय से बहुत दिनों तक तो उस की शादी ही नहीं की गयी। किंतु बाद में एक स्वस्थ तथा तैरने में कुशल युवक से उस का विवाह हुआ। विवाहोपरांत मामाजी ने जीजाजी को वह भविष्यवाणी सुना दी और उन्हें नदी के जल का स्पर्श तक करने को मना कर दिया। किंतु भाग्य का फेर !

विवाह के सोलहवें दिन शौचादि से निवृत्त हो कर जीजाजी गंगा-तट से लौट रहे थे। राह में एक मित्र से भेंट हो गयी जो गंगा-स्नान के लिए जा रहे थे। मित्र के आग्रह पर जीजाजी लौट कर गंगा-तट पर बैठने के लिए तैयार हो गये। मित्र थे तो तैराक किंतु गंगा के किनारे ही डूबने लगे। यह देख कर जीजाजी सब भूल गंगा में कूद गये। मित्र तो उन का सहारा पा कर तट पर आ गये किंतु जीजाजी डूब गये। जाल फेंका गया किंतु शव का पता तक न चला।

—शैलजानंद झा 'अंगार', सरायकेला

मैं इंदौर के महाराज यशवन्त राव चिकित्सालय में डाक्टर हूँ। हमारे यहाँ के प्रसिद्ध डाक्टर श्री शर्मा के सेवा-

निवृत्त होने पर एक विदाई समारोह आयोजित किया गया । मध्यप्रदेश के सभी प्रतिष्ठित डाक्टर उपस्थित थे । मैं भी उस समारोह में था ।

सर्वप्रथम मध्यप्रदेश के खाद्य मंत्री श्री गौतम शर्मा ने उन की दीर्घ सेवा की प्रशंसा की। इस के बाद बारी-बारी से मुख्य सर्जनों ने उन के प्रति अपनी शुभकामनाएँ व्यक्त कीं । डा० शर्मा का दिल भर आया और जब उन से दो शब्द कहने का आग्रह किया गया तो उन का गला भर आया। वे बोलते-बोलते एकदम बैठ गये और पास बैठे सर्जन श्री ओहरी के कंधे पर सिर रख कर साँस लेने लगे । हम लोग समझ गये कि उन्हें दिल का दौरा पड़ा है । हम ने एकदम उन की चिकित्सा की व्यवस्था की लेकिन काफी प्रयास के बावजूद वे बचाये नहीं जा सके ।

—डा० परेशकुमार भारद्वाज, इंदौर

हम मित्रों ने अपने इलाके के सब से ऊँचे पहाड़ 'सूजेसर' पर चढ़ने का निश्चय किया । चढ़ाई यद्यपि अत्यधिक कठिन है, फिर भी गिरते-पड़ते हम उस की चोटी पर पहुँच गये । उतरते समय हम में शर्त लगी कि कौन सब से पहले नीचे पहुँचता है । मैं जल्दी-जल्दी नीचे उतरने लगा । कंकरी अधिक होने के कारण मैं फिसल

पड़ा और अपने को सँभाल भी नहीं सका। नीचे एक बहुत गहरी खाई थी, जिस में गिर कर बच निकलना असंभव था। तभी एक बड़ा-सा पत्थर पीछे से लुढ़कता आया और मेरे सामने वाले पत्थर से अटक गया। उसी पत्थर के सामने होने से मैं बच गया। कुछ क्षण बाद मैं ने दूसरे मार्ग को पकड़ा। मेरा हटना था कि वही पत्थर लुढ़क कर खाई में जा गिरा।

—ब्रजेश माथुर, बाड़मेर

कहीं मैं ने पढ़ा था कि शहद और फिटकरी का लेप आँखों में लगाने से आँखें स्वस्थ रहती हैं। अतः मैं और मेरा छोटा भाई अशोक रोज शाम को आँखों में वह लेप लगाते थे। एक दिन लेप बनाने के लिए मैं ने अशोक से कहा। वह लेप बना कर मेरे पास रख गया। मैं ने कुछ देर बाद वह लेप लगाया। रोज की अपेक्षा आँखों में जोर से जलन होने लगी और कुछ चुभने-सा लगा। मैं ने आँखों में पानी के छींटे मारे और ज्यों ही आँखें खोलीं तो चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा! लगा कि अब अंधे बन कर ही जीवन बीतेगा। उसी समय कानों में नानी-माँ की आवाज आयी कि अगर कंडील में तेल न हो तो मोमबत्ती या बैटरी ही जला दो। बाहर तो अँधेरा था, लेकिन नानी-माँ के शब्दों से मेरी आँखों में एकदम ज्योति आ गयी।

पानी के छींटे मारने के बाद आँखें खोलने के साथ ही सहसा बिजली चले जाने से मुझे अंधेपन का भ्रम हो गया था।

—सोहन पागनिस, देवास

मेरी बी. काम. (प्रीवियस) की परीक्षा चल रही थी। अगले दिन एकाउंटेंसी का परचा था। इस विषय में मैं बहुत कमजोर था।

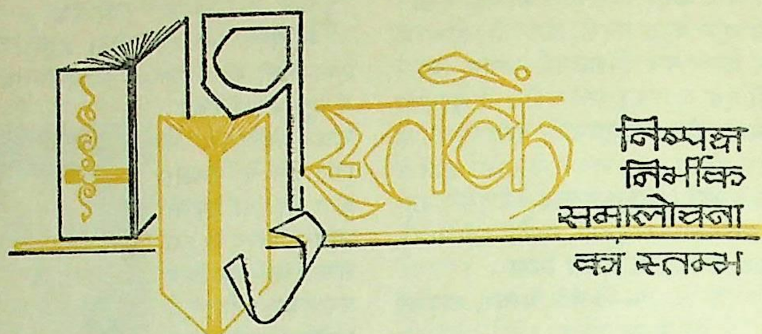


रात को जब मैं किताबों से उलझा हुआ था तो सहसा सामने दीवार पर टँगे सरस्वतीजी के चित्र पर नजर पड़ी। मुझे प्रतीत हुआ जैसे चित्र धीरे - धीरे धुँधला होता जा रहा है। टेबल-लैंप की रोशनी भी मद्धिम होने लगी और कमरे में इंद्रधनुषी प्रकाश छाने लगा। चित्र में लगी तारीखों के कुछ अंक घड़ी के रेडियमयुक्त अंकों की तरह चमकने लगे। मैं ने ध्यान से पढ़ा—१८६,२७९ और ४३।

यह स्थिति कुछ क्षण ही रही। धीरे-धीरे फिर पूर्व-स्थिति हो गयी। मुझे लगा जैसे मैं ने कोई ईश्वरीय संदेश प्राप्त किया हो। चमकने वाले वे अंक रह-रह कर दिमाग में गूँजते रहे। सहसा रहस्य का आवरण हटने लगा —क्यों न एकाउंटेंसी की पुस्तक के पृष्ठ १८६,२७९ और ४३ पर दिये सवालों को हल कर लूँ, शायद परचे में आ जायें! ऐसा ही किया और अगले दिन वही सवाल प्रश्न-पत्र में आये। क्या वह अनुभूति अवचेतन की एक प्रतिक्रिया मात्र थी या कोई ईश्वरीय चमत्कार?

—प्रेमप्रकाश वर्मा, कानपुर

जब पैसा बोलता है तो कोई व्याकरण की गलतियों की परवा नहीं करता।



बीस सुबहों के बाद

लेखक---मनहर चौहान; प्रकाशक---उमेश प्रकाशन, दिल्ली--६; पृष्ठ---१७६; मूल्य---३.५०

यह मनहर चौहान की नौ कहानियों का राजीव सक्सेना द्वारा संपादित ताजा संग्रह है। उन की प्रसिद्ध कहानी 'घरघुसरा' भी इस में संग्रहीत हैं। प्रारंभ में संपादक द्वारा कथाकार पर एक समीक्षात्मक लेख है, तब कहानियाँ।

इस में संदेह नहीं कि मनहर की कहानियों में वैविध्य है। स्व-निर्मित, स्वयं-स्वीकृत परेशानी से ग्रस्त युवक की मानसिकता ('टोकरी में बैठी उदासी'), पीढ़ियों के बदलते मूल्यों का संघर्ष ('विपरीतीकरण'), मृत्यु के परिवेश में विकसित मानवीय संवेदना ('न उड़ने वाली लाशें'), प्रतिशोध ('नाम'), भीड़-मनोविज्ञान ('एक सफेद मजाक'), स्वीकृत भ्रांतियों (इल्यूजन्स) में जीने तथा उन्हीं भ्रांतियों में दूसरों को डाल कर उन से रोटी का यथार्थ प्राप्त करता आधुनिक युग-बोध ('हवामहल'), ये इस विविधता के कुछ उदाहरण हैं। यथार्थ की क्रूरता और संवेदना की कोमलता, इन दोनों के ही अत्यंत सूक्ष्म सूत्र मनहर चौहान उठाते हैं।

'घरघुसरा' तो हिन्दी की एक 'उपलब्धि-कहानी' है। किसी भी साहित्य की 'उपलब्धि-कहानी' अपनी समस्त विशेषताओं से पूर्व इस कारण उपलब्धि है कि उस में न केवल जीवन का अवतरण हुआ है, बल्कि वह अपने रचाव में इतनी सादा और सहज है जितना कि स्वयं जीवन।

कुछ कहानियों में बड़ी सूक्ष्म और अर्थ-गंभीर प्रतीक-योजना हुई है। 'घरघुसरा' में घरघुसरा (उल्लू विशेष) मनहूसियत का प्रतीक है तो 'टोकरी में बैठी उदासी' में नाक पर फिर-फिर छन आने वाला पसीना एक झूठे अहं का। मनहर का व्यंग्य भी काफी सूक्ष्म है। वह शैली का गुण बन कर मन में गहरी गूंज पैदा करता है। नीरस-से-नीरस और सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भावबोध भी मनहर की कलम से रोचक बन गया है। शैली में

संयत-सूक्ष्म व्यंग्यात्मक तटस्थता, किंतु कहीं निरंतर प्रवहमान संवेदनशीलता है।

नौ कहानियों में से एक का भी प्रेम-कहानी न होना कहानीकार की जीवन-दृष्टि के विशाल आयाम की ओर संकेत करता है।

—पानू खोलिया

गीत गंध

संपादक-द्वय—चन्द्रसेन विराट और नरेन्द्र दीपक; प्रकाशक—नवोदित साहित्य संस्था, दमोह; पृष्ठ—७२; मूल्य—२.५०

चर्चित गीत-संकलन में संपादकों का आग्रह केवल एक विशेष अंचल अथवा क्षेत्र के कुछ नये कवियों को प्रस्तुत करना रहा है—यद्यपि संपादकीय में कहा यही गया है कि पिछले दस-बारह वर्षों के हिंदी गीत-साहित्य के इतिहास को दृष्टिगत रखते हुए संपादक-द्वय के अतिरिक्त पाँच अन्य गीतकारों का चयन किया गया है। अच्छा रहता यदि क्षेत्रीय मोह त्याग कर समग्रता की दृष्टि से कुछ अन्य नये रचनाकार भी सम्मिलित किये जाते।

विराट और दीपक के अतिरिक्त आलोच्य संग्रह के पाँच अन्य गीतकार हैं—शिवकुमार श्रीवास्तव, नारायणलाल परमार, जयकुमार जलज, विद्यानन्दन राजीव और नरेन्द्र चंचल। सातों कवि नितांत अपरिचित नहीं कहे जा सकते। विराट, परमार, जलज आदि तो पर्याप्त चर्चित हो चुके हैं।

संकलित रचनाएँ इस का प्रमाण हैं कि नये कवियों में आधुनिक भावबोध के प्रति एक विशेष उत्सुकता है। कवि वैयक्तिक कुंठाओं के घेरों से निकलने के लिए आग्रहशील हैं। कविताओं में नये दृष्टिकोण प्रस्तुत करने में कवि भटके नहीं हैं। सौंदर्यपरक रचनाएँ भी संकलित हैं, मगर नये परिवेश में अत्यंत स्पष्टता के साथ रेखांकित हैं। मैं आधुनिक भावबोध की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर रहा हूँ —

लगा है हाय इतना तथ्य युग-युग को समीक्षा में
अनवरत जागता है प्रश्न उत्तर की प्रतीक्षा में

—शिवकुमार श्रीवास्तव

न्याय की खुशबू न खेमों में बँटी है
महज कुछ पगडंडियाँ भरमा गई हैं

—नारायणलाल परमार

घिसीपिटी चर्चाएँ, अपने को दुहराना
कही हुई कविता को जैसे फिर कह जाना

—जयकुमार जलज

यह मातम है संस्कृतियों का
यह जुलूस है विकृतियों का

—चन्द्रसेन विराट

यूँ हुई असहाय यह पीढ़ी
ठीक जैसे बिना छत के घर

—नरेन्द्र दीपक

यहाँ एक प्रश्न यह भी उठता है कि जहाँ कवियों ने कथ्य की नवीनता और सहजता के प्रति सक्रियता दिखाने की कोशिश की है वहाँ शिल्प के क्षेत्र में उदासीनता बरतना क्यों उचित समझा गया ? आज इस बात की आवश्यकता है कि छंद-रूढ़ि को तोड़ कर नये छंदों का निर्माण किया जाये। प्रस्तुतीकरण का गीतानुरूप माध्यम तलाशने के प्रयत्न होने चाहियें। शिल्प के नये प्रयोग करने के साथ यह भी समझ लेना चाहिये कि आधुनिक गीत में संगीत के लिए कोई स्थान नहीं है। आधुनिक गीतकार गीत

में गीतात्मकता का हामी है ।

आशा है कि इन गीतकारों के आगामी संकलन अधिक आधुनिक और ताजगी लिये हुए होंगे ।

उषा

लेखक--गुलाब; प्रकाशक--अर्चना, कलकत्ता-६; पृष्ठ--१३३; मूल्य--६.००

'उषा' महाकाव्य को कवि सुमित्रानन्दन पन्त के प्राक्कथन के साथ प्रस्तुत करना यह बतलाने के लिए पर्याप्त है कि रचना छायावादी-परंपरा की ही एक कड़ी होगी । महाकाव्य को लोक-मूल्य संबंधी समस्याओं की स्वस्थ, सबल तथा युग-अनुरूप अभिव्यक्ति का माध्यम कहने के बावजूद ऐसा नहीं लगता कि 'अभिव्यक्ति' के नाम पर कुछ नया कहने की उत्सुकता कवि के मन में उपजी हो, जब कि 'अनुभूति' के विषय में कुछ कहना नहीं चाहिये, क्योंकि वह कवि के वैयक्तिक क्षेत्र में अनधिकार प्रवेश होगा । इस महाकाव्य के साथ यह 'ट्रेजडी' नहीं तो क्या है कि कहीं-कहीं अच्छे भाव भी (यद्यपि ऐसे स्थल नगण्य ही हैं) आधुनिक शिल्प के अभाव में दब गये हैं !

अत्याधुनिक हिन्दी-साहित्य

संपादक-- डा. कुमार विमल; प्रकाशक--पराग प्रकाशन, पटना-४; पृष्ठ--२५६; मूल्य--९.००

आलोच्य पुस्तक विभिन्न लेखकों द्वारा साहित्य की विविध विधाओं पर लिखे गये छह निबंधों का संग्रह है। अंतिम यानी सातवाँ लेख आधुनिकता से संबंधित है ।

संकलन के प्रकाशन का मुख्य उद्देश्य यही रहा होगा कि विशिष्ट पाठकों, छात्रों और अध्यापकों के समक्ष साहित्य की आधुनिक गति-विधियों, प्रवृत्तियों और कृतियों का परिचयात्मक, किंतु आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाये । मगर यही कहा जा सकता है कि संकलित लेख आधुनिक साहित्य का ही पूर्ण परिचय नहीं दे सके हैं, 'अत्याधुनिक' साहित्य की तो बात ही अलग है ।

पहले लेख 'नयी आलोचना' में नयी आलोचना के बारे में बहुत कम--मगर आलोचना-साहित्य का इतिहास ही अधिक लिखा गया है । नयी आलोचना के क्षेत्र में तुलसी, रवींद्रनाथ ठाकुर, प्रसाद, प्रेमचंद, इलियट और पाउण्ड तक को घसीटा गया है । वैसे कुछ नये-पुराने आलोचकों की परीक्षोपयोगी तुलना भी कर दी गयी है--बस पूरी हो गयी नयी आलोचना !

दूसरा लेख नयी कविता के संबंध में डा. रवींद्र भ्रमर का है । नयी पीढ़ी के एक गीतकार द्वारा 'नयी कविता' की विवेचना काफी संतुलित ढंग से की गयी है । यह लेख 'नयी कविता' की नयी प्रवृत्तियों को समझने में अवश्य ही सहायक सिद्ध होगा। मगर एक बात खटकती है कि प्रस्तुत लेख हिंदी कविता की एक ही विधा यानी 'नयी कविता' के बारे में लिखा गया है । तथाकथित ' नयी कविता ' ही आज की हिंदी कविता नहीं है । इस बात को आज ज्यादा समझने की आवश्यकता है कि 'नयी कविता' के बाहर भी काव्य-सृजन हो रहा है ।

तीसरे लेख में स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास का सूचनात्मक रूप में क्रमिक विकास प्रस्तुत किया गया है । डा. सिद्धनाथ कुमार का 'नया नाटक साहित्य'

नामक लेख शोधपूर्ण और सारगर्भित है। डा. रमेश कुंतल मेघ का लेख 'नव्य ललित निबंध' संक्षिप्त होते हुए भी अपने विषय की समुचित व्याख्या करता है।

'नयी कहानी'-जैसे चर्चित विषय पर दो लेख दिये गये हैं। प्रथम लेख में मन्मथनाथ गुप्त ने जहाँ नये कहानीकारों को कोसा है वहीं दूसरे लेख में डा. स्वर्ण किरण ने उन्हीं नये कहानीकारों को सराहा है।

अंतिम लेख में स्वयं संपादक ने 'आधुनिकता' के संबंध में कई दृष्टियों से विचार किया है। मगर यह लेख सिर्फ शब्दजाल में ही फँसा रह गया है। कथ्य के नाम पर तो 'आधुनिकता' आज एक मजाक बन कर रह गयी है।

—भूपेन्द्रकुमार स्नेही

मानव की कहानी

मूल लेखक—कार्लटन एस. कून; अनु०—विराज; प्रकाशक—आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली–६; पृष्ठ––६३९; मूल्य—७.५० रु.

कार्लटन एस. कून कृत 'स्टोरी आफ मैन' मानव के विकास और उस की सभ्यता की प्रगति का दिग्दर्शन कराने वाली एक उत्कृष्ट पुस्तक मानी जाती है। लेखक नृवंश-विज्ञान के जाने-माने विद्वान हैं, जिन्होंने संसार के अनेक भागों में तत्संबंधी अनुसंधानों में भाग लिया अथवा उन का निकट से अवलोकन किया है। पृथ्वी पर मानव के आविर्भाव से ले कर इस समय तक, जब कि उस ने अपनी ही जाति का महासंहार

करने की शक्ति प्राप्त कर ली है, मानव जिन-जिन अवस्थाओं में हो कर गुजरा है उन का रोचक विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसे पढ़ने से एक बार तो यह पता चलता है कि मनुष्य को अपने ही विषय में कितनी कम जानकारी रही है। मनुष्य की अपने प्रति जिज्ञासा जगाने में ऐसी पुस्तकों का महत्वपूर्ण योगदान माना जायेगा। लेखक ने इस पुस्तक की सामग्री जुटाने में न केवल कठोर परिश्रम एवं अध्यवसाय का परिचय दिया है वरन मनुष्य को अपने ही कारनामों को देखने की एक नयी दृष्टि दी है।

यह प्रसन्नता की बात है कि हिन्दी पाठक भी अब ऐसी महत्वपूर्ण पुस्तक का लाभ उठा सकेंगे। अनुवाद सरल भाषा में है। चित्रों के कारण विषय समझने में सुबोधता आ गयी है। आशा है हमारे कुछ हिन्दी-भाषी विद्वान भी अपने ही सूत्रों से प्रामाणिक सामग्री जुटा कर ऐसी ही पुस्तकें लिखने का प्रयास करेंगे।

—कृष्णचन्द्र शर्मा

वंशी और वंदन

लेखक—उपेन्द्र; प्रकाशक—जिज्ञासा प्रकाशन, कानपुर; पृष्ठ—९२; मूल्य—४.००

इस से पूर्व तरुण कवि श्री उपेन्द्र का एक और संग्रह 'घटा साँवरी' आ चुका है। प्रस्तुत संग्रह में कवि ने छोटी-बड़ी छत्तीस कविताएँ रखी हैं। कुछेक कविताएँ मुक्त छंद में भी लिखी गयी हैं। कवि जिस जीवन को भोगना चाहता है, उस के प्रति भी वह नैष्ठिक लगता है। आज जब कि गीत का परिवेश दिनों-दिन परिष्कृत होता जा रहा है, उस के नये-नये आयाम सामने आ रहे हैं, फिर भी कवि की स्वयं की धारणा है कि बौद्धिकता से बोझिल कविताएँ शांति की आशा और आनंद का आश्वासन नहीं दे सकतीं। कुछ हद तक तरुण कवि की यह दृष्टि सार्थक भी प्रतीत होती है, पर कोरे गीतों का—जिन में सिर्फ वायवीय कल्पना और नायक-नायिकाओं के नख-शिख उल्लेख हों— जमाना भी अब साफ लद गया है। आज की कविता चाहे गीतोन्मुखी हो अथवा मुक्तछंदी, आस्था की बात करना चाहती है और इस प्रकार 'वंशी और वंदन' के कवि ने ऐसी ही आस्था के स्वरों को कहीं-कहीं सतर्कता और प्रांजलता से उभारा है, इस में संदेह नहीं। गीत सहज हैं, इसलिए मन को रुचते हैं। पीड़ाओं के अर्थात आत्मानुभूतियों के जीवनमूर्त संयोजन में कवि को कहीं-कहीं अच्छी सफलता मिली है। वह उत्तरदायित्व से कतराना भी नहीं चाहता, पर एक बात बड़ी साफगोई से कही जा सकती है कि संग्रह के ये गीत नवगीत नहीं, आत्मगीत हैं, जिन पर प्रयोग के लेबिल एकदम नहीं हैं। इस रूप में पढ़नेवाले ही कवि के साथ न्याय कर सकेंगे।

—देवप्रकाश गुप्त

प्राप्ति-स्वीकार

अमेरिका में लिबरल विचारधारा; लेखक—लुईस हर्ट्ज; अनुवादक—अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार; प्रकाशक—वोरा एंड कंपनी पब्लिशर्स प्रा० लि०, बम्बई २; पृष्ठ—३३९; मूल्य—५.००

दी हिन्दुस्तान टाइम्स लिमिटेड की ओर से रामनन्दन सिन्हा द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नयी दिल्ली में मुद्रित तथा प्रकाशित

उत्तर रेलवे

सूचना

१. अप्रैल, १९६६ से उत्तर रेलवे की समय सारिणी में सामान्य संशोधन होगा और उसके महत्वपूर्ण परिवर्त्तन निम्नांकित हैं :—

१. नई चलने वाली गाड़ियाँ

ऊंचाहार और रायबरेली के मध्य दोनों ओर से दो गाड़ियां (नम्बर १ यू आर।–२ यू आर और ३ यू आर। ४ यू आर)।

२. बढ़ाई गई गाड़ियाँ

(१) २ आर सी। ३ आर सी. कानपुर-राय बरेली गाड़ियां ऊंचाहार होती हुई इलाहाबाद से और तक बढ़ा दी गयी हैं। यह रायबरेली हो कर नहीं जायेंगी और इनका नम्बर अब १ ए यू सी। २ ए यू सी होगा। (२) १ यू. पी.। २ यू. पी अम्बाला–पटियाला गाड़ियां अब नाभा से और तक बढ़ा दी गई हैं। (३) २ बी एस एच। ३ बी एस. एच सादुलपुर-हनुमानगढ़ गाड़ियां चुरू होती हुई जयपुर से और तक बढ़ा दी गई है और अब इनका नम्बर २१६ डाउन। २१५ अप होगा। (४) १ बी आर एस। २ बी-आर एस सिरसा रिवाड़ी गाड़ियां भटिण्डा से और तक बढ़ा दी गयी है और उनका नम्बर अब २ बी आर बी। ३ बी आर बी. होगा।

३. बढ़ी हुई गति वाली गाड़ियाँ

(१) १ अप हावड़ा–दिल्ली कालका मेल की गति ४० मिनट बढ़ी, (२) २-डाउन कालका दिल्ली–हावड़ा मेल की गति ५० मिनट बढ़ी; (३) १३-अप अपर इंडिया एक्सप्रेस की गति ६५ मिनट बढ़ी। (४) ३५१-अप पैसेंजर गाड़ी की गति ७० मिनट बढ़ी,। (५) ३५२ डाउन पैसेंजर गाड़ी की गति १२५ मिनट बढ़ी।

४. नये खोले गये स्टेशन

(१) 'सलेमगढ़ मसानी हाल्ट' सादूलपुर–हनुमानगढ़ सैक्शन पर। (२) 'जोधका हाल्ट' हिसार–सिरसा सैक्शन पर। (३) 'सिन्दुरवा' सुल्तानपुर–लखनऊ सैक्शन पर। (४) 'कठुआ' पठानकोट--माधोपुर पंजाब सैक्शन॥

५. नये रुकने वाले स्टेशनों की व्यवस्था

(१) :— ८९-अप पटेलनगर पर, (२) ८९।९०-डाउन महेन्द्रगढ़ पर, (३) १ बी डी एस। २ बी डी एस बोजावास पर, (४) १ बी डी बी। २२० डाउन बासो धनकोट पर, (५) ३ बी एस आर। ४ बी एस आर खिलेरयां हाल्ट पर, (६) १ बी

एच । ३४४-डाउन दौलाकोट भाई हाल्ट पर, (७) ३५५-अप एतमादपुर पर, (८) ३७६-डाउन साहिबाबाद पर, (९) १३१-अप । १३२ डाउन सोहावाल पर, (१०) २ बी एम ए व्यासनगर पर, (११) ७२-डाउन हरनगांव पर।

६. नये कनेक्शनों की व्यवस्था

(१) १ अप ९३ अप के साथ दिल्ली में, (२) १ आर पी ३५१ अप के साथ रायबरेली में, (३) ३५२-डाउन २ आर पी के साथ रायबरेली में, (४) १ यू आर २ ए यू सी के साथ ऊंचाहार में, (५) ४यू आर १ ए यू सी के साथ ऊंचाहार में, (६) २ बी सी ७४-डाउन के साथ बालामऊ में, (७) ३ एल सी १-अप मेल के साथ कानपुर में, (८) ४७-अप ९-अप के साथ वाराणसी में, (९) १२-डाउन (एम. जी.) के साथ ३७५-अप बरेली में ।

७. हटाए गए हाल्ट

(१) ८३-अप । ८४-डाउन फफूंद पर, (२) ९३।९४-डाउन रेन पर, (३) ९५-अप । ९६-डाउन श्री बालाजी एवं अलई पर, (४) ९६-डाउन कैरला पर, (५) ९५ जोगीमागरा पर, (६) ३५१-अप । ३५२डाउन मोहनलालगंज, निगोहा, श्री राजनगर, कुन्दनगंज, हरचंदपुर, परियावां, गढ़ही मानकपुर, भादरी, लालगोपालगंज, रामचौरा रोड, अतरामपुर, सराय गोपाल ।

८. गाड़ियों के समय में महत्वपूर्ण परिवर्तन

(१) २२-अप सदर्न एक्सप्रेस नई दिल्ली से १६-१० के स्थान पर १९-१५ पर छूटेगी। (२) १६-अप जी. टी. एक्सप्रेस १७-२५ के स्थान पर नई दिल्ली से १९-४५ बजे छूटेगी। (३) १२-डाउन दिल्ली–हावड़ा एक्सप्रेस २२-१५ के स्थान पर दिल्ली से २१-५० बजे छूटेगी।(४) १-अप दिल्ली में २०-३५ के स्थान पर १९-५५पर पहुँचेगी (५) २-डाउन दिल्ली से ८.३० के स्थान पर ८ बजे छूटेगी।(६) १३-अप दिल्ली में ११.२५ के स्थान पर १०-५ पर पहुंचेगी। (७) ३-अप मुगलसराय से ९-० बजे के स्थान पर ७-५५ पर छूटेगी। (८) ३-अप इलाहाबाद में ११.३० बजे के स्थान पर १०-१८ पर पहुंचेगी (९) ३-अप इलाहाबाद से १२.०५ के स्थान पर ११.०५ पर छूटेगी। (१०) ३५१-अप इलाहाबादा से १६.०० के स्थान पर १७-१० पर छूटेगी। (११) ३५२-डाउन इलाहाबाद ११.३० के स्थान पर ९.२५ पर पहुंचेगी। (१२) ३८-डाउन फिरोजपुर से २१.१० के स्थान पर २१.०५ बजे छूटेगी। (१३) एम.जी. २०२-डाउन ७.५० के स्थान पर दिल्ली ७.२५ पर पहुंचेगी। (१४) एम.जी. २१४-डाउन ७.२५ के स्थान पर दिल्ली ६.३५ बजे पहुंचेगी। (१५) एम. जी. २३२-डाउन दिल्ली ५.२५ के स्थान पर ५.०० बजेपहुंचेगी। (१६) एन. जी. १ के एस कालका से ८.५५ के स्थान पर ८.१५ बजे छूटेगी। (१७) एन. जी. १ के एस. शिमला १५.२५ के स्थान पर १४.२५ बजे पहुंचेगी।

९. (अ) गाड़ियों में वातानुकूलित आवास की व्यवस्था :

(१) आंशिक वातानुकूलित डिब्बे नम्बर १-अप । २-डाउन मेल (दिल्ली-कालका)

सप्ताह में ३ बार के स्थान पर प्रतिदिन चलेंगे ।

(२) एक आंशिक वातानुकूलित डिब्बा कोटा और दिल्ली के मध्य १९-डाउन । २०-अप देहरादून एक्सप्रेस से सप्ताह में दो बार कोटा और देहरादून के स्थान पर निम्नांकित दिनों को सप्ताह में तीन बार चलेगा। कोटा से : सोमवार, बुधवार एवं शुक्रवार को। दिल्ली से : मंगलवार, बृहस्पतिवार एवं शनिवार को।

(३) एक पूर्ण वातानुकूलित डिब्बा, दिल्ली और देहरादून के मध्य ४१-अप ।-४२-डाउन मसूरी एक्सप्रैस में प्रतिदिन चलेगी।

(४) एक पूर्ण वातानुकूलित डिब्बा बम्बई सेण्ट्रल और पठानकोट के मध्य ३-डाउन-। ३३-अप और ३४ डाउन ।-४ अप मेलों से प्रतिदिन चलेगा।

(५) एक आंशिक वातानुकूलित डिब्बा २१ डाउन ।२२ अप सदर्न एक्सप्रैस से मद्रास और दिल्ली के मध्य चलेगा।

(६) एक आंशिक वातानुकूलित डिब्बा ९१ अप । ९२ डाउन बीकानेर मेल से दिल्ली और बीकानेर के मध्य सप्ताह में दो बार दिनांक : ३१-७-१९६६ तक निम्नांकित रूप से चलेगा:-

दिल्ली से : सोमवार और बृहस्पतिवार को।

बीकानेर से : मंगलवार और शुक्रवार को।

(७) आंशिक वातानुकूलित डिब्बा ९३ अप । ९४ डाउन जोधपुर मेल (दिल्ली जोधपुर) से सप्ताह में दो बार के स्थान पर सप्ताह में तीन बार निम्नांकित रूप से चलेगा:-

दिल्ली से : सोमवार, बुधवार और शनिवार को।

जोधपुर से : रविवार, मंगलवार और बृहस्पतिवार को ।

(आ) हटाए गए वातानुकूलित डिब्बे

(१) आंशिक वातानुकूलित डिब्बे जो ५९ अप । ६० डाउन श्रीनगर एक्सप्रैस से नयी दिल्ली पठानकोट के बीच चल रहे थे।

(२) आंशिक वातानुकूलित डिब्बे जो १५ डाउन । १६ अप जी. टी. एक्सप्रेस से मद्रास एवं नई दिल्ली के मध्य सप्ताह में तीन बार चल रहे थे।

(३) आंशिक वातानुकूलित डिब्बे जो दिल्ली-देहरादून के मध्य १९।२०देहरादून एक्सप्रैस से चल रहे थे।

१०. थ्रू।सैक्शनल कैरेजों के चलने में परिवर्तन

(अ) निम्नांकित थ्रू। सैक्शनल कैरेज चालू की जायेंगी।

स्टेशन	गाड़ी नंबर	आवास की श्रेणी	बोगियों की संख्या	आवृत्ति	टिप्पणी
हावड़ा-दिल्ली	१-अप । २-डाउन	१	एक	प्रतिदिन	अतिरिक्त
		१	एक	प्रतिदिन	" डिब्बा
हावड़ा-इलाहाबाद	३-अप । ४-डाउन	३	एक	प्रतिदिन	" डिब्बा
रायपुर-नई दिल्ली	३२२ । ३६ । ५७ डाउन				

(बिलासपुर-कटनी और बीना होकर)	डाउन और ५८ अप।३५।३२१	१ और ३	एक	प्रतिदिन
भुवनेश्वर,–दिल्ली, (खड़गपुर आसनसोल होकर)	७।३५१।१७।८५ अप एवं ८६-डाउन।- १८।३५२।८	१ और ३	एक	प्रतिदिन
हैदराबाद-नई दिल्ली	३३१।२१ एवं) २२।४८)	एक और ३ ३	एक एक	सदर्न एक्सप्रैस के दिनों पर
वाराणसी, मद्रास	४७।२८।१६ और) १५।२७।४८)	१ और ३	एक	सप्ताह में ३ दिन के स्थान पर अब सप्ताह में ४ दिन : मद्रास से : रवि. मंगल बृहस्पति एवं शनि : वाराणसी से : रवि मंगल, बुध एवं शुक्र को
लखनऊ-मद्रास	१०६।१६ एवं) १५।१०५)	१ और ३	एक	सप्ताह में दो बार के स्थान पर सप्ताह में तीन बार लखनऊ से : सोम. बृहस्पति एवं शनिवार। मद्रास से : सोम, बुध एवं शुक्रवार।

एक प्रथम एवं तृतीय श्रेणी की कम्पोजिट बोगी कोटा एवं दिल्ली के मध्य १९-डाउन -२० अप देहरादून एक्सप्रेस के द्वारा सप्ताह में कोटा और देहरादून के मध्य ५ बार के स्थान पर सप्ताह में ४ बार निम्नांकित दिनों चलेगा।

कोटा से : मंगलवार, बृहस्पतिवार, शनिवार एवं रविवार को। दिल्ली से :– सोमवार, बुधवार, शुक्रवार एवं रविवार को।

(अ)) एक कम्म्पोजिट प्रथम एवं तृतीय श्रेणी बोगी जो नयी दिल्ल्ली एवं हैदराबाद के मध्य १६।३२० एवं ३१९।१५ के द्वारा सप्ताह में ३ बार चल रही थी अब नहीं चलेगी।

विस्तृत सूचना के लिए गाड़ी के समय थ्रू–सैक्शनल कैरेजों के चालू-।-रद्द होने, गाड़ियों में आवास के वर्गीकरण में एडजस्टमेंट आदि के वारे में अप्रैल, १९६६ को समय सारिणी, जो रेलवे बुकिंग। आरक्षण पूछताछ कार्यालयों तथा महत्वपूर्ण स्टेशनों के बुक स्टालों तथा चीफ आपरेटिंग सुपरिंटेंडेंट, उत्तर रेलवे, नयी दिल्ली के पास उपलब्ध हैं, को देखें।

रजिस्ट्रेशन नं. डी. १३३२